आधुनिक हिन्दी और मलयालम शोक-काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन

A COMPARATIVE STUDY OF THE ELEGIES IN MODERN HINDI AND MALAYALAM LITERATURE

Thesis submitted to the
OCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
for the Degree of
DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

षीलम्मा एन. पी.
SHEELAMMA N. P.

Prof. & Head of the Dept.
Dr. P. V. VIJAYAN

Supervisor
Dr. M. EASWARI
Professor

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
KOCHI - 682 022

CERTIFICATE

This is to certify that this THESIS is a bonafide record of work carried out by SHEELAMMA,M.P. under my supervision for Ph.D. and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

Dr. M. EASWARI
(Supervising Teacher)

Department of Hindi,
Cochin University of
Science & Technology
COCHIN Pin 682022

Date 03 June 1992.

पुरोवाक्

कविता में मनुष्य के सुख दुःखात्मक सघन भावानुभव को व्यंजित करने की पूरी क्षमता है। मनुष्य के जीवनानुभव को उद्घाटित करते हुए आधुनिक काल में गीति-काव्य के अन्तर्गत नए काव्य रूपों का विकास हुआ है जिनमें प्रमुख है शोककाव्य।

जब आत्मीय जनों की मृत्यु के तीव्र दुःख से आत्मा तड़प उठती है, साधारण व्यक्ति रोते-कलपते अपने दुःख का शमन करता है। किन्तु भावुक कवि के हृदय में उस शोकावेग से जो उथल-पुथल हो जाता है, वह उसके हृदय का मंथन कर शोकगीत के रूप में निसृत हो जाता है। मृत्यु के अलावा व्यक्ति के चिरवियोग से भी दिल पर ठेस लगती है; हृत्तंत्रियों को झकझोरनेवाले उस तीव्र शोक को भावुक कवि वाणी देता है।

जीवन पर पडे आघात या प्रियजन के चिरवियोग से उत्पन्न व्यथा की अभिव्यक्ति विश्व की भाषाओं में पायी जाती है । हिन्दी और मलयालम में भी ऐसे शोककाव्यों की रचना हुई है । लेकिन हिन्दी के शोककाव्यों पर अब तक स्वतंत्र रूप से अध्ययन किसी ने नहीं किया है । मलयालम शोककाव्यों पर उपलब्ध एक ग्रंथ है श्री·एषुमंट्टूर राजराज वर्मा का "विलापकाव्य प्रस्थानम्" । इसके अलावा डॉ· एम· लीलावती का "कण्णीरुम् मषविल्लुम" में भी एकाध शोककाव्यों की आलोचना की गयी है । लेकिन अभीतक हिन्दी और मलयालम के शोककाव्यों पर तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन नहीं हुआ है । अत: इन भाषाओं के शोककाव्यों के तुलनात्मक अध्ययन का यह प्रथम प्रयास है ।

हिन्दी और मलयालम में प्रचुर मात्रा में शोककाव्य लिखे गए । इसके अन्तर्गत स्वतंत्र काव्य, लंबी कविताएं और गीत भी आते हैं । इन सभी काव्य रूपों में प्रसिद्ध रचनाओं को शोध छात्रा ने अपने अध्ययन के लिए चुना है । कुछ ऐसे शोककाव्य हैं जिनमें गुरुजनों और महात्माओं के वियोग पर शोक और श्रद्धा की व्यंजना हुई है, उनको भी इसमें शामिल किया गया है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का छ: अध्यायों में विभाजन हुआ है ।

प्रथम अध्याय में शोकगीत का उद्भव और विकास का संक्षिप्त परिचय दिया गया है ।

दूसरा अध्याय है - हिन्दी साहित्य में शोककाव्य की उत्पत्ति और विकास । हिन्दी के शोकगीतों का संक्षेप में अध्ययन प्रस्तुत करते हुए प्रमुख शोकगीतों का आलोचनात्मक परिचय इसमें दिया गया है ।

तीसरे अध्याय में हिन्दी के प्रमुख शोकगीतों का विवेचनात्मक अध्ययन हुआ है । कवि प्रसाद, पंत, निराला, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, दिनकर आदि कवियों के चुने हुए शोककाव्यों का विशद, विवेचनात्मक अध्ययन इसमें प्रस्तुत किया गया है ।

चौथा अध्याय मलयालम में शोककाव्य के क्रमिक विकास का संक्षिप्त इतिहास है ।

पाँचवाँ अध्याय "मलयालम के प्रमुख कवि आशान, उल्लूर, वल्लत्तोल, नालप्पाट्टु और जी·शंकरकुरुप आदि के चुने हुए शोककाव्यों के आलोचनात्मक अध्ययन पर आधारित है ।

छठा अध्याय है हिन्दी और मलयालम के शोककाव्यों की तुलना । तीसरे और पाँचवें अध्यायों में जिन काव्यों का अध्ययन हुआ है उनका वर्गीकरण कथ्य की दृष्टि से करके शोककाव्यों की विशेषताओं - शोकात्मकता, गंभीरता, तत्वचिंतन, संक्षिप्तता, अकृत्रिमता के आधार पर तुलना को इसका विषय बनाया गया है । प्रस्तुत अध्याय में आत्मीय जनों की मृत्यु पर शोक, मित्रों के निधन पर खेद, गुरुजनों और लोकनायकों के आत्मबलिदान तथा

निधन पर शोकार्द्रहृदय से श्रद्धांजलिपरक अभिव्यंजना और भावात्मक शोकाभिव्यक्तिपरक विषयाश्रित वर्गीकरण करके दोनों भाषाओं की रचनाओं की तुलना की गयी है ।

उसके बाद उपसंहार है ।

इस शोधप्रबन्ध को इस प्रकार रूपायित करने का श्रेय इस छात्रा की अध्यापिका, मार्ग दर्शिका तथा कोचिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की प्रोफसर श्रीमती डॉ॰एम॰ईश्वरी जी का है । आपके प्रति यह छात्रा सर्वदा कृतज्ञ है । हिन्दी विभाग के अध्यक्ष एवं आचार्य डॉ॰पी॰वी॰ विजयन, मेरे भूतपूर्व अध्यापक डॉ॰रामचन्द्र देव से समय समय पर प्राप्त प्रेरणा और प्रोत्साहन के लिए यह छात्रा कृतज्ञ है ।

हिन्दी विभाग के पुस्तकालय की अध्यक्षा श्रीमती कुञ्ञिक्कावुट्टि तंपुरान और सहायक श्री॰आन्टणी ने सहायक ग्रन्थों की प्राप्ति के लिए बडी सहायता की है । इनके प्रति यह छात्रा आभार प्रकट करती है ।

इनके अलावा अन्य शुभकांक्षी कुछ सज्जन है, जिनसे प्रस्तुत शोध कार्य में सहायता प्राप्त हुई है उनके प्रति यह शोध छात्रा अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती है ।

Sheela

षीलाम्मा, एन॰पी॰

हिन्दी विभाग,
कोचीन विज्ञान एवं
प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
कोचीन पिन 682022
तारीख: 03 जून, 1992

विषय-सूची

पृष्ठ-संख्या

पहला अध्याय — 1 - 22

शोककाव्य का उद्भव और विकास

शोक और जीवन - शोक और साहित्य - शोकगीत स्वरूप निर्धारण - परिभाषा - सामान्य लक्षण - दु:ख और चिन्तन - करुणात्मकता - अकृत्रिमता - संक्षिप्तता अंतर्द्वन्द्व - छन्दविधान - शोकगीत और गीतिकाव्य - आत्मपरक दृष्टिकोण या वैयक्तिकता - अन्त:स्फूर्त अभिव्यक्ति - हार्दिकता या भावमयता - अखण्ड अनुभूति - अन्विति - संक्षिप्त आकार - गति प्रवाह - संगीतात्मकता ।

दूसरा अध्याय — 23 - 41

हिन्दी शोककाव्य - एक सर्वेक्षण

प्रारंभिक युग - भारतेन्दु युग - द्विवेदी युग - छायावादी युग - अन्यशोककाव्यकार - निष्कर्ष ।

पृष्ठ-संख्या

तीसरा अध्याय   42 - 180

हिन्दी के प्रमुख शोककाव्य - विवेचनात्मक अध्ययन

1. सरोज-स्मृति

वेदना की बहि:स्फुरण - व्यथा की सघनता - वेदना के अन्य उद्दीपनकारी तत्व - विद्रोहात्मकता - संयमन और अकृत्रिमता - निष्कर्ष ।

2. पुत्र वियोग

निर्दय नियति का विनोद - आहत वात्सल्य की करुण पुकार - काव्यात्मकता - निष्कर्ष ।

3. आँसू

काव्य का प्रतिपाद्य - व्यथित प्रेमी की मानसिक प्रतिक्रिया - वैयक्तिक व्यथा की अभिव्यक्ति - शोकात्मकता - आत्मानुभूति की सघनता - रुदन का एकतान स्वर - विचारात्मकता - निष्कर्ष ।

पृष्ठ-संख्या

4. विषाद

अन्तर्विषय - हृत्तन्त्री का टूटा राग - एकान्त पथिक - अमावास्या में पौर्णिमी की तलाश - निष्कर्ष ।

5. मुर्झाया फूल

प्रमेय - शोकाभिव्यक्ति - समदर्शिता निष्कर्ष ।

6. शोकाश्रुबिन्दु

आत्ममित्र का असामयिक तिरोधान - गुणकीर्तन - निष्कर्ष ।

7. प्राणार्पण

काव्य का कथ्य - श्रद्धा से परिवेष्टित शोक की अभिव्यक्ति - निर्मम जन सेवक दो विभिन्न पहलू - निष्कर्ष ।

8. अंजलि और अर्घ्य

प्रतिपाद्य - शोक की हार्दिक अभिव्यक्ति - महामानव की नित्यहरित स्मृति - निष्कर्ष ।

9. बापू

विषयवस्तु संग्रह - वज्रपात - अघटन घटना क्या समाधान - काव्यविचार निष्कर्ष ।

पृष्ठ-संख्या

10· कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति

प्रतिपाद्य - शोक का व्यापक प्रसार - गुण - स्तवन - निष्कर्ष ।

चौथा अध्याय 181 - 202

मलयालम शोककाव्य - एक सर्वेक्षण

प्रारंभिक स्वच्छन्दतावादी शोककाव्यकार युगप्रवर्तक तीन कवि सम्राट - अन्य प्रौढ कवि - शोककाव्यकार - चुने हुए अन्य शोकगीतकार - निष्कर्ष ।

पाँचवाँ अध्याय 203 - 306

मलयालम के प्रमुख शोककाव्य - एक विवेचनात्मक अध्ययन

1· ओरुविलापम् {एक विलाप}

प्रतिपाद्य - उदात्त वात्सल्य - विच्छित्ति की करुण अभिव्यक्ति- स्मृति कथन - तत्वचिन्तन - निष्कर्ष ।

पृष्ठ-संख्या

2. चटुकण्णीर (तप्त अश्रु)

विषयवस्तु - पीडा की अभिव्यक्ति
तत्वचिन्तन - निष्कर्ष ।

3. कण्णीरतुल्लि (अश्रुकण)

काव्य का प्रमेय - शोकाभिव्यक्ति -
तत्वचिन्तन - गुणस्तवन - निष्कर्ष ।

4. ओरुविलापम् (एक विलाप)

विषयवस्तु संग्रह - हृदय की अतल
गहराई से आनेवाली करुण पुकार
गुणकथन - तत्वचिंतन - निष्कर्ष ।

5. वीणपूवु (झडा फूल)

वर्ण्यविषय - प्रकृति का दुलारा फूल
मानवीकरण - वैयक्तिक दुःख की
व्यापकता - सत्यान्वेषण का
साधन - दार्शनिक दृष्टि - निष्कर्ष ।

6. बाष्पांजलि

वर्ण्यविषय - शोक की अभिव्यक्ति - चिन्तनपक्ष -
निष्कर्ष ।

7. चितालेखम्

शोकाभिव्यंजना - निष्कर्ष ।

पृष्ठ-संख्या

8· प्ररोदनम्

शोकपूर्ण वातावरण - तेजस्वी व्यक्तित्व - नियति की निरबद्ध गति - विनम्र प्रणाम आदर की दीपाराधना - दार्शनिक दृष्टिकोण - निष्कर्ष ।

9· भारतेन्दु

विषयवस्तु विवेचन - गांधीजी के वियोग में शोकाभिव्यक्ति - निष्कर्ष ।

10· लोकान्तरङ्ङलिल (लोकान्तरों में)

विषयवस्तु संग्रह - तीव्रशोक की संयमित अभिव्यक्ति - निष्कर्ष ।

छठा अध्याय 307 - 337

हिन्दी और मलयालम शोककाव्य - तुलना

अपत्यनष्ट पर अनुभूत शोक की अभिव्यक्ति - पत्नीवियोग - व्यथा - भावात्मक या प्रतीकात्मक शोककाव्य मित्रस्मृति पर श्रद्धांजलि - देश के महान् नेता एवं गुरुजन के वियोग पर रचे स्मृतिकाव्य में अभिव्यक्त व्यथा - निष्कर्ष ।

पृष्ठ-संख्या

उपसंहार 338 - 352

परिशिष्ट 353 - 360

मलयालम कवियों का संक्षिप्त

परिचय

सहायक ग्रंथ सूची 361 - 386

आलोच्य ग्रन्थ सूची

संदर्भ ग्रन्थ सूची

पत्र-पत्रिकाएं ।

पहला अध्याय

शोक काव्य का उद्भव और विकास

पहला अध्याय

शोककाव्य का उद्भव और विकास

मानव-मन नाना प्रकार के भावों का विशाल भंडार है। भाव किसी विशेष चित्तवृत्ति या मन:स्थिति को सूचित करता है। ऐन्द्रिय संवेदनाओं के संपर्क से इन भावों का जाग्रत होना स्वाभाविक है। ऐसे भावों में सर्वाधिक, सशक्त और व्यापक तो प्रेम और शोक ही है। परस्पर विरोधी दीखने पर भी सूक्ष्म तात्त्विक स्तर पर ये भाव एक दूसरे से संबद्ध है। कारण यह है कि प्रेम जितना दृढ है, उतना ही तीव्र है, उसके टूटने का दु:ख भी। जो भी हो, मानव जीवन की गति और उसके स्वरूप को निर्धारित करने में इन दोनों भावों का हाथ ही सब से बडा है।

शोक और जीवन

मोह-ममता के ताने-बाने से बुने अस्थिर भौतिक जीवन के नाते-रिश्तों के धागों का किसी न किसी समय टूट जाना स्वाभाविक है। "मरणं प्रकृति शरीरिणाम्"[1]।

---

1. श्रीमद् भगवद्गीता - द्वितीय अध्याय, पृ.33

अत: यह भी स्वाभाविक है कि प्रत्येक राग संबंधी विच्छित्ति सांसारिक जीवन के लिए दर्दनाक है । इस दर्द का उत्कृष्ट रूप प्रिय जनों के चिरवियोग में पाया जाता है । यही कारण है कि आध्यात्मिकों और तत्ववेत्ता दार्शनिकों का चिंतन अनासक्ति में सुझाता है, प्रापंचिकता के त्याग में देखता है । यही तो है वैराग्य । भगवान बुद्ध ने भी दु:ख के नानामुखत्व, लोकव्यापकता और सनातन स्वभाव से पूर्णत: अवगत होकर ही उसे जीवन का प्रथम आर्यसत्य घोषित किया था और उससे निवृत्त होने का उपदेश दिया था । लेकिन प्रापंचिक प्राणी होने के नाते उसे अपने नाना प्रकार के रागात्मक संबंधों को एक दम तोड़ डालना उतना आसान नहीं है । सांसारिक जीवन की ओर उसका सहज आकर्षण बना रहता है । उससे मुक्ति अभ्यास और वैराग्य से हासिल करने की अवस्था है । उसे अपनाना मामूली व्यक्ति के लिए आसान नहीं है । अत: मनुष्य के लिए अपना रागजन्य और अन्य प्रकार के संबन्ध, जीवन को जीवितव्य बनानेवाले महत्वपूर्ण तत्व है । उसकी जिजीविषा से अभिन्न रूप से संलग्न है । ऐसी स्थिति में यह अनिवार्य है कि जीवन की क्षणभंगुरता और रागसंबन्धों के स्थायित्व के मोह की विसंगतिपूर्ण परिस्थिति, मनुष्य के अस्तित्व में, दु:ख और दर्द के कांटों का आवर्तन करती रहेगी । इस प्रकार दु:ख की सार्वकालिकता तथा सार्वभौमिकता प्रकट होती है ।

शोक और साहित्य

मृत्यु द्वारा राग संबंध के भग्न किए जाने पर उत्पन्न टीस मनुष्य को शोकग्रस्त बना देती है । ममता-पात्र प्रियजनों के ऐसे वियोग संवेदनशील कवि के अंतर्मन को उन्मथित कर डालते हैं ।

और वहाँ से शोकाकलित काव्यधारा फूट पड़ती है । ये शोक-संवलित काव्योद्गार पाठकों को कैसे रुचें ? किस कारण सहृदयों को ये पसंद आवें ? आमूलाग्र तप्ताश्रुभरे शोकगीत का आस्वादन साहित्य शास्त्रियों और काव्य मर्मज्ञों की जिज्ञासा का विषय हुआ है । वास्तविक जीवन में परदुःखकथन एक हद तक ही स्वतः सुखकांक्षी मनुष्य बर्दाश्त कर ले सकता है । लेकिन शोकगीत या शोकात्मक काव्य को बार-बार पढ कर वह आस्वादन करता है; आनन्द पाता है । कोरे जीवनानुभव और शुद्ध काव्यानुभूति का यह अंतर है । शोकगीतों में शोक, करुण रस की दशा तक नहीं पहुँचता है; फिर भी करुण रस के हेतु ही शोकानुभूति के साधारणी-करण और हृदयंगमता के पीछे प्रवृत्त रहते हैं ।

आनुभाविक पक्ष में यह सच है कि पीडा दुःखद है, अतः तिरस्कारयोग्य है । लेकिन दुःख की अवस्था में मनुष्य दूसरों की - अपने सहजीवियों की - संगति चाहता है । अतः पीडा या दर्द का यह स्वभाव है कि वह संग्रहणशील है । वह व्यक्ति व्यक्ति को मिला देती है । दुःख में व्यक्ति सबका साथ चाहता है । सबको साथ देता भी है । अहंजन्य, कुत्सित, स्वार्थपूर्ण भावनाओं का उच्चाटन करके चित्त को शुद्ध करने की क्षमता सहानुभूति में ही रहती है । दुःख की सहभोक्तव्यता की क्षमता अन्य भावों में कम है । यही कारण है कि अज्ञेय ने कहा है "दुःख सब को माँजता है"[1] । अगर दुःख में यह प्रवृत्ति स्वाभाविक है तो अनुभूति के पक्ष में इसी का प्रभाव सर्वाधिक हो जाना भी कोई अस्वाभाविक या अयुक्तिक नहीं है । स्वयं संवेदनशील कवि व्यक्तिगत और प्रत्यक्ष दुःख भोग लेता है । कवि की कल्पना मे

---

1. अज्ञेय के काव्य में क्षण सुनीता सक्सेना (1984), पृ.75

वह अनुभूति मिल-जुल कर काल्पनिक अनुभूति बन जाती है । यह साधारणीकरण प्रक्रिया के रूप में समष्टि के सामने पहुँच जाती है तो समष्टि में संवेदना उत्पन्न होती है । इस प्रकार संवेदना के सार्वलौकिक स्तर पर स्थान्वित होनेवाली शोकानुभूतियाँ ममताजन्य वेदना एवं निराशा से मुक्त होकर सहृदयों के अन्तर्निहित समष्टिगत मानसिक पहलू का संस्पर्श करके उन्हें एकात्मकता का अनुभव करा देती है । अहं से निष्पन्न हीनभावों और उनसे उन्मुक्त होने पर संप्राप्त एकात्मकता को दृष्टि में रख कर ही अरस्तू ने दु:खान्त नाटक को अधिक महत्व दे दिया है[1] । दु:ख या शोक की इस विशेषता के कारण ही शायद प्राचीन संस्कृत कवि भवभूति ने करुण रस को सर्वप्रमुख घोषित किया[2] । शोकगीतों के आस्वादन के पीछे वही मानसिक व्यापार संपन्न होता है जो करुणरसपूर्ण काव्य के आस्वादन के समय चलता रहता है । दोनों का दु:खात्मक अनुभूतियों से संबन्ध है । इन अनुभूतियों के आस्वादन के मूल में प्रवृत्त मानसिक प्रक्रियाओं की विवेचना का परिश्रम भारतीय और पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों और कवियों के द्वारा काफी मात्रा में हुआ है ।

---

1. Tragedy, then, is an imitation of an action that is serious, complete and of a certain magnitude, in language embellished with each kind of artistic content, the several kinds being found in separate parts of a play in the form of action not of narrative, through pity and fear efficting the catharsis or the proper purgation of these emotions. Principles & History of Literary Criticism
Dr.S.C.Mundra & S.C.Agarwal, p.45

2. एकोरस करुणएव निमित्त भेदात् विभिन्न पृथय -
पृथग्विवा श्रयते विवर्तान्
आवर्त बुद्बुद तरंग मयानविकारानेभ्यो यथा
सलिलमेवतु तत्समस्तम् ।।
उत्तररामचरितम् - भवभूति 3/47

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने दुःख से दुःख की उत्पत्ति के लौकिक नियम को अनुभव के तल पर स्वीकार करते हुए भी काव्य में भाव की अलौकिक प्रतिभा के संस्पर्श से दुःख से सुख की उत्पत्ति को सहज मानते हैं[1]। नाट्यदर्पण कर्ता रामचन्द्र गुणचन्द्र काव्य में दुःखात्मक अनुभूति के सामाजीकरण को कवि-शक्ति और नट-कौशल से वस्तु के प्रस्तुतीकरण में संप्राप्त विशेष चमत्कार का परिणाम स्थायित्व करते हैं[2]। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी आनंद को हृदय की व्यक्तिमुक्त दशा में नाटक देखते समय प्राप्त होनेवाली तल्लीनावस्था में - दुःख भी रसात्मक अनुभूत होने में - कोई आपत्ति नहीं देखते हैं[3]।

---

1. "करुणादावपि रसे जायते यत्परं सुखम्"

साहित्यदर्पण ।।। पृ.206

2. भयानकादिभिरुद्विजते समाजः न नाम सुखास्वाद उद्भवो घटते, यत्पुरोभिरपि चमत्कारो दृश्यते स रसास्वाद विरामे सति यथावस्थित वस्तुप्रदर्शकेनकीव नटशक्ति कौशलेन, अनेनैव च सर्वांगहलादेनकीव नटशक्ति जन्मना चमत्कारेण

विप्रलब्धाः

परमानन्द रूपता दुःखात्मकेष्वपि करुणादिषु सुमेधसः प्रति जानते ।

नाट्यदर्पण,पृ.15

3. "करुण रसप्रधान नाटक के दर्शकों के आँसुओं के संबंध में यह कहना कि "आनन्द में भी तो आँसू आते हैं" केवल बात टालना है। दर्शक वास्तव में दुःख ही का अनुभव करते हैं। हृदय की मुक्त दशा में होने के कारण वह दुःख भी रसात्मक होता है।

- चिंतामणि - रामचन्द्र शुक्ल, भाग - 1, पृ.202

दु:ख या शोक की अनुभूति-तीव्रता, सर्वातिशायिता और काव्योपयोगिता से अरस्तू के समय से ही पश्चात्य साहित्यिक एवं समीक्षक अवगत थे। अरस्तू का विरेचन सिद्धांत ही दु:खात्मक अनुभूतियों को काव्य में प्रश्रय देनेवाला है। करुणाकलित कथा के कथन में मधुरतम गान सुनानेवाले शेली[1] और मानव हृदय के गहनतम संबन्ध को आँसुओं की धारा में देखनेवाले एर्णस्ट रायमण्ड आदि भी दु:ख की काव्यगत वरेण्यता को स्पष्ट कर देते हैं। स्टुवर्ट और आगडन के अनुसार जब हमारा जीवन सरलता तथा सुविधानुकूल व्यतीत होता है तो हम भावात्मक उत्तेजना को यहाँ तक साधारण रूप में वेदनायुक्त उत्तेजना को भी आनंद पूर्वक प्राप्त कर लेते हैं[2]।

मानव हृदय को मांज-धोकर शुद्ध बनानेवाला दु:ख ही आंतरिक चक्षु को दर्शनशक्ति प्रदान कर देता है। वह नम्र है, जिज्ञासु है। अन्वेषण की आसक्ति जागरूक आत्मा की निजी संपत्ति है। जिन्दगी में एक बार भी आत्महत्या के बारे में न सोचनेवाला व्यक्ति जीवन का मर्म नहीं समझता है। मनुष्य के घातप्रतिघात-पूर्ण भौतिकास्तित्व में अनिवार्य शोक की अभिव्यक्ति समूचे विश्वसाहित्य में विभिन्न रूपों में उपलब्ध है।

---

1. "Our sincerest laughter,
   With some pain is frought,
   Our sweetest songs are those that tell of saddest
   tales." S

2. When our life follows a smooth and easy course,
   We enjoy emotional stimulation even of a slightly
   painful kind.
   Modern Psychology and the Educated,
   by Stuart and Ougden, p.113

शोक-गीत : स्वरूप निर्धारण

शोक-कारणों में सब से प्रमुख मरण ही है । इष्ट जनों के चिर-वियोग पर रचित गीत ही शोकगीत है । शोकगीत का संबंध मानव-मन की मौलिक चित्तवृत्तियों में एक, करुणा और वेदना से है, चिरकाल से वह इसकी अभिव्यंजना भिन्न-भिन्न रूपों में करता आ रहा है । इस प्रकार की रचना-वृत्ति सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक होती है; और विश्वसाहित्य में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती है । भारतीय साहित्य में भी प्राचीन काव्यों में शोकगीतियाँ मिलती हैं; पर एक विशेष काव्य रूप में इसकी स्वीकृति व सैद्धान्तिक विवेचन काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में नहीं किया गया । आधुनिक काल में विशेष कर आंग्ल साहित्य के "एलिजी" के प्रभाव से "शोकगीत" नामक काव्यरूप के सृजन एवं विवेचन होने लगे । अंग्रेज़ी गीतिकाव्य के अनेक भेदों में एक है शोक गीत ।

परिभाषा

विलाप के अर्थ में ग्रीक शब्द एलिजिया (Elegia) का प्रयोग होता है । इस शब्द से एलिजी (Elegy) शब्द की उत्पत्ति हुई है । ग्रीक और रोमन काव्यों में एक विशेष प्रकार के एलिजियाक् मीटर (Elegiac metre) में रचित किसी भी गीति को "एलिजी" कहते हैं[1] ।"

---

1. In Greek and Roman Literature, the elegy was any poem composed in a special elegiac metre - alternating hexametre and penta metre lines.

   A Glossary of Literary Terms - M.H.Abrams II Edn.1985, p.44

अंग्रेज़ी में 17 वीं सदी और बाद में भी चिंतन प्रधान किसी भी काव्य के लिए "एलिजी" शब्द का प्रयोग हुआ है। लेकिन आधुनिक काल में इस शब्द का प्रयोग किसी व्यक्ति की मृत्यु पर रची गई औपचारिक गीतियों के लिए रूढ़ हो गया[1]।

एनसैक्लोपीडिया ब्रिटानिका में एलिजी की परिभाषा निम्न प्रकार दी गयी है[2]। "एलिजी उस छोटी कविता को कहते हैं जिनकी रचना किसी प्रिय या समादरणीय व्यक्ति की मृत्यु या नैतिक संताप की सामान्य भावना से प्रेरित होकर शोकव्यंजना या विलाप के रूप में की जाती है। इस विधा के लिए प्रयुक्त ग्रीक शब्द की व्याख्या प्रायः विलाप या अंत्योष्टि से संबद्ध गीत के अर्थ में कर दी जाती है। परंतु इस बात का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं कि मृत्युजन्य शोक की भावना का संबन्ध इस शब्द के मूल अर्थ से कैसे स्थापित हुआ। अवशिष्ट यूनानी साहित्य में प्राप्त होनेवाली ये शोकगीतियाँ मृत्यु को नहीं, युद्ध और प्रेम को समर्पित की गई है। आरंभिक शोकगीतों की प्रेरणा युद्धादि

---

1. A mournful, melencholy poem, especially a funeral song or lament for the dead.

   Dictionary of Literary terms (Edn.1972),p.132

2. Elegy, a short poem of lamentation or regret called forth by the death of a beloved or revered person or by a general sense of the pathos of mortality. The Greek word is of doubtful signification, it is usually interpreted as meaning a mournful or funeral song. But there seems to be no proof that this idea of regret for death entered into the original meaning of the earliest Greek elegies which have come down to us are not funeral, when the elegy appears in surviving Greek literature, we find it dedicated, not to death, but to war and love From the beginning of 16th century elegy was used in England as it has been ever since, to describe a funeral song or lament, is an elegy inthe strict modern sense. Encyclopaedia of Britanica Vol.VIII p.26

साहसिक कृत्य और प्रेम ही रहे हैं । यूनान में इन गीतियों का समस्त आरंभिक इतिहास इसका साक्षी है ।

अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध विद्वान एवं कवि कालरिज के अनुसार "शोकगीत वह है, जो ऐसे विचारवान् कवि के लिए सहज दीख पड़ता है, जो अपने निरंतर संबंध की किसी भी वस्तु को वर्ण्य-विषय बना लेता है । यह स्पष्ट रूप में किसी छंदोबद्ध रूप की सूचना नहीं देता, और किसी विलापात्मकता की आवश्यकता पर ज़ोर भी नहीं देता । शोकगीत किसी मृत व्यक्ति पर किए हुए विचार-विभूत विलाप है[1] ।

शोकगीत के बारेमेंप्रसिद्ध साहित्यिक कार्ल बक्सन (Carl Beckson) अपना मत यों प्रकट करते हैं - "उन्नीसवीं सदी तक प्रेम, युद्ध या मृत्यु संबंधी विषयों को लेकर शोकगीत काव्य की शैली में लिखित सभी रचनाओं को शोकगीत की संज्ञा दी गयी थी । बाद में यह संज्ञा किसी व्यक्ति या व्यक्तियों की मृत्यु पर रचित विलापगीति के लिए अलग हो गई । इसके एक उपविभाग के रूप में सिसिलियन ग्रीक कवियों की शोक-गीतियाँ भी इस तरीके के हैं । निम्फ्स (Nymphs) और चरवाहे (Sheperds) आदि

---

1. According to Coleridge, however "elegyis the form of poetry natural to the reflective mind" which may, he says, use any subject so long as it is related to the poet it self. This elearly has no reference to a partcular matrical form not necessary to lament. It may be that an unconcious general agreement with Coleridge combined with some awareness of one of the most popular Greek Themes has led to the belief that elegy is a lament for the dead.

Cassels Encyclopaedia of Literature(Vol.I. 1953) p.178

इस प्रकार विलाप करते थे। लेकिन इसका अंत साधारणत: शांतिपूर्ण एवं संतोषजनक होता है[1]।

हिन्दी साहित्य कोश में शोकगीत की इस प्रकार परिभाषा मिलती है - "सरल रूप में विलाप काव्य वह है जो किसी की मृत्यु से या प्रिय वस्तु के नाश से उत्पन्न शोक का प्रवाह है[2]।

पं. सीताराम चतुर्वेदी के अनुसार "प्राय: अपने किसी सगे संबंधी के निधन पर लिखे गये शोक भरे काव्य को शोकगीत कहते हैं[3]।

निर्मला जैन की राय में "किसी प्रकार के अनिष्ट से शोकाकुल कवि के हृदय की करुण उद्गीथि ही शोकगीति है[4]।

नाट्यशास्त्र में शोककी उत्पत्ति का कारण इस प्रकार बताया गया है कि "इष्ट जन का वियोग, विभव का नाश, किसी प्रिय व्यक्ति के वध का दु:ख इत्यादि से शोक उत्पन्न होता है[5]। चित्त के इस दशा की अभिव्यक्ति को शोकगीत कहते हैं।

रोम के पंडित टेरन्टियस वोरो (Terentius Waro) ने "एलिजिया" "नेनिया" इन दो शब्दों की तुलना करके एलिजी (Elegy) शब्द की निष्पत्ति ढूंढ निकालने का प्रयास किया है। रोम में शव संस्कार के समय में बांसुरी की सहायता से शोकगीत

---

1. A Reader's Guide to literary terms, p.78
2. हिन्दी साहित्य कोश, पृ.291
3. समीक्षा शास्त्र - पं.सीताराम चतुर्वेदी, पृ.744
4. आधुनिक हिन्दी काव्य रूप और संरचना - निर्मला जैन, पृ.458
5. नाट्यशास्त्र - 7/10 ग।

गाये जाते थे । प्राचीन ग्रीक शोकगीतियों में भी बाँसुरी का उपयोग होता था । अतः "नेनिया" शब्द भी "एलिजियन" जैसे एक फ्रिजियन धातु से उत्पन्न हुआ होगा[1] ।

मलयालम साहित्य के विद्वानों ने शोकगीत की परिभाषा दी है । प्रो॰ मैथ्यू उलकंतरा की राय में "शोककाव्य वह है, जो कवि के व्यक्तिगत भावों को केंद्रबिंदु बनाकर, अपनी वैयक्तिक हानि से निष्पन्न शोकाकुल हृदय के भावों की निष्कलंक अभिव्यक्ति है । सामान्य रूप से मृत्यु से उत्पन्न हानि ही इसका विषय हो सकता है[2] ।

शोकगीतों का अध्ययन करके श्री एषुमट्टूर राजराजवर्मा ने इसकी परिभाषा दी है - "विलाप को प्रधानता देनेवाला काव्य विलापकाव्य है[3] ।

सामान्यरूप में विलापकाव्य वह है जो मृत्युरूपी शाश्वत सत्य में विलीन हुए आत्मीयों के चिर वियोग पर भारी हृदय व्यथा को हल्का करने के लिए रचित संयत रोदन की शाब्दिक अभिव्यक्ति है[4] ।

हृदयभरे भाव को काव्यात्मक ढंग से अभिव्यक्त करने का काव्य अंग्रेज़ी में "लिरिक" कहा जाता है । करुण रस से

---

1. यवन साहित्य चरित्र - कृष्णचैतन्य, पृ॰45
2. साहित्यपीठिका (1984) मैथ्यू उलकंतरा, पृ॰34
3. विलापकाव्य प्रस्थानम्, पृ॰1
4. अंकुरड्डल - पी॰मीरावकुट्टि, पृ॰11

हृदय को द्रवीभूत करनेवाला लिरिक, विलाप काव्य है[1]।

प्रियदर्शनन् की परिभाषा निम्न प्रकार की है - "आत्मा से तादात्म्य प्राप्त करनेवाले किसी की चिरहानि पर कवि हृदय को अनुभूत तप्तस्मृतियों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति ही शोकगीत है[2]।

सामान्य लक्षण

सामान्यत: प्रिय व्यक्ति के निधन पर लिखा गया काव्य शोकगीत संज्ञा से जाना जाता है, किंतु मृत्यु पर अपना शोक प्रकट करना मात्र इसका उद्देश्य नहीं है। मृत्यु का प्रतिपादन करने के गीतों के साथ जीवन के किसी दुरंत को विषय बनाकर रचे गीत भी इस कोटि में आते हैं। उदाहरण के लिए अंग्रेज़ी के ग्रे की "एलिजी रिट्टण इन ए कण्ट्री चर्च यार्ड" ले सकते हैं।

रचना शैली की दृष्टि से भी इनमें अंतर देखा जा सकता है। कभी शोक में ही इसका अंत होता है, और कभी इस शोक का समाधान तत्वचिंतन के द्वारा ढूंढ निकाला जाता है। इन दोनों विधाओं में शोक एक अनिवार्य अंग होता है। सामान्यत: मृत्यु, विनष्ट प्रेम चिरवियोग या ह्रास होनेवाले सनातन मूल्यों के प्रति शोक-प्रकटन आदि इसका विषय होता है। उक्त प्रकार के

---

1. ओरु विलापम् - वी.सी. बालकृष्णप्पणिक्कर, भूमिका
2. आशान् पठनङ्ङल - जी. प्रियदर्शनन्, पृ.61

किसी मर्मस्पर्शी प्रसंग से प्रभावित होकर कवि अपनी वेदना अथवा तत्संबन्धी प्रश्नों पर अपने विचार प्रकट करता है। इनमें काव्य सौंदर्य तथा प्रगीतात्मकता का निर्वाह भी होता है।

अंग्रेज़ी शोककाव्यों का विश्लेषण करते समय एम.एच. अब्राम कहते हैं कि शोकगीतों की पृष्ठभूमि देहाती जीवन होनी चाहिए[1]। कवि एवं मृतक व्यक्ति चरवाहे होते हैं। इष्ट देवता की स्तुति के साथ काव्य शुरू होता है। बीचों-बीच पुराण तथा देवताओं का परामर्श होता है। सारी प्रकृति शोकसंकुल हो जाती है। काव्यकर्ता देवताओं से प्रश्न करता है कि वे क्यों मृतक की रक्षा नहीं करते? विलाप यात्रा होती है। बाद में दु:ख तथा निराशा से मुक्त होकर मृत्यु की अनिवार्यता से अवगत होता है। मिल्टन के "लिसिडस" को लक्षणयुक्त शोकगीत के रूप में वे मानते हैं[2]।

एडगार अलनपो की राय में सबसे अच्छा काव्यात्मक भाव शोक है[3]। साहित्यकार आरतर की राय में कविता दु:ख की बहन है। हर एक दु:खी मनुष्य एक कविता है। हर एक आँसू की बूंद एक शब्द है। हर एक दर्द नाक हृदय एक शोक काव्य होता है[4]।

---

1. A Glossary of Literary terms, p.78
2. Ibid
3. An Introduction to the study of Literature - - W.H. Hudson, p.243
4. Ibid, p.244

दु:ख और चिंतन

प्राय: ऐसा होता है कि दु:ख रोकर और रुला कर शांत होता है । दु:ख भोगने से दर्शन का कवाट खुलता है, और मानव को सहने की शक्ति मिलती है । साथ ही संकटों से भिड़ने का साहस भी आ जाता है । इस प्रकार दु:ख के दो पहलू होते हैं । पहला भावों से तरल है तो दूसरा प्रौढ़ एवं वैचारिक होता है । एलिजी की शैली ही प्राय: मननात्मक होती है । किसी के शोकाकुल हृदय का असंयत प्रलाप इसमें नहीं फूट पड़ता; बल्कि कवि का आहत मन जिस घटना से चोट खाता है, उस पर गंभीर चिंतन करता हुआ, विवेक से नियंत्रित अपनी कसक एवं विचारों का वर्णन होता है । मानव के सब कर्मों को संयत कर ठीक रास्ते पर लाने का काम दर्शन का है । विचार में भ्रांति पैदा करनेवाली समस्याओं का समाधान दर्शन ही देता है । शोकगीतों में शोक का उपरोध करनेवाला यही दर्शन है । वह तो स्वानुभवों से उत्पन्न सामान्य नियम होता हैं शोकगीति की सफलता का एक मुख्य कारण यह भी है कि शोक-काव्य का चिंतन पक्ष । यह प्राय: दु:ख या मृत्यु चिंतन से शुरू होकर उसके चारों ओर मंडराते हुए वहीं समाप्त होता है ।

करुणात्मकता

शोक काव्यों में प्राय: ऐसा देखा जाता है कि शोकाकुल कवि-हृदय के आवेग विचार एवं विकार - सब संकलित होकर अंत में स्वस्थ और शांत होते हैं । विचारों के आवरण के मूल में प्रगाढ शोकानुभूति निश्चित रूप से वर्तमान रहती है । अत:

विचारों के प्रेरक रूप में दुःखानुभूति और तज्जन्य करुण स्वर शोकगीत की विशेषता है ।

अकृत्रिमता

शोकगीत की सब से बडी विशेषता यह है कि भाव तथा कला - इन दोनों पक्षों की निष्कपट अभिव्यंजना । किसी भी प्रकार की औपचारिकता कृत्रिमता या आयासपूर्ण चमत्कृति उसके प्रभाव को कम कर देती है । कृत्रिमता से यहाँ तात्पर्य अनुभूति पर काल्पनिक आवरण रूपपरिवर्तन के प्रयत्न से ही है । सहज अलंकृत तथा उदात्त शैली में एलिजी लिखी जाती है । फिर भी यह मानना पडता है कि शोकगीतकार कभी कभी ज्यादा भावुक रहते हैं । उनका यह विचार है कि सारी प्रकृति एवं सारा प्रपंच अपने साथ शोकाकुल हो जाते हैं[1] । साथ ही मृत व्यक्ति को केंद्र बनाकर कवि एक कल्पित लोक की सृष्टि करते हैं । परलोक की ज़िन्दगी का सपना भी देखते हैं[2] ।

संक्षिप्तता

शोकगीत आकार में बहुत बडा नहीं होता, अत्यंत ह्रस्व भी नहीं होता ।

1\. शैली की अडोणे में कवि "अडोने" के लिए रोने का आह्वान गायकों को देता है । टेनिसन के इन मेम्मोरियम में शोक से प्रकृति शांत भाव छोडकर क्रूर भाव अपनाती है ।

2\. इन मेम्मोरियम में टेनिसन अपना मित्र ईश्वर के साथ रहने की कल्पना करते हैं । अडोने की आत्मा की सांसारिक प्राणियों को प्रकाश देनेवाले नक्षत्र के रूप में कल्पना की गई है ।

अंतर्द्वन्द्व

शोकगीतों में प्रगाढ शोकानुभूति निश्चित रूप में वर्तमान रहती है। भावात्मकता एवं विचारात्मकता के बीच विधि एवं इच्छा के बीच इसमें ज्यादा संघर्ष दिखाई पड़ता है। शोकाकुल मन के तीव्र आवेग को संयत करने की कोशिश की जाती है। लेकिन जीवन और कठिनाई की गहनतम समस्याओं पर मनन कर, मन को शांति प्रदान करने का गीतिकार का प्रयास कभी-कभी निष्फल हो जाता है। बुद्धि के सारे उपरोधों का उल्लंघन कर हृदय का तीव्र आवेग अभिव्यक्त हो जाता है। व्यक्ति की इच्छाओं पर विराम चिह्न डालने के लिए दुर्दैव आगे बढता है तो इसके अधीन आने से इच्छा विलग जाती है। इसी प्रकार संघर्ष जिन्दगी का अभिन्न अंश है। युक्ति तथा विधि के बीच, विश्वास तथा सच्चाई के बीच, व्यष्टि तथा समष्टि के बीच निरंतर संघर्ष बना रहता है। घात-प्रतिघात विचार एवं भाव याने अन्त:संघर्ष शोकगीतों में अपनी चरम सीमा पर आ जाता है।

छंदविधान

प्राचीन विदेशी साहित्य में उपलब्ध शोकगीतों का छंद नियत था। लेकिन सभी भाषाओं के शोकगीतों के लिए यह नियत स्वभाव एक अनिवार्य अनुबंध नहीं। अंग्रेज़ी के कवियों ने विशेष रूप से इस रूढी की उपेक्षा कर दी।[1]

---

1. विलाप काव्य प्रस्थानम् एक्कुदूर राजराजवर्मा, पृ.30

विषय जो भी हो, आदिकाल में छंद योजना के अनुसार शोकगीति का प्रकार भेद निश्चित कर लिया जाता था। ग्रीक एलिजी, एलिजियाक छंद में लिखी जाती थी[1]। आख्यान कविताओं में शोकगीत को अलग करने के लिए यह खास नियत छंद दिया गया। लेकिन विभिन्न भाषाओं के शोकगीतों के लिए अलग-अलग छंदों को कवि लोग अपने मनोनुकूल चुन लेते हैं।

शोकगीत और गीतिकाव्य

शोकगीत वैयक्तिक अनुभूति की अभिव्यक्ति है; अत: गीतिकाव्य की कोटि में आता है। गीतिकाव्य तो "लिरिक" के बोध केलिए निर्मित आधुनिक शब्द है। प्रगीत शब्द का प्रयोग सामान्यत: वाद्यविशेष के साथ गेय समस्त कविताओं के लिए किया जाता था। ये कविताएं नियत अवसरों पर, निश्चित धार्मिक या ऐहिक उद्देश्य से गाई जाती थी[2]।

आधुनिक काल में गीतिकाव्य पर अन्यान्य साहित्यिकों ने अपने मत प्रकट किए हैं। श्रीमती महादेवी वर्मा के अनुसार "साधारणत: गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख-दु:खात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है, जो अपनी ध्वन्यात्मकता के कारण गेय हो सके[3]।

---

1. Elegiac(of Metre) suited to elegies especially couplet, dactalic hexametre and penta metre.
Oxford Dictionary,p.385
2. Lyrical poetry was poetry written to be sung, on quite defenite occasions, for quite definite occasions, for quite definite purposes, religious or secular. Lyrical Poetry from Blake to Hardy
H.J.Grearson : Introduction,p.10
3. विवेचनात्मक गद्य, पृ.147

श्री॰ गुलाब राय के अनुसार "संगीतात्मकता और उसके अनुकूल सरस प्रवाहमयी कोमलकांत पदावली, निजी रागात्मकता - जो प्राय: आत्मनिवेदन के रूप में प्रकट होती है - संक्षिप्तता और भाव की एकता - यह काव्य की अन्यविधाओं की अपेक्षा अधिक अन्त:प्रेरित (spontaneous) होता है और इसी कारण इसमें कला होते हुए भी कृत्रिमता का अभाव रहता है[1]।

इसकी प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार है -

<u>आत्मपरक दृष्टिकोण या वैयक्तिकता</u>

गीतिकाव्य में व्यक्ति की प्रधानता रहती है। कवि का हर्ष-शोक, आशा-निराशा, क्षोभ-उत्साह, उत्कंठा, प्रेम आदि हार्दिक अनुभूतियां प्रगीत के माध्यम से व्यक्त होती है। व्यक्तितत्व से तात्पर्य किसी ऐसे व्यक्ति-वैचित्र्य से नहीं, जो सर्वथा विशिष्ट हो, बल्कि ऐसी अनुभूति से है, जो व्यक्तिगत होते हुए भी सार्वजनिक हो सकें। साधारणीकरण के द्वारा पाठक-मात्र उसका समभोक्ता बन सके। किंतु उसमें प्रधानता आत्मानुभूति की हो, वस्तु तत्व का नहीं।

---

1. काव्य के रूप, पृ॰110

अन्त:स्फूर्त अभिव्यक्ति

प्रगीत में किसी विशेष मनोदशा का उच्छलन होता है। कवि की चेतना को कोई तीव्र अनुभूति अन्तर्मुखी बना देती है, वह उसी भावनिष्ठ मन:स्थिति की अभिव्यक्ति का प्रयत्न करता है, तब वह आवेगदीप्त प्रगति के रूप में शाब्दिक माध्यम के द्वारा अपने मनोभावों को व्यक्त करता है।

हार्दिकता या भावमयता

गीतिकाव्य की भावगीत संज्ञा भी होती है। अनुभूति की सच्चाई और मार्मिकता ही इस नाम को चरितार्थ कर देती है। गीतिकाव्य के मूल में भावनिष्ठ चित्तवृत्ति की अपेक्षा है; परन्तु गीतिकाव्य की प्रेरणा सर्वथा बौद्धिक या काल्पनिक नहीं हो सकती। अन्त:प्रेरणा का अभाव हो तो गीतिकाव्य में प्रभावक्षमता नहीं आ पाएगी। उसकेलिए निश्चल भावना हार्दिक अनुभूति और उसकी निष्कपट अभिव्यक्ति अपेक्षित है।

अखण्ड अनुभूति

प्रेरक अनुभूति की अखंडता भी गीतिकाव्य की सबसे बडी विशेषता है। गीतिकाव्य में जिस विशेष सुख-दु:खात्मक अनुभूति का अंकन होता है वह अखंड और अभिन्न होती है। अनुभूति की विविधता प्रगीत में अलभ्य होती है। वह कवि के मन में होनेवाली एक प्रतिक्रिया, उसकी एक अनुभूति का परिणाम होता है

इस अनुभूति में उतार-चढाव तो हो सकते हैं, वैविध्य संघर्ष एवं विस्तार नहीं होता ।

अन्विति

अनुभूति की अखंडता से ही प्रगीत में रागात्मक अन्विति का समावेश होता है । गीतिकाव्य की रचना एक या अनेक छंदों में हो सकती है । उसमें एक विशेष या एकाधिक खंडचित्रों का अंकन किया जा सकता है । परंतु यह खंड चित्र एक ही मूल भावना से अनुप्राणित होता है । गीतिकाव्य की दृश्यमान विविधता एक ही केंद्रवर्ती भावना से आबद्ध होती है। अत: रागात्मक अन्विति गीति-काव्य का अनिवार्य गुण है ।

संक्षिप्त आकार

गीतिकाव्य की मूल प्रेरक-भावना इतनी क्षणिक, आवेग-दीप्त और तात्कालिक होती है कि उसमें नियमित व्यवस्था और विस्तार का अवकाश कवि को नहीं मिलता यदि वह आकार का विस्तार करता है तो कल्पना या चिंतन का आश्रय लेकर । प्रगीत की प्रेरक भावाविष्ट मन:स्थिति बहुत समय तक स्थायी नहीं रह सकती, अत: इसका आकार भी संक्षिप्त होता है ।

गति-प्रवाह

आवेग, अन्तःस्फूर्ति और संक्षिप्त आकार के कारण गीतिकाव्य की पंक्तियों में अद्भुत गति और प्रवाह उत्पन्न हो जाता है। उसमें एक प्रकार की प्रवणशीलता, अतः हृदय की द्रुति का गुण होता है। गीत की पंक्तियाँ अप्रतिहत वेग से पाठक के मन को प्रभावित करती है।

संगीतात्मकता

स्वर, ताल लय आदि के बाह्य संगीत की नहीं, परंतु भाव के आन्तरिक संगीत और भाषा के शब्द संगीत की अवस्थिति गीति-काव्य में अनिवार्य है। शब्द-संगीत से यहाँ अभिप्राय स्वर और व्यंजन मैत्री, भावानुकूल पदावली व सुचारु शब्द-विन्यास से भाषा में भावापेक्षी अनुसरण या नाद-गुण उत्पन्न करने से हैं। भाषा की यह चित्रकारिता काव्य में प्रभाव की दृष्टि में हितकारी होती है।

कलात्मक शैली-गीतिकाव्य में प्रायः किसी बहुमूल्य अनुभूति का समावेश होता है, अतः उसकी अप्रस्तुत योजना प्रायः अपूर्व सौंदर्योन्मेषिणी और चमत्कारिक होती है। चमत्कार से यहाँ तात्पर्य प्रभावक्षमता से है। गीति-काव्य की शैली की अलंकृति सहज, भावप्रेरित विलक्षण अतः प्रभाव क्षम होती है। अनुभूति की तीव्रता से अभिव्यंजना में चमत्कृति स्वयं उत्पन्न हो जाती है[1]।

---

1. आधुनिक हिन्दी काव्य रूप और संरचना - निर्मला जैन, पृ॰440-442

गीतिकाव्य के विभिन्न आधारों पर अनेक भेद किए गए है। अधिकांश भेद विषय भेद के आधार पर और कुछ आकारगत विशेषता की दृष्टि से हैं। रूपविधा की दृष्टि से इसके संबोधन गीति, पत्र गीति, चतुर्दशपदी और शोकगीति इत्यादि भेद किए जाते हैं।

वस्तुत: गीतिकाव्य पश्चिम से आया हुआ विधान है, वहाँ उसकी संज्ञा "लिरिक" है, इसमें कवि का "स्व" अधिकाधिक स्वीयरूप में प्रकट होता है। वैयक्तिकता गीतिकाव्य की अन्यतम कसौटी है; संक्षिप्तता इसके प्राण हैं। इसकी एक विधा होने से शोकगीत में भी ये विशेषताएं दिखाई पड़ती है। इसमें मानवीय वृत्तियाँ अपनी सहज स्थिति में अभिव्यक्त होती है। आन्तरिक आकुलता और वेदना की आर्द्रता मे सिंचित प्रगीत एवं शोक-गीत एक ही कोटि में आते हैं। कवि की वैयक्तिक भावधारा और अनुभूति को लयात्मक अभिव्यक्ति सहजरूप में मिलती है।

हृदय के उल्लास और विषाद की तीव्र अवस्था में गीत का प्रादुर्भाव होता है; इसलिए गीतकार अपने गीत के माध्यम से अपनी अनुभूति की तीव्रता श्रोता और गायक के हृदय में सहज ही उतार देने में सफल होता है। शोकगीत का हेतु दु:ख होने से यह ज्यादा प्रभावोत्पादक होता है। प्रगीत के सुनिश्चित लक्षणों में भले ही भावात्मकता, आत्मनिष्ठता तथा संक्षिप्तता एवं गेयता आती है, फिर भी भावों पर लगाम देनेवाली वैचारिकता और शोकात्मकता शोकगीत के मार्के की सविशेषतायें होती हैं।

दूसरा अध्याय

हिन्दी शोककाव्य - एक सर्वेक्षण

दूसरा अध्याय

हिन्दी शोककाव्य - एक सर्वेक्षण

मानव-मानव के जीवन के अनुभव उसकी जय-पराजय, आशा-निराशा, अभाव-पूर्ति आदि की अपनी अपनी सीमाएं होती हैं । लेकिन उसकी प्रतिक्रिया से प्रसूत सुख-दुःख की अनुभूति समान होती है । सुख के आनन्द की अपेक्षा दुःख के विषाद का रूप अधिक व्यापक है । विश्व साहित्य का अधिकतर भाग मनुष्य के दुःख के इन अश्रुकणों से आर्द्र है । अपने प्रिय व्यक्तियों के दिवंगत हो जाने या प्रिय व्यक्ति के वियोग या वस्तु के नष्ट हो जाने से भावुक कवि का चित्त शोकाकुल और दुःख दग्ध हो उठता है । शोकसंभूत वेदना की अभिव्यक्ति सहृदय पाठक के हृदय को करुणार्द्र बना देती है । आधुनिक हिन्दी साहित्य में भी ऐसे अनेक भावुक और संवेदनशील कवि हुए, जिन्होंने इस प्रकार के चिरवियोग जन्य अगाध वेदना को गहराई से, सच्चाई से अपनी कविताओं में अभिव्यक्त किया है ।

प्रारंभिक काल में इस प्रकार के हृदयोद्गारों की अभिव्यंजना प्रबन्धों के बीच, पात्रों की मानसिक पीडा व्यक्त करने के उद्देश्य से होती थी; किंतु आधुनिक काल में विदेशी साहित्य के प्रभाव से स्वतंत्र शोकगीतियों का चयन होने लगा। इन अधिकांश गीतों की रचना या तो अपने प्रिय व्यक्ति की मृत्यु या चिर वियोग पर व्यक्ति गत दुःख प्रकट करने के लिए, अथवा किसी श्रद्धेय व्यक्ति के निधन पर देशगत हानि को व्यक्त करने के लिए हुई है।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में वीर और श्रृंगार की प्रधानता रही। किंतु भक्तिकाल के साहित्य में अनेक कारुणिक संदर्भ मिलते हैं। तुलसीदास के "रामचरितमानस" में, रामवनगमन दशरथ का अन्त्य, सीताहरण के बाद राम का विलाप, बालिवध के बाद तारा का विलाप, रावण-वध के बाद मंदोदरी का विलाप आदि ऐसे संदर्भ हैं। "सूरसागर में भी श्रीकृष्ण के वियोग में दुःखी गोकुलवासियों की विरहाकुल स्थिति का वर्णन मिलता है। रीतिकाल में भी नायिकाओं की विरहव्यथा का अतिशयोक्तिपरक एवं अत्युक्तिपूर्ण वर्णन होने से वह एक दम खिलवाड-सा लगता है। इसलिए है, इस समय करुणाकलित वाणी बन्द-सी पायी जाती है।

भारतेंदु युग में स्थिति बदल गई। कवियों ने अपने हृदय में उमड घुमडनेवाले दुःख को शब्दबद्ध किया। कोमल-करुण भावों की स्वानुभूत एवं कल्पनापूर्ण अभिव्यक्ति बदरीनारायण चौधरी के "शोकाश्रुबिंदु (1920 ई.) में देखने को मिलती है। भारतेंदु हरिश्चन्द्र की मृत्यु पर आपके घनिष्ठ मित्र "प्रेमघन" द्वारा रचित

यह काव्य हिन्दी साहित्य का सर्वप्रथम शोकगीत माना जाता है । इसमें हिन्दी साहित्य के इतिहास में अपनी अनुपम सेवा से अमिट छाप छोड देनेवाले भारतेंदु के असामयिक निधन पर "प्रेमघन" ने संतप्त चित्त से श्रद्धांजलि अर्पित की है । इन्होंने अपने दूसरे मित्र श्री कृष्णदेवशरण सिहजू "देव" के निधन पर "नेहनिधि पयान" §1920 ई.§ तथा पितरविलाप §1920 ई.§ नामक दो शोकगीत भी लिखे । किन्तु दिवंगत आत्मा की साहित्यिक एवं सामाजिक प्रतिष्ठा और महानता की दृष्टि से "शोकाश्रुबिन्दु" ही ज्यादा महत्वपूर्ण है । हिन्दी के मौलिक शोककाव्यकार के रूप में बदरीनारायण चौधरी "प्रेमघन" प्रथमगणनीय हैं[1] ।

अंग्रेज़ी "एलिजी" का कुछ अनुवाद भी हिन्दी में हुआ । कामताप्रसाद गुरु ने थॉमस ग्रे की एलिजी[2] का अनुवाद "ग्रामीण विलाप" में किया ।

कवि रूपनारायण पांडेय का "दलितकुसुम" अन्योक्तिशैली में लिखा गया एक शोकगीत है । इसमें किसी अबोध बालक की मृत्यु पर कुसुम को संबोधित कर कवि ने अपना शोक प्रकट किया है । रामदेवी प्रसाद "पूर्ण" का वसन्तवियोग भी शोककाव्य के अन्तर्गत आता है ।

---

1. प्रेमघन और उनका कृतित्व - डॉ. रामचन्द्र पुरोहित, पृ.178

2. Elegy written in a country church yard - Thomas Grey.

आगे चलकर द्विवेदीयुग में अनेक शोक परक काव्यों की रचना हुई । ये इतिवृत्तात्मक रचनाओं की कोटि में गिने जा सकते हैं । क्योंकि दिवंगत आत्मा समाज एवं देश की पूंजी थे; केवल व्यक्ति की नहीं । ऐसे लोगों के चिरवियोग का दुःख व्यक्तिगत सीमा को पार कर व्यापक और समाजगत होते जाते हैं, तब दुःख का साधारणीकरण हो जाता है । उदाहरण स्वरूप नाथूराम शंकर के श्रद्धांजलिपरक तीन काव्य है, अम्बिकादत्त व्यास की स्मृति पर लिखा गया "वियोगवज्राघात" (1930 ई॰) कुन्दनलाल की स्मृति पर रचा गया 'वियोगवज्रपात' (1932 ई॰) और गणपति के देहवियोग पर लिखित "गणपतिप्रयाण (1935 ई॰) इनमें उक्त साहित्यिकों के देहवियोग पर शोक व्यक्त करते हुए उनके तथा उनके महान् गुणों तथा महत्त्वपूर्ण कार्यों का स्तवन हुआ है ।

श्री॰ अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" के "प्रियप्रवास" (1914 ई॰) और वैदेहीवनवास (1940 ई॰) दोनों खड़ीबोली के प्रारंभिक महाकाव्य है । "प्रियप्रवास" में श्रीकृष्ण के मथुरा जाने के बाद गोकुलवासियों के विशेषकर माता यशोदा के दुःख का मर्मस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत किया गया है । राधा-कृष्ण के वियोग की व्यथा को इसमें कवि ने नया रूप दिया है। राधा निजी दुःख को समाज के दुःख में विलीन कर देती है ।

1॰ हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ - डॉ॰ शिवकुमार वर्मा, पृ॰445

"वैदेहीवनवास" में श्री राम की पटरानी होने पर भी दुःख पुत्री सीता के विह्वल क्षणों की करुणामय अवस्था का अंकन हुआ है ।

श्री॰ मैथिलीशरण गुप्त ने इतिहास, पुराण तथा समाज से विषयों को चुन कर अपने संवेदनशील हृदय एवं भावना के संयोग से अनेक करुणाकलित रचनाएं की । आत्माभिव्यक्तिपरक एकाध काव्य भी उन्होंने लिखा, जिनके अन्तर्गत आपकी अप्रकाशित रचना "सान्त्वना" आती है।[1] यह आपके पुत्र हर्ष के अकाल देहवियोग पर कवि के आहत वात्सल्य की पीडा की अभिव्यक्ति है । गांधीजी के अप्रत्याशित देहवियोग पर उन्होंने "अंजलि और अर्घ्य" (1954 ई॰) नामक शोककाव्य लिखा, जिसमें गांधीजी के माहात्म्य-वर्णन के साथ उनकी स्मृति पर कवि अंजलि और अर्घ्य अर्पण कर देते हैं । गांधीजी की हत्या एक निष्ठुर हिन्दू के हाथों से हुई है, बार-बार कवि ग्लानि के साथ इसकी याद करते हैं । आपने "यशोधरा" (1932 ई॰) काव्य में श्री बुद्ध की पत्नी यशोधरा के दुःखपूर्ण जीवन का सजीव चित्र खींचा है । गुप्तजी के अधिकांश काव्यों में करुण-रस की प्रधानता है । अतः तीव्रतम भावों की चरमसीमा का चित्रण उनके काव्यों में पाया जाता है । युग विशेष का साहित्य तद्युगीन परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता । यह प्रभाव उसके आन्तरिक एवं बाह्य दोनों पक्षों पर दृष्टिगोचर होता है । छायावादी काव्य पर यह प्रभाव सविशेष रूप से पडा । इस युग में पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से शोकगीतों की रचना होने लगी । गीतिकाव्य की एक विधा के रूप में इसकी स्वीकृति हुई । इस काल में प्रायः सभी ख्यातिप्राप्त

---

1. गुप्तजी व्यक्ति और काव्य डॉ॰ कमलाकांत पाठक, पृ॰21।

कवियों ने अपनी करुणाकलित वाणी द्वारा शोकगीतिधारा को सम्पन्न करने का प्रयास किया है ।

आधुनिक हिन्दी कविता के युग निर्माता कवियों की श्रेणी में जयशंकर प्रसाद का विशिष्ट स्थान है । प्रसाद जी के जीवन में एक के बाद एक होकर अनेक वियोग की घड़ियाँ आयी थीं, जिनसे उनका शोक ही श्लोक में बदल गया । दुःख-निराशा, वेदना-व्यथा की अभिव्यक्ति छायावादी काव्य में हुई । असाधारण संवेदनशीलता और भावुकता के कारण सभी छायावादी कवियों में दुःख की गहरी अनुभूति पायी जाती है । प्रणय वंचित निराश एवं असफल रह जाने से हृदय को चीर डालनेवाली असहनीय पीडा इनके हृदय को मथ डालती थीं । प्रसाद के "आँसू" (1925 ई॰) की प्रतिपंक्ति में कवि की दिली व्यथा मूर्तिमान हो उठी है । लेकिन काव्य के अन्त तक आते ही वेदना का साधारणीकरण होकर विश्वबन्धुत्व की स्थापना हुई है । प्रसादजी के "झरना" (1913 ई॰) और "लहर" (1933 ई॰) में भी व्यथा की स्वानुभूतिमय अभिव्यंजना हुई है । इन कृतियों की यही विशेषता होती है कि ये आत्माभिव्यक्तिपरक प्रेम-वेदना के अन्त में आशामय संदेश से आनन्दानुभूति ही प्रदान करती है । कवि ने अपने आंतरिक पीडा को दार्शनिक रूप देने की चेष्टा की है ।

निराला की "सरोजस्मृति" (1938 ई॰) हिन्दी का श्रेष्ठ शोकगीत है । यह उनकी सर्वाधिक व्यक्तिपरक रचना है । इसमें कवि के आत्मसंघर्ष का सघन रूप दिखाई पड़ता है । उन्हें अपनी विषम-स्थितियों को पार न कर सकने का बेहद दर्द है ।

अपनी इकलौती बेटी के अप्रत्याशित निधन पर कवि का यह शोकालाप है । अपनी अर्थहीनता से ही बेटी की असामयिक मृत्यु हुई । इसकी ग्लानि कवि के हृदय को बुरी तरह बिंध कर डालती है । अनुभव की करुण गाथा को विसंगतियों और व्यंग्य विडम्बनाओं के आधार पर और भी करुण बना दिया गया है[1] ।

"परिमल" (1929 ई•) का "प्रिया के प्रति" शीर्षक कविता भी पत्नीवियोग की वेदना का करुणगीत है । केवल बाईस वर्ष की अवस्था में (1913 ई•) कवि विधुर हो गये; फिर आजीवन एकाकी रहे । "गीतिका" (1936 ई•) का "गीत" शीर्षक कविता माता की स्मृति पर लिखित है । हिन्दी के ख्यातिप्राप्त साहित्यिक रामचन्द्र शुक्लजी के देहवियोग पर भी निराला ने अपना दुःख प्रकट करते हुए एक शोकगीत लिखा जिसमें हिन्दी साहित्य को शुक्लजी की देन तथा उनके वैयक्तिक गुणों का वर्णन किया गया है । निराला की रचनाएं पाठकों के हृदय को सबसे अधिक प्रभावित करने का यही कारण है कि वे साहित्य एवं जीवन के उच्चतम मूल्यों से अनुप्राणित है; यही नहीं, प्रत्येक शब्द अपने हृदय के अंतरतम गहराई से उमड कर आया है । आपके व्यक्तित्व की संपूर्ण•सच्चाई के भीतर ही उनकी रचनाओं की सृष्टि हुई है ।

1• निराला ने प्रलयंकर शिव के समान स्वयं कटु गरल पान करके हिन्दी काव्य-जगत् को पीयूष वितरित किया ।
- हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ -
- डाॅ• शिवकुमार वर्मा, पृ•486

हिन्दी के कोमलकांत कविता के कर्ता श्री॰ सुमित्रानंदन पंत ने शोकगीति का प्रयोग आपकी 'ग्रंथि {1920 ई॰} और 'उच्छ्वास {1921 ई॰} "आँसू" {1922 ई॰} शीर्षक कविताओं में किया है । ये रचनाएं एकान्त, वैयक्तिक है । उक्त तीनों रचनाओं में वियोग व्यथा से पीड़ित प्रेमी कवि के शोक संतप्त हृदय का करुण क्रंदन है । विरह की सान्द्र भावधारा के ताने-बाने से कवि ने इन काव्यों का आकार अत्यन्त निपुणता एवं कारीगरी से बुना है । काव्य के अन्त तक आते ही वे विरह को जीवन का आत्यन्तिक सत्य मान कर आश्वस्थ होते हैं । "ग्रंथि" में स्वयं कवि ने अपने प्रेम की ग्रंथि खोल कर प्रस्तुत किया है । ग्रंथि की कथा में व्यक्तिगत जीवन की एक घटना का उद्घाटन करके कवि ने अपने वैयक्तिक दुःख को सार्वभौम बनाने का प्रयास किया है । नायक एक मधुमास-रात में नौका-विहार के लिए निकलता है । उनकी नाव जल में डूब जाती है । वे अचेत हो जाते हैं; जब चेतना लौटी तब वे अपने को एक अनिंद्य रूपसी बालिका की गोद में पाते हैं । उसे देखकर आँखें मिलाते ही उनके प्राण पुलकित हुए; उसीने उनके हृदय में प्रणय की एक ग्रंथि डाल दी । लेकिन समाज द्वारा अस्वीकृत होने से वह ग्रंथि-बन्धन अन्यत्र हो जाता है । उनकी प्रेयसी नव कमल-मधु-सा प्रेमी का मन लेकर किसी अन्य मानस का विभूषण हो गया । प्रणय की वह ग्रंथि अभी तक वे न खोल सके । भावात्मक सच्चाई से यह कवि की आत्मकथा प्रतीत होती है । वियोग व्यथा में तल्लीन हो कर वे उपालंभ देते हैं कि 'निरपराधों के लिए भी तो संसार कारागार होता है । वे अखिल ब्रह्मांड में वेदना का करुण उद्गार सुनते हैं "तुहिन में, तृण में, उपल में, लहर में, तारकों में, व्योम में वेदना ही

वेदना पायी जाती है[1]।" बार बार उस सुमुखी का ध्यान तड़ित् सी आकर कवि को अधिक अधीर बना देता है। उनके प्राण उसको खोजने जाते हैं। इस काव्य के बारे में श्री शचीरानी गुर्टू का कथन है - "पंत द्वारा रचित ग्रंथि कवि की व्यक्तिगत प्रणय वेदना की सहज उद्भूति है, जिस में विफल प्रणयोन्माद और प्राणों की अजान तड़पन छिपी है। कवि का हृदय दुःख दग्ध और चिंताओं से जर्जर है, तो भी आन्तरिक पीडा ज्वलित आभा बन कर फूट पड़ती है[2]। "उच्छ्वास" में भी किशोरवय का प्रेम तथा यौवन की भावनायें व्यक्त की गई है। यह भी एक असफल प्रेम की कथा है। प्रकृति के सुरम्य वातावरण में दो अज्ञात मानस मिले, स्नेह-शशि बिंबित था; किंतु अनिल-सा अकरुण आघात ने वह प्रेम-प्रतिमा चूर कर दी !!

"आँसू" में भी असफल प्रेमी का उच्छ्वास ही आँसू बन कर प्रवहित हुआ है। उनके हृदय के उद्गारों से इस गीले गान का चयन हुआ है। इसके प्रत्येक वर्ण में उनके उर का कंपन है; प्रति शब्द में सुधि की दंशन है। चरण-चरण में आह भरी हुई है इन आँसुओं के कण-कण में उनकी करुण कथा है। एक-एक आँसू की बूंद में वाडव का दाह भरा पडा है[3]।

---

1. ग्रंथि, पृ. 128
2. सुमित्रानंदन पंत काव्यकला और जीवन दर्शन" में संपादक श्री शचीरानी गुर्टू - "पंत और शैली शीर्षक लेख, पृ. 353
3. आँसू - पंत हरी बाँसुरी सुनहरी टेर, पृ. 34

चिदम्बरा §1949 ई॰§ की "नमन" शीर्षक कविता में पंत जी ने अपने पिता का स्मरण किया है । रवीन्द्रनाथ टैगोर के प्रति उनकी स्नेह-स्मृति है "कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति" शीर्षक गीत । "बापू" काव्य में उन्होंने बापू के दारुण अन्त्य पर शोक-प्रकटन के साथ बापू के महान् गुणों एवं उनकी बडी सेवा का गायन किया है ।

"लोकमान्य तिलक के निधन पर" उन्होंने और एक शोकगीत लिखा "शशि की तरी" भी इनका एक शोकगीत है । इसमें एक बाला की मृत्यु का वर्णन है । अत्यन्त तीव्र मानवीय अनुभूति की इसमें अभिव्यक्ति हुई है । "ग्राम्या" की "वे आँखें" भी इस कोटि में आती है ।

महादेवी वर्मा का संपूर्ण काव्य-जगत् करुण रस से आप्लावित है । नीहार §1930 ई॰§ "रश्मि" §1932 ई॰§ "नीरजा §1934§ सांध्य गीत §1936 ई॰§ इत्यादि आपकी संपूर्ण रचनाएं शोक से आविल रही है । आपके "नीहार" काव्य संग्रह का "मुझर्या फूल" एक प्रतीकात्मक शोक गीत है । इसमें एक अल्पायु फूल के क्षणिक जीवन द्वारा मनुष्य के जीवन का उत्थान, पतन और अन्त्य को भंग्यन्तरेण प्रतिपादन किया गया है छायावादी कवियों में महादेवी जैसी वेदना-जनित विह्वलता किसी अन्य कवि में नहीं है । भावुकता का प्राधान्य व अनुभूति की सघनता इनके गीतों में पायी जाती है । प्रकृति के नाना उपकरणों द्वारा अज्ञात प्रियतम के प्रति आत्म निवेदन के रूप

में उन्होंने अपना हृदय भाव अभिव्यक्त किया है । इनकी कविता के बारे में डॉ॰ नगेन्द्र का कथन है - "महादेवी ने अज्ञात प्रियतम के प्रति प्रणय निवेदन किया है, किन्तु उनका प्रणय दुःख प्रधान है; उनकी वेदना की तुलना प्रसाद के आँसू काव्य के अन्त में दिखाई देनेवाली करुणा की अनुभूति से की जा सकती है[1] ।"

"बापू के प्रति" और रवीन्द्र के महाप्रस्थान पर" शीर्षक रचनाओं द्वारा उक्त महात्माओं की स्मृति पर अपनी अश्रुपूर्ण अंजलि अर्पण कर देती हैं ।

रामेश्वरी देवी मिश्र चकोरी का नाम छायावाद युग के उत्तरार्ध की काव्यधारा के अंतर्गत आता है[2] ।" ये बड़ी प्रतिभाशाली रहीं । बाईस वर्ष की अल्पायु की परिधि में रचित इनकी कवितायें "उषागीत" §1932 ई॰§ किंजल्क §1933 ई॰§ और मकरन्द §1939 ई॰§ । ये तीन संकलनों में प्रकाशित हुईं । इनमें प्रेम के वियोगपक्ष की वेदना अपने चरम रूप में पायी जाती है । "प्रतिरोध" शीर्षक आपकी कविता में उनकी यह प्रार्थना है कि कोई अपनी जीवनवीणा के अस्त-व्यस्त तारों को छोड़ने का प्रयास न करें । "एक घूँट" में अपने असफल प्रेम को एक कथा सुनाती है । अपने बीते दिनों की अनुभूति की कदन कथा इनके प्राणों में मूक आलाप करती रहती है ।

1॰ हिन्दी साहित्य का इतिहास डॉ॰ नगेन्द्र, पृ॰561

2॰ हिन्दी के आधुनिक कवि - व्यक्तित्व और कृतित्व - श्री रवीन्द्र भ्रमर, पृ॰103

श्री· माखन लाल चतुर्वेदी "एक भारतीय आत्मा" के नाम पर विख्यात है । गीति काव्य के चयन में इनको विशेष सफलता मिली है । सन् 1914 में चतुर्वेदी जी के पारिवारिक जीवन पर एक वज्रपात आ गिरा । उनकी नवोढा किन्तु हृद्रोगी पत्नी श्रीमती ग्यारसीबाई का देहान्त हुआ था । अल्पायु में दिवंगता पत्नी के प्रति कवि के मन की विरह वेदना अत्यन्त मार्मिकता के साथ "हिमकिरीटिनी" §1942 ई·§ शीर्षक गीत में अभिव्यक्त हुई है । हिमतरंगिनी §1949§ के अनेक गीतों में भी प्रियतमा के चिरवियोग से कवि के चित्त पर लगे इस आघात की छाप मिलती है । "समर्पण" §वि·2013§ नामक काव्य संकलन में भी कवि की इस तिक्त अनुभूति का आत्मालाप मुखरित हो उठता है । वे शरीर से योद्धा और विचारों से क्रांतिकारी होने पर भी हृदय से प्रेमी होने से पिता और पत्नी की मृत्यु के पश्चात् एकाकी होकर जीवन संग्राम लडे रहे । इसलिए इनके बारे में कहा गया है कि "उनकी वाणी और कंठ राष्ट्रीयता का गर्जन अवश्य करते थे । फिर भी उनके हृदयतल में अनुमानत: यह कोमल भाव तरंगित हो रहा था और काव्य मंदाकिनी इन रागात्मक लहरों में कलोल करती रही थी"[1]।

श्री· सियाराम शरण गुप्त के संपूर्ण साहित्य में करुणा का स्वर मुखरित है । उनमें एक ईमानदार कवि की प्रामाणिक अनुभूति और अभिव्यक्ति पायी जाती है । अपनी पत्नी के असामयिक चिरवियोग के कारण आपके सारे स्वप्न टूट गये । उनकी वैयक्तिक ज़िन्दगी मिट गयी । उनकी सारी रातें विफल रही ।

1· आधुनिक हिन्दी काव्य तथा मलयालम काव्य - डॉ·एन·ई· विश्वनाथ अय्यर, पृ·165

उनके दिन शुष्क-नीरस बन पडे; आजीवन एकाकी रहने पडे । शोक की इस गहरी चोट से उनका मन बुरी तरह आहत हो गया था । पत्नी-निधन से उत्पन्न उनका गरम उच्छ्वास ही "विषाद" §1928 ई॰§ में हम अनुभव करते है । दूर्वादल §1929 ई॰§ में संकलित कविताओं में भी व्यक्तिगत जीवन के संघर्ष, अपने विधुर जीवन का विषाद एवं करुणा का अंकन हुआ है । "एक फूल की चाह" और "अनाथ" शीर्षक रचनाओं में एक हरिजन पिता-बेटी की व्यथा-कथा है तो "अनाथ" में भारत के एक दरिद्र किसान परिवार की भीषण-दरिद्रता की दुःख-गाथा है । समाजगत वैषम्य इनमें पाया जाता है ।

"हूक" शीर्षक कवितामें अपनी बेटी की किशोरावस्था में ही ऐहिक जीवन से मुक्त हो जाने से उत्पन्न शोक को वाणी दी गयी है । "बापू" नामक काव्य §1940 ई॰§ में गांधीवादी कवि ने अपने आराध्य पुरुष के देहवियोग पर शोक प्रकट किया है । गांधीजी का गुणगान करते हुए उनके महत्वपूर्ण कार्यों का उल्लेख भी किया है । प्रो॰ कन्हैयालाल की राय में "यह प्रशस्तिगान के बदले मानवता का काव्य है ।"[1] कवि ने "आत्मोत्सर्ग §1932 ई॰§ नामक खण्ड काव्य में देश के महान नेता एवं अमर शहीद श्री॰गणेश शंकर विद्यार्थी के आत्मबलिदान का बहुत कारुणिक आख्यान प्रस्तुत किया है ।

---

1. सियाराम शरण गुप्त डॉ॰ कन्हैयालाल, पृ॰90

श्री• बालकृष्णशर्मा "नवीन" भारत की कोख में जन्मे अनेक मूल्यवान् रत्नों में एक है। स्वाधीनता आन्दोलन के प्रवाह में बहने पर भी आपकी गहरी सृजन क्षमता ने हिन्दीको अनेक उल्लेखनीय कृतियाँ प्रदान की है। आपकी पत्नी का स्वर्गवास गौने से पूर्व ही हो गया था। स्वस्थ कवि के भावुक चित्त की अतृप्त प्रेम भावना का गीला चित्र उनके गीतों से मिलता है। "छोडो न" शीर्षक इनकी कविता में उनके विरहातुर मन की टीस और तनाजों का अत्यन्त दर्द नाक चित्रण पाता है। मन बसी प्रिया की स्मृतियों में अपने को खो बैठ वे अपने अतृप्त हृदय का करूण आलाप करते हैं। हृदय स्थित प्रेयसी ही अपने निरर्थक जीवन को आगे बढाने की शक्ति प्रदान कर देती है। फिर भी अपनी चिर-संगिनी के बिना उनका हर क्षण शोक से भारभूत हो उठता है। किंतु करणीय केवल इतना हैकि यौवन के उन एकांत निमिषों को पूर्वस्मृतियों का पल्ला पकड हृदय को तसल्ली देना। आपके "प्राणार्पण" (1942 ई•) शीर्षक काव्य गणेश शंकर विद्यार्थी की शहीदगी को विषय बना कर रचा गया है। इसमें भारतमाता के उस अमर पुत्र के देश-प्रेम व अन्य मानवीय गुणों की प्रशंसा के साथ-साथ हिन्दू-मुस्लीम दंगों के भीषण अमानवीय व्यवहार का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करके कवि ने वियुक्त आत्मा के प्रति अपना अगाध शोक व्यक्त किया है।

"शांतिदूत शास्त्री" नामक गीत स्व•प्रधान मंत्री एवं देश के महान नेता लालबहादूर शास्त्री की पुण्यस्मृति पर कवि की श्रद्धांजलि है। उनका आकस्मिक निर्याण समस्त भारतवासियों के लिए एक अप्रत्याशित आघात था।

श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान ने अपनी सरल सुन्दर सौम्य मधुर एवं गरिमामय गीतों द्वारा हिन्दी साहित्य को सम्पन्न किया है । "मुकुल" (1959 ई॰) काव्य संकलन के "पुत्रवियोग" शीर्षक शोकगीत में चौहान जी की ममता एवं वात्सल्य की पुकार गूंज उठी है । यह शोकगीत इतना मर्मस्पर्शी है, मानों उनका पुत्रवियोग से तप्त मातृहृदय ही उसमें साकार हो उठा है । माँ-बेटे के बीच के रागात्मक संबन्ध का सहज सुन्दर चित्र भी इसमें पाया जाता है । अनुभूति की सघनता और दिली ग्राह्यता से यह एक अप्रतिम शोक गीत है । सघनशोक के मौन आलाप की अभिव्यक्ति के कारण यह शोकगीत पाठकों की हृत्तंत्रियों में मार्मिक पीडा पैदा करता है । पुत्र-शोक से आहत सभी माताओं के वर्णित वात्सल्य को कवयित्री ने इसमें वाणी दी है । "मुकुल" का "जलसमाधि" शीर्षक कविता भी उसकी कारुणिकता के कारण शोकगीत की कोटि में आती है । नर्मदा नदी के भंवर में फंस डूब मरे देवीशंकर जोशी का दारुण अन्त्य ही इसकी प्रेरणास्रोत है । निर्दय विधि की निष्ठुरता तथा उसके आगे जीवों की कातरता एवं लाचारी का करुण चित्र इसमें खिंचा गया है ।

श्री॰ हरिशंकर राय बच्चन छायावादोत्तर हिन्दी गीतकारों में अग्रणी है । इनके "निशानिमंत्रण" (1938 ई॰) एकांत संगीत (1939 ई॰) तथा "आकुल अन्तर" (1943 ई॰) काव्य संकलन में एक असहाय, एकाकी विधुर मन की प्राणलेवा कसक रूपायित हुई है । आपकी पत्नी श्यामा के आकस्मिक निधन से उत्पन्न तीव्र वेदना और मानसिक तनाव एवं भावों की तीक्ष्णता इनमें पायी

जाती है । कवि अपनी प्रेयसी के अंतिम दिनों की याद करते हुए कहते हैं "श्यामा के और अपने विवाह जीवन के अंतिम 18 महीनों में मुझे और उसे दोनों को मौत के साथ संघर्ष करना पड़ा । मेरे संघर्ष में श्यामा ने अपनी इतनी आंतरिक मंगल कामना दी, इतनी सेवा दी कि उस संघर्ष में विजयी हुआ, परन्तु वह पराजित हो गई[1] ।

"खादी के फूल (1946) सूत की माला (1949 ई) ये दोनों काव्य गांधी जी पर लिखी श्रद्धांजलि हैं ।

श्री• उपेन्द्रनाथ अश्क ने भी कतिपय शोक काव्य लिखे हैं, जिनमें आपकी स्वर्गगता पत्नी शीला की तप्तस्मृतियाँ अंकित है । "प्रात:दीप" "विदा" सूनी घड़ियों में" और "दीप जलेगा" आदि काव्यों में ये शोकगीत पाये जाते हैं । "विदा" में कवि ऐसी स्थिति में हैं कि उन्हें दु:ख का प्याला पीकर हृदय के घाव सीकर जीना पड़ता है । वे यह सोचकर बारबार शोक संतप्त हो उठते हैं कि जिसे उन्होंने शीतल प्रेम सागर समझा था, उसी में उनके समस्त मोहक स्वप्नों को, गत मधुर अनुभूतियों को भस्म कर देनेव बाड़वाग्नि सो रही थी[2] । अकेलेपन की घड़ियों में कवि के चिरनिद्रित सपने जाग उठते हैं। अपनी प्रियतमा की बुझती स्मृतियों को लेकर लिखी गयी उक्त रचनाओं से लगता है कि वे आँसू की मोतियों का हार बना कर प्रिया की स्मृतिमूर्ति पर अर्पण कर देते हैं

1• एकांत संगीत - आमुख

2• दीप जलेगा - उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ•36-37

कवि की अन्तर्वीणा के तार असहनीय पीडा से खिंच कर टीस भरी तीखी तान आलाप करते हैं ।

आधुनिक हिन्दी काव्य में ' श्री रामधारी सिंह "दिनकर" राष्ट्रीयता और मानवता की प्रखर किरणों को विकीर्ण करनेवाले दिनकर ही माने जाते हैं । आपका "बापू" नामक शोककाव्य में महात्मा गांधी के दारुण अन्त्य तथा राष्ट्रपिता के महान गुणों एवं करनियों का महात्म्य-वर्णन हुआ है । गांधी जी पर किए गए अत्याचार का समाचार एक वज्रपात-सा जन-गण-मन पर टूट पडा । इस करुणार्द्र प्रसंग के वर्णन के साथ दिवंगत पावन आत्मा का महत्व तथा अपने अल्पत्व की तुलना करके उन महात्मा की स्मृति पर श्रद्धांजलि अर्पित कर देते हैं ।

गांधीजी की स्मृति पर अनेक शोकगीत लिखे गये हैं । उनमें कतिपय कृतियों का नामोल्लेख दी है - भगवतीचरण वर्मा की "मेरी कविताएं" (1974 ई.) शीर्षक काव्य संकलन की "अंतिम प्रणाम" शीर्षक कविता बापूजी के महाप्रयाण पर कवि का अन्तिम प्रणाम है[1] । राजेश्वर गुरु का "बापू-स्मृतितर्पण" भी गांधी जी के प्रति आपका श्रद्धांजलि परक शोकगीत है ।

सोहनलाल द्विवेदी का "महाप्रयाण" "राष्ट्रदेवता" और "महानिर्वाण" ये तीनों कविताएं गांधीजी की स्मृति पर लिखी हुई हैं । देश के अन्य महान नेताओं की स्मृति पर भी इन्होंने गीत

---

1. मेरी कविताएं भगवती चरण वर्मा, पृ.217

लिखे है । स्व० जवाहरलाल जी पर "तरुण तपस्वी जवाहर" "राणा प्रताप के प्रति" शीर्षक गीत महाराणा प्रताप की स्मृति पर समर्पित आपकी आदरांजलि है । "राष्ट्रदेवता" नामक पर एक गीत इन्होंने भूतपूर्व स्व० राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद के वियोग पर लिखा है । "भाई महादेव देसाई" उनकी स्मृति पर लिखा गीत है[1] ।

महान कवि एवं साहित्यकारों के निधन पर अनेक श्रद्धांजलि परक गीत कवियों द्वारा लिखे गये हैं । वे सभी समाज और देश या संसार की पूंजी एवं विभूतियां है, अतः उनके देह वियोग से हुई हानि समस्त देश की हानि मानी जाती है ।

सोहनलाल द्विवेदी ने विश्व कवि टैगोर के देहवियोग पर गुरुदेव के प्रति" शीर्षक शोकगीत लिखा । उन्होंने निराला और प्रसाद के असामयिक मृत्यु से उत्पन्न शोक से यथाक्रम "निराला के प्रति" और "प्रसाद की पुण्यस्मृति पर" दो गीत लिखे । साहित्य सम्राट प्रेमचन्द की स्मृति को अमर करने के लिए "प्रेमचन्द के प्रति" शीर्षक शोकगीत लिखा ।

अलावा इसके श्री शिवमंगल सिंह "सुमन" ने भी विभिन्न साहित्यिकों की स्मृति पर शोकगीत लिखे । "दिनकरके आकस्मिक अवसान" "हा प्रसाद" "स्व०प्रेमचन्द के प्रति" "युगान्तरकारी निराला के प्रति" आदि इस प्रकार के शोकगीत है ।

---

1. जय भारत जय मुक्तिगंधा - सोहनलाल द्विवेदीके काव्य संकलन

निराला को इन्होंने "चिरविदग्ध" कहा है। इनकी स्मृति पर गीत लिखने की प्रेरणा का स्पष्टीकरण देते हुए वे कहते हैं कि "अपने मन को कुछ शांति पाने के लिए अपने दर्द भरे चित्त को मनाने के लिए, इन महानों का महत्व जग को सुनाने के लिए तथा इन प्रिय बंधुओं की स्मृति को अमर करने के लिए मैं ने लिखा है[1]।

उपर्युक्त अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि आधुनिक हिन्दी साहित्य में शोक काव्य की एक नयी धारा विकसित हुई और विभिन्न साहित्यकारों की रचनाओं से यह ज्यादा संपन्न हुई है। अगले अध्याय में आधुनिक हिन्दी के कतिपय प्रमुख शोकगीतों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाएगा।

-----

1. हिल्लोल शिवमंगल सिंह "सुमन", पृ.25

तीसरा अध्याय

हिन्दी के प्रमुख शोक-काव्य - विवेचनात्मक अध्ययन

तीसरा अध्याय

हिन्दी के प्रमुख शोक काव्य - विवेचनात्मक अध्ययन

सरोजस्मृति

"सरोजस्मृति" श्री सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की लंबी कविता है। यह हिन्दी के श्रेष्ठ शोक गीति काव्यों में से है। अपनी बेटी सरोज के आकस्मिक निधन ने जो गंभीर तथा अप्रत्याशित आघात निराला पर लगाया, उससे क्षतविक्षत कवि हृदय से फूट पडनेवाला करुणास्राव ही "सरोजस्मृति" में देखने को मिलता है। सवा साल की मातृ-विहीना पुत्री के लिए स्वयं पिता और माता भी बन कर उसके अस्तित्व में उन्होंने अपने जीवन की अर्थवत्ता समझ रखी थी। उनकी जिजीविषा की आधार-शिला को नष्ट करके जब मृत्यु ने उस लाडली को छीन लिया तो निराला ने कभी भी अपने को इतने अभावग्रस्त, संत्रस्त,

निरर्थकता की चिंता से ग्रस्त, अपराधबोध से व्यथित और अकेलापन के एहसास से आकुल नहीं पाया था ।

पुत्री की मृत्यु ने वस्तुत: उनके पार्थिव अस्तित्व के आगे प्रश्न-चिह्न लगा दिया । जिएं तो किसलिए ? काहे के लिए ? पहले ही माँ, पत्नी आदि स्वजनों के कालकवलित हो जाने के लिए साक्षी बने निराला के मन में बेटी की मृत्यु ने जीवनाधार के एकदम भग्न हो जाने की विह्वलता भर दी । आशापाश शतै: बद्ध जीवन की अयुक्तिक और विसंगतिपूर्ण अवस्था की उपहासास्पदता का तीखा अनुभव उन्हें घेरे रहा । वह एक ओर मृत्यु के दुर्निवार प्रभुत्व की निष्ठुरता पर असहाय प्राणी के समान उन्हें बिलखा देता है । दूसरी ओर, अपनी दु:सह पीडा को अपने ही अन्दर दबाए रखने के परिश्रम की सहज व्यंजना के रूप में गठित तत्वोद्गारों में आश्वासन पाते भी दिखाई देते हैं । लेकिन वे ऐसा आश्वासन पाने की जितनी कोशिश करते हैं, उतनी ही उनकी आत्मवेदना तीव्र होकर वेगवती अश्रुधारा बनकर फूट निकलती है ।

वेदना का बहि:स्फुरण

लाडली बेटी की मृत्यु के यथार्थ के सामने अधीर होकर कराहनेवाले साधारण सांसारिक प्राणी के स्तर से मुक्त होकर "स्थित धी: की स्थिति" में प्रतिष्ठित व्यक्ति के दार्शनिक वचनों के द्वारा निधन को देख लेने का प्रयास काव्य के आरंभ में करनेवाले कवि अपने अन्त:स्थित पितृहृदय के तीव्र स्पन्दन की

पकड में जल्दी ही आ जाते हैं । अपने अन्तरतम की उस करुणा की पुकार को वे अनसुनी नहीं कर सके । कौन व्यक्ति ऐसा होगा जो अपनी बेटी की मृत्यु के सामने दार्शनिक या निर्मम मनुष्य बनकर रह सकता है ? सरोज की आत्मा ने नाम रूपादि छोड कर परम सत्ता में विलयन प्राप्त कर लिया, मृत्यु नाश नहीं; एक तरणी मात्र है । पूर्णालोक वरण की स्वाभाविक प्रक्रिया मात्र है; वह जीवन-सिंधु तरण है, यह मरण नहीं है, वरन् ज्योतिः शरण-तरण है । भारतीय आध्यात्मिक चेतना से अनुप्राणित निराला के अन्तरतम के तत्वदर्शी के मृत्युचिंतन में भौतिक जीवन की यह मृत्यु-रूपी विराम-बिंदु "न कुछ" के आतंक के बदले "स्वर्गद्वार मनावृतम्"[1] के चरम परितोष की वरेण्य स्थिति है । लेकिन "वेत्ता" और पिता दोनों बेमेल पहलू हैं, मरण के सामने । तनया-निधन पर रोनेवाले हृदयस्थित पिता की अश्रुधारा को बुद्धिगत तत्ववेत्ता का विचार-सेतु मंद बना सकता है, लेकिन पूर्णतः रोक नहीं सकता । वह बाँध से रिस-रिस कर बाहर आती ही रहेगी । पिता के लिए पुत्री की मृत्यु हृदयविदारक पीडा के अलावा और कुछ हो ही नहीं सकती । उस पितृहृदय की दुर्दमनीय वेदना का दुर्निवार बहिस्फुरण -

> "तनये, ली कर दृक्पात तरुण
> जनक से जन्म की विदा अरुण !"[2]

और

---

1. भगवद्गीता
2. सरोजस्मृति - अपरा - निराला, पृ.146

"जीवित कविते ! शत-शर-जर्जर
छोड़ कर पिता को पृथ्वी पर / तू गई स्वर्ग[1]

में प्राप्त होता है ।

"तनये", "जीवित कविते" आदि संबोधन में अपनी गुज़र गई बेटी के प्रति कवि के मन में तरंगित रहनेवाला वात्सल्य ही व्यंजित होता नहीं, अपितु अपने निरर्थक बने पितृत्व की करुणार्द्र पुकार भी अनुगुंजित है । जीवन को जीवितव्य बनानेवाले मूल प्रेरक तत्व की विच्छित्ति पर कराह उठनेवाली जिजीविषा की मूर्छा ममता के स्निग्ध धागे के टूट जाने की उद्विग्नतापूर्ण पीडा भी उनमें अनुभूयमान है ।

कौन ऐसा है जो अपनी सारी इच्छाओं और अभिलाषाओं को साध कर यहाँ से विदा ले लेता है ? अल्पायु में संसार छोड़नेवालों के अरमानों का तब क्या कहना ? वे अधूरे ही रह जाते हैं । माँ-बाप भी ऐसे विरले ही होते हैं जो अपने बच्चों की सारी अभिलाषाओं की पूर्ति कर बिल्कुल आश्वस्त हो बैठते हैं । बच्चों की जितनी इच्छापूर्ति वे कर देते हैं, वे सब उनकी दृष्टि में कम ही ठहरती हैं । ऐसी स्थिति में, प्रिय जनों की इच्छापूर्ति कर देने की आशा के रहते हुए भी, उसमें अपने को असमर्थ पानेवाले का मन ग्लानि से भर जाता है । ऐसे प्रियजनों की मृत्यु तो हमारी इस असमर्थता एवं तज्जनित ग्लानि को अपराध बोध की ग्रंथि में परिणत कर देती है । हम आत्महीनता के शिकार पड़े तो आश्चर्य नहीं । अभावग्रस्त जीवन परिस्थितियों

---

1. सरोजस्मृति - अपरा - निराला, पृ.146

चरितार्थ न हो सकनेवाले निराला के अन्त:स्थित पिता का यही रूप वे अपने आँसुओं में प्रतिबिंबित देखते हैं -

"अपने आँसुओं में अत: बिंबित
देखे हैं अपने ही मुखचित्त !"[1]

इससे बढ़कर एक पिता का दयनीय एवं करुणार्द्र चित्र क्या हो सकता है ? "मैं पिता निरर्थक" अनुभव करनेवाले निराला के लिए आत्मनिंदाग्रस्त शोचनीय पितृत्व एक जीवित तत्य ठहरा । अर्थागमोपाय से अनजान रहना, निज दीन अवस्था में भी पर-दु:ख कातर होना आदि चारित्रिक विशेषताएं निराला जैसे निस्वार्थ को स्वार्थ समर में पराजित होने को बाध्य कर गई । फलत: अपनी बेटी की बालसुलभ इच्छाओं और अभिलाषाओं की पूर्ति कर देने में वे असमर्थ ही रह गए । निराला का वात्सल्य बढ़ता रहा, मन में, और दारिद्र्य बढ़ता गया, घर में । सपने, सपने रह गए । बेटी गुज़र गई ।

अभावग्रस्त जीवन-परिस्थितियों का शिकार बन कर दिवंगत बेटी की यादें निराला को समाज के प्रति इतना क्षुब्ध कर देती है, कि उनके मुख से तीव्र वेदना की आँच से युक्त व्यंग्यबाण तत्कालीन साहित्य-समाज पर वर्षित होते हैं । पुत्री की मृत्यु की अनिवार्यता को स्वीकार करने के साथ-साथ

---

1. सरोजस्मृति - अपरा - निराला, पृ.147

व्यंग्य में सिकुड़े मुख से उसे "यह हिन्दी का स्नेहोपहार" कह कर तत्कालीन साहित्य मंडली और संपादकों की निर्दयता पर वे चाबुक मारते हैं। कभी उनके सामने पराजय स्वीकार नहीं करते। उनकी अन्तःचेतना बोल उठती है -

"यह नहीं हार मेरी, भास्वर
यह रत्नहार लोकोत्तर वर।"[1]

उन्हें खेद इस बात का है कि "पद्य में समाभ्यस्त उनकी सुप्रमाणित काव्यकुशलता की हिन्दी जगत् ने अवहेलना की। उसके परिणाम-स्वरूप तमाम जीवन अभावग्रस्त ही रहा, उनकी प्यारी बेटी की जान भी चली गयी। उस समय के अपने आत्म संघर्ष, और यातनापूर्ण जीवन की झांकी, जाने-अनजाने कवि की अनुभूति का निश्छल प्रकाशन पूरी ईमानदारी के साथ इस काव्य में व्यक्त हुआ है।

व्यथा की सघनता

जिसके प्रति वात्सल्य के कारण वे धनोपार्जन के उपायों के बारे में सोचते फिरते थे, जिसकी इच्छापूर्ति के लिए वे प्रति-निमिष उत्कंठित रहते थे, वह वत्सल बेटी सरोज आज स्मृतिपुंज बन चुकी है। वे अब उसकी छोटी ज़िन्दगी की विभिन्न अवस्थाओं के सुन्दर निमिषों की याद कर रोते रह जाते हैं।

---

1. सरोजस्मृति - अपरा- निराला, पृ. 147

उनके सामने सरोज के शैशव के दिन बाल-सुलभ भोली-लीलाओं की मंजुलता एवं वर्णभंगिमा के साथ पुनः प्रस्तुत होते हैं, और वह स्मृति उस समय के "निशिवासर मोद भरे उस घर" की ओर उन्हें ले जाती है । अपने भाई के हाथों मारे जाने पर फूट-फूट कर रोनेवाली सरोज अपने पिता के मुँह से वात्सल्य सिक्त वाणी सुन लेने पर ही, उनसे वात्सल्य स्पर्श प्राप्त करने पर ही आश्वस्त होती है । बेटी का मन बहलाने के लिए पिता उसे गंगा-तट पर ले जाते हैं । उस धवल पुलिन पर विहार करने पर सारा दुःख भूल कर वह हँसने लगी[1] । पिता-पुत्री के बीच के सहज आत्मीय संबंध का यह मनोरम चित्र निराला की आँखों के साथ सहृदय पाठकों के नेत्रों को भी अश्रुकलुषित कर देता है ।

जब उसी वत्सल पुत्री के भोले शैशव की मुग्ध स्मृति -

"याद है दिवस की प्रथम धूप
थी पड़ी हुई तुझ पर सुरूप,
खेलती हुई तू परी चपल
मैं दूरस्थित प्रवास से चल ।[2]" में संवलित होकर कवि

की विषमता पूर्ण जीवन परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में सामने आती है तो निराला के हृदय के पुत्री-वात्सल्य की गहराई के एहसास के साथ-साथ उस चिरवियोग की व्यथा की गहनता भी अनुभूत होती है ।

---

1. सरोजस्मृति - अपरा - निराला, पृ.149
2. वही, पृ.150

वात्सल्य की इस घनिष्ठता ने ही, पुत्री-प्रेम की इस प्रगाढता ने ही, पुनर्विवाह से उन्हें रोक लिया था। उन्होंने चाहा कि उनका सारा प्यार अपनी मातृविहीना बेटी को ही मिले; अतः किसी दूसरे को उसका भागीदार होने नहीं दिया। इसीलिए ही पुनर्विवाह के अनेक बार मित्रों और रिश्तेदारों के दबाव पड़ने पर भी "मैं हूँ मंगली" कहकर उन सब प्रस्तावों को उन्होंने ठुकरा दिया। जब वे अकेलापन की भीषण घड़ी में फटते हृदय से विचार मग्न हो जाते हैं तब उनको लगेगा कि शायद विधि भी उनके पुनर्विववाह के अनुकूल नहीं रही हो। एक बार सास एवं मित्रों के अनुरोध से वे दूसरी शादी की सम्मति देनेवाले थे कि खिलखिलाकर हँसती हुई पास आनेवाली बेटी के दर्शन ने उन्हें सचेत कर दिया और तुरंत ही विवाह में न फँसने का तीव्रविचार मन में जाग उठा। जन्मकुंडली उन्होंने बेटी को खेलने दी। नादान बच्ची ने उसे टुकडे-टुकडे कर दिये, मानो अदृष्ट के हाथों भविष्य के अनर्थ का उन्मूलन होते देख कर कवि स्वयं आश्वस्त हो रहे हों -

"संकेत किया मैं ने अखिन्न
जिस ओर कुंडली छिन्न भिन्न
देखने लगी वे विस्मय भर
तू बैठी संचित टुकडों पर।"[1]

---

1. सरोजस्मृति - अपरा - निराला, पृ.152

पुत्री-वियोग-व्यथा के आवेगपूर्ण प्रवाह में उठती स्मृति-तरंगों में तिरता वह पितृहृदय बेटी के उभरते यौवन के लावण्य के स्मरण में भावुक हो उठता है । पुत्री के सौंदर्य के उस वर्णन में वस्तुत: पुत्री-वत्सलता का तीव्र प्रवाह ही अनुभूयमान है, अपने पितृ व्यक्तित्व की चरितार्थता एवं गर्व की भावना अनुगुंजित है । "बाल-लीलाओं के प्रांगण को पार कर धीरे-धीरे चरण बढा कर सुघट तारुण्य पर आसीन कन्या का सुषमामय रूप नैश-स्वप्न सदृश रहस्यमय और जागरणगीत के समान नवोन्मेषदायक था । बेटी की आभा से सारी परिचित सीमाएं आलोकित हो गई । उसकी सुषमा का प्रसार प्रात: कालीन उषा की तरह अम्बर, अवनि वृक्ष-लतादियों तक फैल गया । उसकी चितवन ऐसी प्रतीत हो रही थी मानों धरती की अतल गहराइयों से स्नेहसिक्त धारा फूट पडी हो । उसकी वह सहज दृष्टि स्नेहसिक्त-धारा की भांति ऊपर नील रंग के पर्वत का स्पर्श करने और क्रीडा करते करते टलमल करती हुई ऊपर की ओर जाने को आतुर है, किन्तु उस चितवन पर संयम का पहरा है । बेटी का समग्र रूप और सौंदर्य संयम में बंधा होने के कारण केवल आंखों में ही छलकता है ।[1]"

पुत्री की यादें न जाने कितनी भाव तरंगों को कवि-चित्त में जाग्रित कर देती हैं । उसके सौंदर्योत्कर्ष में आत्म हर्ष का अनुभव करनेवाले कवि उसकी स्वर-माधुरी पर मुग्ध हो जाते हैं । उसके कंठ की संगीतमयता उन्हें कितनी प्रेरणादायक अनुभूत हुई है । विनष्ट व्यक्ति के गुणों का ऐसा काव्यात्मक चित्रण उस व्यक्तित्व के प्रति कवि के रागसंबंध या ममता अथवा आत्मीयता को ही नहीं उद्घाटित करता, अपितु उसके साथ उसके वियोग से उत्पन्न पीडा एवं तज्जनित नष्टबोध की आकुलता

---

1. सरोजस्मृति - अपरा - निराला, पृ.152

तथा निराशा की निस्सीमता भी अभिव्यक्त करता है ।

कवि पुनः अपनी बेटी के अतिशय सौंदर्य पर विस्मित होकर कल्पना करते हैं कि पुत्री अपने सौंदर्य रूप में कवि की दृष्टि में आकर समा गई और उनके हृदय में जो कवि विद्यमान है, वह वस्तुतः बेटी की ही भावनाओं का साकार रूप है । उसकी ही भावनाओं ने कवि के हृदय की भावनाओं रूपी कुंज को गुंजित कर दिया है, और "उस गुंजन ने तरु-पल्लव, कलिदल आदि को भी गुंजित कर दिया है । तभी एक अज्ञात छटा प्रकाशित हुई और पुत्री के केशों तथा कोमल मृदुल शरीर को स्पर्श करके चली गई । वह तो इस चेतना के विस्तार को - यौवन के आगमन को - निष्पलक भाव से देखती रही[1] । कवि के लिए उसकी उस मर्यादित दृष्टि और संयत जीवन को पहचानने में कोई कठिनाई नहीं हुई ।

वेदना के अन्य उद्दीपनकारी तत्व

कन्यादान में पितृधर्म की श्रेष्ठता का दर्शन करनेवाली भारतीय परंपरा के अनुयायी निराला अपनी परिणीता तनया के मृदुहास से चमकते चेहरे को निहार कर कितने आश्वस्त हुए थे, धन्यता पाते थे[2] । लेकिन उन्होंने अपनी हीनताओं के लिए हेतुभूत सामाजिक तत्वों से बुरी तरह चोट खाई थी । उनकी यादें अब कन्या की मृत्यु के दुःख के लिए उद्दीपनकारी हो गयीं ।

1. सरोजस्मृति - अपरा, निराला, पृ.154
2. वही, पृ.154

अतः उनकी व्यथा बीच बीच में विद्रोहात्मकता घृणा और व्यंग्यविद्रूप का स्वर अपना कर तेज़ और कर्कश रुख अपना कर बहिःस्फुरित होती है । इसी विद्रोहात्मकता और घृणा ने ही कवि से अपने वर्गवालों को "खाकर पत्तल में छेद करनेवाले नमकहराम कान्यकुब्ज कुलांगार"[1] कहलाया और समाज-सम्मत परंपरागत रीति के विरुद्ध नए ढंग से बेटी का विवाह भी करवाया । फिर भी वे विद्रोहात्मक तथा समाजविरोधी भाव बेटी के विवाह के उचित ढंग से संपन्न हो जाने पर अनुभूत परितृप्ति एवं आश्वासन के आगे निस्सार ही ठहरते हैं । बेटी की वह अविस्मरणीय मृदु मुस्कान उनके सब प्रकार के कष्ट सहन का प्रतिदान ही उन्हें अनुभूत हुआ ।

निराला के जीवन में एक के बाद एक करके कई भीषण प्रहार हुए, जिन्होंने कवि को क्षत विक्षत कर लिया । "सरोजस्मृति" में कवि निराला हृदयवादी तथा वेदनादग्ध कलाकार के रूप में प्रकट हुए है । "किंचिच्छेष भविष्यति" वाली उक्ति निराला पर चरितार्थ हुई । जीवन के नग्न यथार्थ का जो अनुभव उन्हें हुआ है, पूरीईमानदारी के साथ इस कविता में उसकी अभिव्यक्ति हुई है, अपने तिक्त अनुभवों के बारे में वे कहते हैं -

---

1. सरोजस्मृति - अपरा - निराला, पृ. 154

"देखें वे; हँसते हुए प्रवर
जो रहे दिखते सदा समर
एक साथ जब शत घात घूर्ण
आते थे मुझ पर तुले तूर्ण ।[1]

प्रिय जनों के वियोग तथा आर्थिक कठिनाई - इन दोनों ने कवि के मानसिक संतुलन को नष्ट कर दिया । उनके मन को दु:ख एवं निराशा ने घेर लिया । उन्होंने स्वयं अपने को भाग्यहीन कहा है । जीवन की कथा दु:खपूर्ण ही रही । आर्थिक अभाव के कारण पुत्री की चिकित्सा ठीक से वे कर न पाए । अपनी विपन्नावस्था में रोकर मन हल्का करने के अतिरिक्त वे कुछ कर ही न सके । उनको पराजय स्वीकार करनी ही पड़ी । अपने अन्तर्मन की समूची वेदना वे यों प्रकट करते हैं -

"धन्ये मैं पिता निरर्थक था
कुछ भी तेरे हित न कर सका[2] !"

विद्रोहात्मकता

जीवन में अपनी पराजय के स्वीकार करने में स्वार्थ-रत समाज के प्रति भड़क उठनेवाली क्रोधाग्नि की आँच व्यंग्य विद्रोहों की ध्वनियों में अनुभूत होती है । निराला का यह विद्रोही चेहरा पुत्री दु:ख से ऐसी सामाजिक प्रतिक्रियाओं से

---

1. सरोजस्मृति - अपरा - निराला, पृ.148
2. वही, पृ.147

और भी तेज़ हो उठता है, जब बेटी का विवाह रूढि के विरुद्ध रीति से करवा देते हैं। दुःख की परिणति के तत्वविचार से आरंभ होकर उसी तत्वचिंतन की बिंदु पर समर्पित दुःख हृदय तंत्री को शिथिल कर देता है। पुत्री के लिए कुछ भी न कर सकने की असमर्थता से उत्पन्न चिंता ने उन्हें क्षुब्ध कर दिया यथासमय चिकित्सा करते तो वह बच जाती। लेकिन कोई चारा नहीं था। बदले में वे इतना कह पाये कि बेटी! मैं अपने पुराने जन्मों के सारे कर्मों को समर्पित कर तेरा तर्पण करता हूँ।[1]

आर्थिक विषमता के भँवर में फँसनेवाले निराला पुत्री का उचित उपचार न करा सके। धन कमाने की विद्या उन्हें आती थी किंतु उन स्वार्थमय उपायों को वे अपना कर न सके। संपादकों ने उनकी रचनाओं को भी लौटा दिया। उस ओर भी वे हताश थे। अतीव खिन्न होकर उन लौटी रचनाओं को कांख में रख कर उदास बन नील गगन की ओर शून्य दृष्टि डाल कर प्रांतर में दीर्घ प्रहर वे बैठते रहे।[2] लेकिन उनके घात प्रतिघातों के बीच में भी उनका अजेय व्यक्तित्व सिर ऊँचा कर खड़ा रहा। दुःख का सामना छाती तान खड़ा करते थे। उस अप्रतिम व्यक्तित्व की एक झांकी -

---

1. सरोजस्मृति - अपरा - निराला, पृ.148
2. वही, पृ.150

"एक साथ जब शत घात घूर्ण
आते थे मुझ पर तुले तूर्ण
देखता रहा मैं खडा अपल
वह शर-क्षेप, वह रण-कौशल ।"[1]

मृत्यु की दीनता, निराशा एवं अनुताप की वेदना, सामाजिक वैषम्य, आर्थिक विपन्नता, साहित्यिक उपेक्षा, इकलौती पुत्री के चिरवियोग से उत्पन्न आघात, उसके प्रति अतीत की स्मृतियाँ ये सब मिली-जुली अनुभूतियाँ एकाकार होकर कवि के सामने आती तो वे अडिग रहते हैं। दु:ख के मुख पर निर्निमेष देखते रहते हैं। इस शोक काव्य की आलोचना करते हुए प्रो. देशराजसिंह भाटी कहते हैं "सरोजस्मृति" कवि के करुण हृदय की, अपनी बेटी के निधन पर पढी गयी पवित्र ऋचा है, जिसका स्पर्श कर मन मौत से संघर्ष करने के लिए उद्यत हो उठता है[2]। डॉ. रेखा खरे ने भी इसके बारे में ऐसी राय प्रकट की है कि "सरोज-स्मृति" कविता जहाँ एक ओर कवि के रूढि-विरोधी अजेय व्यक्तित्व को व्यक्त करती है, वहीं वह उसके अप्रतिम साहस से परिपूर्ण मनोजगत् का अविस्मरणीय रूप प्रस्तुत करती है[3]।

चिंतनपक्ष

रेत के मकान के समान एक ही निमिष में ढह पडनेवाले सांसारिक जीवन की क्षणभंगुरता और अनिश्चितता की भयानकता

1. सरोजस्मृति - अपरा - निराला, पृ. 148
2. निराला और उनकी अपरा: प्रो. देशराजसिंह भाटी, पृ. 325
3. निराला की कविताएँ और काव्य भाव डॉ. रेखा खरे, पृ. 105

का अपनी लाड्ली बेटी की मृत्यु के द्वारा और एक बार भी अनुभव करने को विवश कवि उसे अनुभूति के स्तर पर दुबारा जीने की कोशिश करते हैं । मृत्यु के अनिवार्य यथार्थ को स्वीकार करते हुए असहायतापूर्ण स्वर में विषादकलुषित शब्दों में वे इतना ही स्वस्तिवचन के रूप में कह सकते हैं -

"तू खिली, स्नेह से हिली, पली
अन्त भी उसी गोद में शरण
थी, मूँदे दृग वर महामरण ।[1]"

शिष्ट जीवन यात्रा को अज्ञात मंजिल तक जारी रखने की निसंगतापूर्ण धर्म-चेतना से प्रेरित होकर अज्ञेयता की ओर मुडे कवि बेटी के गतकाल कर्मों के पुण्य का तर्पण करके आश्वस्त हो जाते हैं -

"मरणं प्रकृति: शरीरिणाम्[2]"

पुत्री-वियोग ने कवि के कोमल मन को निर्दयता से झकझोरा । इस परिणाम-स्वरूप पिता निराला की हृदय पीडा "सरोजस्मृति" के रूप में फूट निकली । स्वजन निधन की पीडा को हल्का करके स्वयं आश्वस्त होने की सहज प्रवृत्ति के रूप में और नर जीवन के

---

1. सरोजस्मृति - अपरा - निराला, पृ.158
2. भगवद्गीता

दुरन्त के बारे में बौद्धिक चिंतन करने के परिणाम रूप में आदिकाल से मृत्यु मानव चिंतन का विषय रही है । राजा का शासन दंड और सेनापति की तलवार मृत्यु के सामने हार मानती है । ऐसी मृत्यु को पराजित करने के लिए मनुष्य सौंदर्य और ईश्वर की कल्पना में अपने को स्वयं निमज्जित कर देता है । ईश्वर स्थूल भौतिक जीवन के परे हैं । उन पर आस्था रख कर मनुष्य असीम दृढता एवं शक्ति का अनुभव करता है । क्योंकि मृत्यु के खूनी पंजे उस प्रभु को पकड नहीं सकते । वे मृत्यु की सीमा से बहुत दूर हैं । मृत्यु तो तरण-स्वर्ग में पहुँचने की तरणि-मात्र है ।

निराला का विश्वास है कि अपनी बेटी भी स्वर्ग पहुँच चुकी है । पिता भी उस ज्योतिस्तरण के चरणों पर पहुँचने के लिए आकुल है । दु:खमोचन तो महा मरण का वरण करने मात्र से मिलता है । यहाँ हम केवल यात्री है । इस दुनिया में शरीर धारण करनेवालों का शाश्वत सत्य यही है[1] । जो जन्म लेता है सो मर जाता है, स्वर्ग के कल्पतरु पर खिल जाने केलिए । "सरोजस्मृति" के कवि भी इस शाश्वत सत्य की घोषणा करके मरण को पूर्णालोक वरण कर परमास्तित्व को आस्थावादी भारतीय आध्यात्मिक चेतना से आश्वासन प्राप्त करते दिखाई देते हैं । निराला पुत्री सरोज की याद करते हुए कहते हैं कि "हे पुत्री सरोज, अभी तो तुम उन्नीस वर्ष की हुई थीं और इस प्रकार जीवन के प्रांगण में तुमने पहला चरण रखा था कि तुम्हारा निधन हो गया, तुमने इतनी अल्पायु में ही जीवन रूपी सागर को पार कर लिया । हे पुत्री ! तुमने युवावस्था में ही अपने पिता से

---

1. "जातस्यहि ध्रुवामृत्यु:
ध्रुवं जन्म मृतस्य च " - भगवद्गीता

इतनी कारुणिक विदाई ले ली । और इतनी अल्पायु में ही आँखें बन्द कर लीं । हे मेरी पवित्र गीते ! तुमने अपनी मृत्यु के साथ ही अपने सांसारिक रूप और नाम को त्याग दिया तथा चिर शांति में लीन हो गयी, मृत्यु को वरण कर लिया[1] ।" सरोज की मृत्यु निराला में अनस्तित्व की चेतना जन्य अभाव की आकुलता, तड़प, क्रंदन और असंयत भावावेग को उत्पन्न नहीं करती । बदले में उनकी पीडा सहज आध्यात्मिक चेतना और दार्शनिक आन्वित हीनता से नियंत्रित होकर करुणा के गहन शान्त प्रवाह के रूप में निकल पड़ती है ।

संयमन और अकृत्रिमता

मृत्युचिंतन के तात्विक स्तर से शुरू होनेवाला यह काव्य जीवन की धज्जियाँ उडानेवाली आत्महीनता की दार्शनिक मनोभूमि में परिसमाप्त होता है । यहाँ निराला के भावचक्र की पूर्णता एवं उसके अन्दर संयत रहनेवाले मूलभूत शोकभाव का विकास देखने लायक है । मृत्युपरक दार्शनिक चिंतन से संयमित होकर शोकात्मक चित्तावस्था को विवृत कर देनेवाला शोकगीत का गंभीर होना स्वाभाविक है ।

---

1. सरोजस्मृति - अपरा - निराला, पृ. 146

जीवन की क्षणिकता तथा मृत्यु की अजेयता की वैचारिक अनुभूति संतप्त चित्त में सहज है । ऐसे भावों की व्यंजना शोकगीत की विशेषता है । लेकिन तत्वचिंतन उनके शोक को कम नहीं करता । बदले में दुःख को तीव्र कराने में सहायक होता है । "शोकगीतकार अपने शोक की अभिव्यक्ति के लिए तीव्र क्रन्दन नहीं करता । तत्वचिंतन का गांभीर्य उसके शोक पर लगाम कडी कर देता है । अतः शोक की अभिव्यक्ति में एक प्रकार का नियंत्रण आ जाता है । सरोज स्मृति में भी इस कारण करुणा के प्रवाह में उच्छृंखलता नहीं है । उल्टे, उसमें अंर्तत शोक का गहन वातावरण छाये रहता है ।[1]" कवि के अपने अनुभवों की सह-स्थिति में औपचारिक शोकनिवेदन के कृत्रिम तल से सरोजस्मृति अपने को अलग करती है । कवि के निजी अनुभव से संबद्ध होने के कारण अनुभूतिमूलक वैयक्तिकता और अभिव्यक्ति मूलक अकृत्रिमता इसमें सहज ही पायी जाती है ।

यह शोकगीत न तो छोटा और न अतिविस्तृत । अतिदीर्घ विवरण देकर पाठकों में विरसता पैदा करने का प्रयास नहीं हुआ है । उल्टे, मृत्यु की दीनता, निराशा एवं अनुताप की वेदना, सामाजिक वैषम्य, आर्थिक विपन्नता, साहित्यिक उपेक्षा, बेटी के चिरवियोग से उत्पन्न आघात, उसके प्रति अतीत की दुखद स्मृतियाँ आदि एकाकार होकर पाठकों की दृष्टि निराला पर ठहरती है; दूसरी ओर नहीं बदलती । इसलिए इसकी आलोचना के संदर्भ में डॉ॰रेखा खरे ने

---

1. महाप्राण निराला - गंगाप्रसाद पाण्डेय, पृ॰354

बताया है कि "सरोज-स्मृति" कविता जहाँ एक ओर कवि के रूढ़ि-विरोधी अजेय व्यक्तित्व को व्यक्त करती है, वहीं वह उसके अप्रतिम साहस से परिपूर्ण मनोजगत् का अविस्मरणीय रूप प्रस्तुत करती है[1]।"

निष्कर्ष

"सरोजस्मृति" निराला की सर्वाधिक व्यक्तिपरक रचना है। इसमें उनके आत्मसंघर्ष और पराजय का सघन रूप दिखाई पड़ता है। बेटी के प्रति वात्सल्य और करुणा ने काव्य के कलेवर को अत्यधिक मार्मिक बना दिया है। जीवनगत सत्य का अनुभूति-परक वर्णन होने के कारण काव्य में दार्शनिकता आ गयी है। अनुभव की करुण गाथा को विसंगतियों और व्यंग्य विडम्बनाओं द्वारा और भी करुण बना दिया गया है। काव्यरूप की दृष्टि से यह हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ शोक काव्य है।

ककककककककककककककक

----

1. निराला की कवितायें और काव्य भाव - डॉ. रेखा खरे, पृ. 105

पुत्रवियोग

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान का यह शोककाव्य आपके पुत्र के असामयिक निधन पर लिखा गया है । पुत्र के चिरवियोग पर दुखिनी माता अतीत की स्मृतियों में खोयी बैठी है ।

निर्दय नियति का विनोद

रोज़ की तरह सूरज का उदय हुआ । दिशाएँ प्रफुल्ल हुई । सब कहीं उल्लास-कोलाहल मच उठा । लेकिन एकमात्र कवयित्री दुखी बैठी है । उनका खोया हुआ खिलौना अपने पास वापस नहीं आया । अपने मृत-पुत्र को और एक बार देखने के लिए कवयित्री का मन लालायित हो उठा ।

जब वह जीवित रहा तब बड़ी सावधानी से जागरूक होकर माता ने उसका लालन-पालन किया । कहीं ठंड लग जाय,

इस भय से अपनी गोद मे उन्होंने उसे नीचे नहीं उतारा । मॉ की पुकार सुनते ही वे सारा काम काज जैसे के तैसे छोड कर पुत्र के पास दौड आती मॉ ने उसे गोद में उठा कर थपकी एवं तसल्ली देकर सुलाया था । लोरियॉ गा-गा कर उसे सुलाती थी, जिसकेलिए उन्होंने थपकियॉ दी, लोरियॉ गाई, जिसके मुख पर तनिक मलिनता देख आँखों में रात बिताई थी जिस लाडले के लिए पत्थर को भी देव बनाकर नारियल, दूध, बताशे आदि चढ़ा कर सिर नवाती थी, उस बेटे को क्रूर नियति उठा ले गई । अपने बेटे को छीन लेते देख माता असहाय विवश बैठ गयी । पुत्र तो वापस नहीं आया ।

"जिस केलिए फूल अपनापन
पत्थर को भी देव बनाया
कहीं नारियल दूध बताशे
कहीं चढाकर शीश नवाया ।
फिर भी कोई कुछ न कर सका
छिन ही गया खिलौना मेरा
मैं असहाय विवश बैठी ही
रही उठ गया छौना मेरा[2] ।

माता के प्राण पुत्र-शोक से विकल होकर तड़प रहे हैं । पल भर के लिए भी उनको शान्ति नहीं मिलती । बेचैन होकर वह इस सत्य को स्वीकार करने की चेष्टा करती है

1· मुकुल {पुत्रवियोग} - सुभद्रा कुमारी चौहान, पृ·169
2· वही, श्लोक 4,5, पृ·169

कि मृत बेटा वापस नहीं आएगा । अपना खोया धन फिर पा नहीं सकती । इस परम सत्य को जानने पर भी उसका मन रोता रहता है, शायद इसलिए कि रोने से कोई फायदा ही नहीं । रोने के सिवा उसके सामने और कोई चारा है ही नहीं । जिन्दगी उसके लिए नीरस, शुष्क जान पड़ती है । उसका छोटा संसार बिल्कुल शून्य बन पड़ा है । अब तक जिस संसार को बेटे ने अपने हास-विलास तथा तोतली बोली से सजीव एवं प्रकाश पूर्ण बनाया था अब वह अंधकार से आच्छन्न हुआ । संसार उसका उजड़ गया । जिन्दगी उसकी, रेगिस्थान बन गई ।

तड़प रहे हैं विकल प्राण ये
मुझको पल भर शांति नहीं है
वह खोया धन पा न सकूँगी
इसमें कुछ भी भ्रांति नहीं है
फिर भी रोता ही रहता है
नहीं मानता है मन मेरा
बड़ा जटिल नीरस लगता है
सूना-सूना जीवन मेरा ।[1]

अब माता के मन में यही एक तीव्र इच्छा बनी रहती है कि अगर फिर एक बार चाहे, पल भर के लिए भी हो अपना पुत्र मिल जावें तो कितना अच्छा हो जाता । तब माता उसे बड़े प्यार से छाती से लगाकर उसका सिर सहला सहला कर उसे समझायेंगी कि मेरे बेटे ! अब अपनी माता को यों दुखिनी

---

1. मुकुल - सुभद्राकुमारी चौहान, पृ. 170

बना कर छोड़ न जा । अपने बेटे को खोकर जीना माता के लिए अत्यंत कठिन कार्य है । पुत्र दुःख सहनेवाली माता का किसी भी तरह की तसल्ली पाकर आश्वस्त होना असंभव है । अगर कोई सान्त्वना देने का प्रयास करें तो वह विफल हो जायगा । पुत्र का चिरवियोग माता सह न पाती । पुत्र के बदले और कोई भी इस का मेल न कर पाता । पुत्र के वियोग पर माता का मन हमेशा जलता रहेगा । चाहे भाई या बहन उसे भूल सकती है, पिता भी शायद उसे भूल सकते हैं, किन्तु, माता जो दिन-रात उसकी साथिन है, कभी भी उसे भूल न पायेगी ।

"भाई बहन भूल सकते हैं
पिता भले ही तुम्हें भुलावे
किन्तु रात-दिन की साथिन माँ
कैसे अपना मन समझावें ।"[1]

आहत वात्सल्य की करुण पुकार

इस शोकगीत में सुभद्राकुमारी चौहान ने अपने मातृहृदय की पीड़ा को गागर में सागर" जैसे समेट कर लिया है । शोककाव्य लिखनेवाले कवियों की लेखनी की नोक पूजा की पवित्रता से आपूरित है । इस पवित्रता के साथ बिना किसी छिपाव-दुराव से कवयित्री ने अपने आहत वात्सल्य की करुण अभिव्यंजना की है । इस काव्य की प्रति पंक्ति इसका निशान है

1. मुकुल - सुभद्राकुमारी चौहान, पृ. 170

कि पुत्र-वियोग-जन्य शोक कितना तीव्र है । उनके सौभाग्य-सदन में अचानक दुःख रूपी कालिमा फैल गयी । माता चाहे शिक्षित हो या अशिक्षित, पुत्र के स्नेह सलिल से ओत-प्रोत मन उसके चिर-वियोग पर आँसू बहाये बिना न रहेगी । उसके मन में वियोग की अग्नि जो भभक उठती है, वह कभी बुझ न पायेगी उस जलती ज्वाला में वह आजीवन स्वयं जलती रहेगी । उसके हृदय के दुःख का इतिहास कौन लिख सकता है ? पुत्र के दर्शन केलिए उसका मन पुकार उठेगा । उसके हृदय रूपी कमरे में पुत्र के लिए निर्धारित आसन सदा खाली रहेगा । पल भर के लिए ही सही, उसके मिलन की आकांक्षा से वह तरसती रहेगी । इसलिए कि उसे जी से लगा कर प्यार-पुचकार कर समझाएगी कि माँ को छोड कर कभी न जाना ।

"यह लगता है एक बार यदि
पल भर को उसको पा जाती ।
जी से लगा, प्यार से सर
सहला, सहला उसको समझाती
मेरे भैया, मेरे बेटे, अब
माँ को यों छोड न जाना
बडा कठिन है बेटा खोकर
माँ को अपना मन समझाना ।"[1]

---

1. मुकुल - सुभद्राकुमारी चौहान, पृ.170

माता जानती है कि उसकी यह कामना केवल कामना ही रहेगी, सच न निकलेगी । इससे अवगत होकर वह इतना ही कर पाती है कि लाडले की तस्वीर अपने अन्तःस्थल के कोने में छिपा कर प्रतिपल आँसू-रूपी मोती की माला पहनाती रहे । उसका रोता मन निरन्तर उसका नाम रटता रहेगा ।

स्त्री के संरक्षण का दायित्व बचपन में पिता पर, यौवन में पति पर और बुढ़ापे में पुत्र पर होता है[1] ।

पुत्र के अप्रत्याशित एवं असामयिक निधन से कवयित्री के अपने बुढ़ापे की लाठी नष्ट हुई । बेटे के सुनहले भविष्य के प्रति अनगिनत सुन्दर सपने उसने देखे होंगे, अब उनके सारे सपने मिट्टी में मिल गये । जीवन का तेजोमय चेहरा मलिन पड़ गया है । माता के जीवन में प्रभात के साथ-साथ सांझ भी आया है ।

मातृ-हृदय की तीव्र व्यथा की इस अभिव्यक्ति में प्राणों के स्नेहबंधन की मधुर-स्मृति झलकती है । माता के आहत मन के उद्गार छिपाये नहीं छिपते । फलस्वरूप विवश होकर प्राणों से गीत फूट निकलता है । पुत्र-वियोग से उत्पन्न इस करुणाकलित गीत में हृदय को निरन्तर दग्ध करनेवाली गहन व्यथा स्मृति की सांसों से सुलगती है । आत्मा को विकल बनाने वाली इस पीडा को बर्दाश्त करना मुश्किल हो रहा है ।

---

1. "पिता रक्षति कौमारे
पति रक्षति यौवने
पुत्रो रक्षति वार्धक्ये
न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति" । भर्तृहरि

माता मानस की आहत वात्सल्य भावना विषाद से तरंगायित होकर स्मृति पुलिनों को छूती हुई छलछल बह रही है । उसके टूटे दिल से बार-बार यह उद्गार निकल आता है कि

"रात दिन की साथिन माँ
कैसे अपना मन समझावें ।"[1]

माता के अन्तर्मन से निकली यह पुकार पाठकों के हृदय में भी लहू के एक फूल को खिला देती है ।

"नारी केवल माता है और इसके उपरान्त वह जो कुछ है वह सब मातृत्व का उपक्रम मात्र है ।"[2]

मनु से आरंभ कर गांधीजी तक प्राय: सभी भारतीय महात्माओं विचारकों की यही मान्यता रही है कि नारी माता होने के कारण ही पूजनीया है । सुभद्राकुमारी चौहान ने "पुत्र-वियोग" में मातृहृदय का जो मर्मस्पर्शी करुण-कोमल चित्र खींचा है, वह मातृत्व की गरिमा से मंडित है । यह केवल एक माता का चित्र नहीं, सभी स्त्रियों में विभिन्न रूप में मातृत्व का यह भाव उसी तरह अभिन्न रूप से जुडा हुआ है, जैसे फूल के साथ सुगंधी या दीपक के साथ प्रकाश । माता की ममता भरे हृदय का इससे सुन्दर चित्र अन्यत्र दुर्लभ है ।

1· मुकुल - सुभद्राकुमारी चौहान, पृ·170
2· गोदान - प्रेमचन्द्र, पृ·163

काव्यात्मकता

यह शोकगीत अकृत्रिम भावाभिव्यक्ति का स्फुटोदाहरण है । आकार में छोटा होने पर भी भावाभिव्यक्ति की तीव्रता की दृष्टि से यह काव्य तंग घाटों से होकर बहनेवाले झरने के समान है। जीवन की दुःखात्मकता में डूब कर आँसू के मोतियों को बटोर अपनी संतान के स्मृति चित्र पर अर्पण करके सुभद्राकुमारी चौहान ने भारतीय नारी के मातृत्व की गरिमामयी स्थिति को और भी ऊँचा कर दिया है ।

आँसू बहानेवाला व्यक्ति आँसू पोंछने के लिए समर्थ होता है । यह, भावशील अंतर्वृत्ति का एक स्वभाव होने के कारण सृजनात्मक-प्रतिभासंपन्न नारियाँ अंधकारमय इस गर्त में डूब मोती चुनना पसंद करती है । आँसू के महत्व को पहचानने की क्षमता जितनी इनमें है उतनी दूसरों में नहीं । इस शोक गीत के द्वारा सुभद्रा जी ने इसी तत्व का समर्थन किया है । पुत्र-मरण की चोट से उद्भ्रांत माता ने पुत्र के प्रति एक अमर स्मृति चित्र प्रस्तुत कर दिया है ।

सुभद्रा कुमारी चौहान हमेशा लालित्य की धनी रही है । आभ्यंतरिक रचना-प्रेरणा के कारण निष्कपट भावाभिव्यक्ति और साफ-सुथरी भाषा का अयत्न प्रवाह इन में पाया जाता है । एक दुखिनी माता का वात्सल्यपूरित हृदय

तथा अश्रु छल-छल आनेवाला मुखमंडल इसमें झलक उठता है ।

निष्कर्ष

पुत्र शोक से आहत मातृहृदय की वेदना की सही अभिव्यक्ति होने के कारण यह काव्य अत्यधिक प्रभावोत्पादक बन गया है ।

----0----

आँसू

जैसे काव्य का शीर्षक ही स्पष्ट करता है, "आँसू" का अनुभूति-तल शोकाकुलता का है। उसका कारण कवि की प्रेयसी का चिरवियोग है। इसकी चोट खाकर तड़पने वाले प्रेमी कवि की आत्मवेदना की करुणाजनक व्यंजना इस काव्य में प्राप्त होती है।

दूरस्थकाल के प्रेम संबंध को अकस्मात् विरामबिंदु लगाकर सदा के लिए चली हुई प्रेयसी की ओर प्रेमलहरी प्रेमनशा से भरे विगत दिनों की दुर्निवार स्मृतियों की दुर्दमनीय पीड़ा की हूक से "आँसू" मुखरित है। अनचाहे ही मनोमंडल में आकर घिरनेवाली वे क्रदनबन्धुर स्मृति घन-मालाएं एकदम बरस पड़ने लगती है, "आँसू" में। हृदय जब वेदना से भरने लगता है, तब उस घुटनकारी चित्तावस्था से मुक्ति पाने का एक मात्र उपाय और सहज

संप्रदाय भी रुदन है । अपनी व्यथा-कथा किसी न किसी प्रकार दूसरों पर अभिव्यक्त करना है, चाहे सुननेवाले को उसमें रुचि हो या न हो । आँसू के पीछे भी यही मनोवृत्ति सक्रिय रहती है । उस विधुर प्रेमी के अंतरंग में गरज उठनेवाली तीव्र वेदना - उस व्यथित हृदय में बज उठनेवाली विकल तरंगिणी उन्हें बिलखा देती है । फिर उस विलाप के परिणाम स्वरूप संप्राप्त आश्वस्थ चित्तावस्था में उन्हें मानवजीवन और मृत्यु पर तत्वविचार करते देखते हैं । उस दार्शनिक मनोभूमि में आत्मनिन्दा ग्लानि, अदृष्ट दूषण आदि का स्थान तो नहीं है । कवि भी शान्तिस्थ हो मृत्यु को मृण्मय के लिए स्वाभाविक स्वीकार करते हैं और देहमुक्त आत्मा की अनश्वरता की अवधारणा के आधार पर अपनी प्रेयसी के वायवी अस्तित्व को अपनी जीवन ज्योति के उन्नत उदात्त पद पर प्रतिष्ठित करते हैं । उपर्युक्त विशेषताएं निस्सन्देह "आँसू" को एक साधारण विरह काव्य की स्थिति से बढ कर एक श्रेष्ठ शोककाव्य की कोटि में ला रखता है ।

<u>काव्य का प्रतिपाद्य</u>

कवि का किसी रूपवती युवती से प्रेम था । "जीवन की गोधूली में मुस्कयाती राका" के समान उपस्थित उस युवती के साथ प्रथम दर्शन में ही कवि ने इतना घनिष्ठ संबन्ध महसूस किया मानो वह उन्हें कब की परिचित थी । उस प्रगाढ प्रणय के सारे दिन मन बहलाने की क्रीडाओं में ही बीत जाते थे । अत: वे दिन बिल्कुल मादक और मोहावेशपूर्ण रहे थे । आत्मविस्मृति के उन प्रेमोन्मत्त दिनों को खत्म कर एक दिन वह अपने प्रेमी को अकेला छोड कर ऐहिक से मुक्त हो जाती है । यह अप्रत्याशित आघात कवि को

झकझोर कर देता है । कई दिनों तक इस मर्मांतिक पीडा के वश में पड कर वे तडपते रहे । काल की गति के साथ सहज ही उसकी तीव्रता कम हो सकी, वे अपने चित्त की समस्थिति पुन: प्राप्त कर सके । लेकिन इसका यह अर्थ नहीं था कि अपनी दुखद स्मृतियों से वे बिल्कुल मुक्त हो गये हो । प्रत्युत: वह दु:ख उनकेलिए दुर्निवार था । वे विगत दिनों के सुखद क्षणों की स्वर्गीय अनुभूतियों को भूलना चाहते थे, भूलने का कठिन परिश्रम भी करते थे । वे स्मरणाएँ मिटी नहीं, केवल कवि के अंतरंग की तहों में जा छिपी थीं । बीच-बीच में वे स्मृतियाँ जाग पड़ती है और कवि को शोकमग्न बना देती है । उनके मनोमंडल में नक्षत्रों के समान बसती या पीडा की ज्वालामयी जलन से उडनेवाली चिनगारियों के समान झुलसा देती रही है । प्रियतमा के साथ हुए उस "महामिलन" के "शेषचिह्न" के रूप में मन में पडी ये स्मृतियाँ कभी उन्हें मस्त बनाती है, कभी सिहरा देती है ।

ऐसी वैवश्यपूर्ण स्थिति में अपने ऊपर आए भारी नुकसान की चिंता उन्हें संत्रस्त बना देती है, और सर्वहारे की स्थिति में वे अपने को देखने लगते हैं । स्मृति पद पतन से तुडनेवाली आँखों के छालों से अश्रु की धारा निरंतर: प्रवहमान रही । फिर भी इस विपन्नावस्था में भी वे धीरज न खो बैठे । वे संयम के साथ अपनी अन्त:शक्ति के सहारे इस विकल वेदना को स्वीकार कर सके, दुख को ललकार कर सके ।

संयम और विवेकिता उन्हें दुनिया की रीति से सचेत कर देते हैं कि अपना दुखडा किसी से रोना व्यर्थ है, क्योंकि जीवन ही अनियत है, भाग्यास्पद है, अभिलाषाओं की करवट,

सुख की स्वप्निलता तथा व्यथा की प्राप्ति, प्रेम करना, प्रेम किया जाना, उसका परिणाम अश्रुपात-यही तो जिन्दगी है ।

व्यथित प्रेमी की मानसिक प्रतिक्रिया

कवि कभी-कभी बीती बातों की यादों की पकड़ में पड़ जाते हैं । ऐसे एक दिन सारे संयम को तोड़कर उनके अन्दर सांद्रीभूत वेदना आँसुओं की बरसात बन कर एक लंबे विलाप के रूप में निकल पड़ती है ।

जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृती सी छायी
दुर्दिन में आँसू बन कर
वह आज बरसने आयी ।[1]

इस अश्रुधारा में अपनी प्रेयसी की छवि, झिलमिलाहट, उससे संलग्न अतीत के मिलन सुख की मधुरानुभूतियों का कलरव सब एक बारगी अनुभूयमान कराये गये हैं । ये सब उन्हें शोकाकुल बना देते हैं । नीरव एकांतता के तट पर बैठ कर अतीत के उन दिनों की मधुर घड़ियों की याद करते हुए एक एक करके कवि अपनी बीती सुनाते हैं । जिस समय उनके जीवन में धुंधलापन छाया हुआ था, आगे का मार्ग अनिश्चितत्व में फंसा हुआ था उस समय अचानक नई प्रेरणा के रूप में उनकी प्रेमिका का साक्षात्कार हुआ था । उसकी कांतिमान आकार-सुषमा का

1. आँसू प्रसाद, पृ. 14

कितना गहरा प्रभाव उनके दिल पर पड़ा था । उस प्रभाव वैभिन्न के रूप में प्रेमिका के सांगोपांग वर्णन के बाद कवि उसके वाग्विलास की भंगिमा का परिचय देते हैं ।

मुरली मुखरित होती थी
मुकुलों के अधर विहँसते
मकरन्द भार से दब कर
श्रवणों में स्वर जा बसते ?[1]

उसके साथ व्यतीत हुए निमिष प्रेम और सौंदर्य-निर्वृति का मधुकण ही थे । वह अजीब सुखमय जीवन शीघ्र ही समाप्त हो गया । कवि को चिरवियोग की अनबुझी आग में झेल कर वह निष्ठुर प्रेमिका सदा के लिए चली गई । दिनों तक वे अपना दुखड़ा रोते रहे । वैयक्तिक दुःख के आँसू बहाते बहाते वे क्रमशः ऐसी संयमित आश्वस्त या मोहमुक्त दार्शनिक चित्तावस्था में पहुँच जाते हैं, जिस में पर-दुःख ज्ञान भासित होता है, और दुःख आत्म हनन और जड़ता-अकर्मण्यता- के नकारात्मक तत्व के बदले विश्वकल्याणकारक त्याग और सेवा की भावनाओं को उत्प्रेरित करनेवाली विश्ववेदना के श्रेयस्कर साधन दीखने लगता है । यहाँ तक आते-आते कवि अपने वैयक्तिक नष्ट के दुःख से स्वयं मुक्त हो जाते हैं और विनष्ट व्यक्ति के वायवी अस्तित्व को लोक-मंगल की कामना के चिर चैतन्य-तत्व के रूप में स्वीकार करके उसे मृत्युगत नश्वरता के बंधन से मुक्त कर लेते भी है

---

1. आँसू - प्रसाद - छंद 54

इस प्रकार आँसुओं की धारा में धुलकर कवि-हृदय सोने-सा चमकने लगता है। उनका ध्यान अपनी ओर से हट कर समस्त विश्व की तरफ हो जाता है। उन्हें ज्ञात होता है कि वेदना और तज्जनित आँसू मात्र उनकेलिए नहीं है। हर मानव एक न एक प्रकार किसी ट्रेजडी का दुरन्त नायक है। फलत: उनका धीरज बँध जाता है लगता है कि दु:ख अकर्मण्यता का हेतु नहीं, बल्कि लोकसेवा के लिए अनिवार्य आत्मत्याग की भूमिका है।

"चुपके से तब मत रो तू
यह कैसी परवशता है[1]।"

विलाप का स्वर यहाँ बिल्कुल मंद पड जाता है। विगत प्रेयसी को मंगलकारिणी के रूप में देख कर लोककल्याणाभिलाषी के उत्साहपूर्ण स्वर में कामना करते हैं -

"सबका निचोड लेकर तुम
सुख से सूखे जीवन में
बरसो प्रभात हिमकण-सा
आँसू इस विश्व सदन में[2]।"

---

1. आँसू - प्रसाद छन्द 131
2. वही, पृ. 170

वैयक्तिक व्यथा की अभिव्यक्ति

अन्य शोक काव्यों से आँसू का अंतर यह है कि इसमें वियोगव्यथा के लिए हेतुभूत घटना का कोई स्थूल वर्णन या मृत व्यक्ति का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है । छायावादी काव्य शैली में दीक्षित कवि के लिए यह स्वाभाविक है कि वह घटना की स्थूलता की उपेक्षा करके उसके प्रति प्रतिस्पन्दन के रूप में रूपायित अनुभूतियों का प्रतीकात्मक एवं बिंबात्मक वर्णन करके तत्कालीन चित्तावस्था का उद्घाटन करता है । अत: प्रसाद जी भी अपनी प्रेमिका के जीवन चरित की घटनाओं या उनके साथ हुए प्रेम संबंध की श्रृंगारी बातों के स्थान काल नाम आदि से युक्त विवरणों की ओर ध्यान नहीं देते हैं । भावुक कवि के लिए सत्ताधारी व्यक्ति से बढ़कर, काल-देश सीमा बद्ध घटनाओं से बढ़कर उस व्यक्ति से कवि के संबंध का आधारभूत तत्व-प्रेम और गुण-सौंदर्य ही प्रधान है । अर्थात् कवि के लिए वियोग व्यक्ति का नहीं, अपने अन्तरंग तत्वों का है । उनके विनष्ट होने पर उत्पन्न पीडा उनके विशदीभूत होने में आ पड़ी बाधा से है - विराम से है । यही कारण है प्रसाद के वियोग वर्णन में प्रेम के संयोग पक्ष की मादक लहरी की सूक्ष्मानुभूतियों की प्राकृतिक आलंबनों के व्यापारों के रूप में अमूर्त व्यंजना हो गई है । व्यंजना की इस अमूर्तता और मानवीकरण की प्रवृत्ति ने वियोग व्यथा के उतार-चढाव अनुभूत करने में समर्थ स्थूल घटनाओं के वर्णन-निर्देशों-से कवि को अलग रखा । इसके फलस्वरूप एक ओर काव्य का भाव-जगत् - अनुभूति की तराश - एकतानता ग्रहण कर गई ।

दूसरी ओर उसमें वर्णित अनुभूतियों का कहे, उसमें अनावृत व्यथा की वैयक्तिकता संदेह में पड़ गई और उसका लौकिक आधार विवादास्पद ठहरा । इसके अतिरिक्त काव्य की छायावादी रहस्यात्मकता ने भी आँसू की वियोग व्यथा को लौकिक स्तर से अलग कर आध्यात्मिक विरहानुभूति की अभिव्यक्ति मानने को प्रेरित किया है ।

लेकिन यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि "आँसू" काव्य का प्रथम संस्करण जो 1925 में प्रकाशित किया गया था, उसमें केवल 125 छंद थे । वह संस्करण दूसरे संस्करण से इतना भिन्न है कि कभी-कभी आलोचक उन दोनों को अलग-अलग रचनाएं मान लेते हैं । श्री.प्रभाकर श्रोत्रिय कहते है "इस संशोधन और परिवर्द्धन से दूसरे संस्करण में (आज उपलब्ध "आँसू) 190 छंद हैं । छन्दों के क्रम में भी परिवर्तन है । प्रथम संस्करण तीव्र भावावेश विकल हाहाकार से बुलन्द है । वेदना का निरावृत, निश्छल, उन्मुक्त और सच्चा रूप इसमें व्यक्त हुआ है[1] ।"

वेदना के इस अभिव्यंजन (आँसू के इस प्रथम संस्करण पर) उनकी पूर्ववर्ती रचनाओं - लहर, झरना, पथिक जैसी के साथ रखकर देखने पर स्पष्ट होता है कि प्रसाद जिन दर्दनाक परिस्थितियों से होकर जिन व्यथित चित्तावस्थाओं से गुजर रहे थे, उनका केन्द्रीभूत अभिव्यंजन ही आँसू है । प्रसाद ने अपने जीवन में प्रेम की चोट खाई थी । उन के जीवन में प्रियावियोग - प्रिया का निधन - हुआ है[2] ।

---

1. प्रसाद के काव्य में प्रेमतत्व - प्रभाकर श्रोत्रिय, पृ.134
2. वही, पृ.93

प्रसाद ने अपनी उस प्रेयसी के वियोग पर जिस शोकगीति का प्रणयन किया वही आँसू का प्रथम संस्करण है । काल-गति के अनुसार शोकावेग के मंदीभूत होने पर इस रुदन गीति को, अपनी प्रियतमा के व्यक्तित्व गरिमा और महिमा से मंडित करके नये रूप में दूसरे संस्करण में प्रस्तुत किया । फलतः उसका गौरव बढ़ गया । काव्य में दार्शनिक गंभीरता आ गई । कवि की उदात्त चित्तावस्था का आलोक विकीर्ण हो सका । साथ ही इस काव्य का लौकिक पहलू ओझल हो गया । वैयक्तिक सामाजिक चेतना आध्यात्मिकता के पीछे दब गयी । व्यक्तिगत वेदना की तंत्रियों से विश्ववेदना का स्वर मुखरित होने लगा । आँसू के अन्तर्मुक्त वास्तविक वैयक्तिक दुरन्त प्रणय की ओर संकेत करते हुए नन्ददुलारे वाजपेयी कहते हैं कि "आँसू कवि के जीवन की वास्तविक प्रयोगशाला का आविष्कार है[1] ।" इसकी लौकिकता वास्तविक व्यक्तिगत अनुभव की स्थिति ही श्री रामनाथ सुमन के शब्दों में स्पष्ट होती है । वे कहते हैं - "आँसू" जिन दिनों में लिखा जा रहा था तभी मैं ने इसके अनेक छंद सुने थे । सुनकर कहा, इसमें तो आप छिप न सके । बहुत स्पष्ट हो गए । कवि हँस कर चुप रह गए[2] ।"

उसे मिलन के क्षण इतने सुखकारी प्रतीत होते हैं, कि वह उसे "महामिलन" कहने संकोच नहीं कर सकता, उसकी प्रिया लौकिक है । इसी जगत की है किन्तु कवि की भावना उसे असाधारण बना देती है[3] ।

---

1. जयशंकर प्रसाद - नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ.54
2. जयशंकर प्रसाद - रामनाथ सुमन, पृ.54
3. प्रसाद का पूर्ववर्ती काव्य - उषा मिश्र, पृ 125

यही नहीं, प्रणयिनी की सुषमा का वर्णन करते समय साधारण लौकिक प्रेमी के समान अतृप्ति-जलधि में तिरनेवाला कविचित्त किसी रहस्यात्मक सत्ता के दिव्य सौंदर्य को संवेद्य नहीं बना रहा है। नख-शिख वर्णन के द्वारा जो सांगोपांग सुन्दरता सामने लाई गई है - कवि के स्मृति मंडल में उभर कर आती है - वह हरगिज किसी अलौकिक तत्व की नहीं है; प्रत्युत कवि की प्रेयसी के पार्थिव शरीर की ही है जिसका वर्णन किया जाता है, वह कवि की जीवन संगिनी है, सांसारिक प्राणी है। इसलिए डॉ॰ प्रभाकर श्रोत्रिय का यह मत ठीक ही है कि "आँसू के वियोग का आलम्बन सर्वथा लौकिक है। इस घटना द्वारा प्रकाश में आई प्रेमघटना से कुहराम छट गया है। दूसरे संस्करण की आध्यात्मिकता तथा वायवी शब्दावली के प्रयोग से और इतिवृत्तात्मकता और मांसलता के अत्यंत बहिष्कार से कुछ लोग इसे अलौकिक या सूफियाना प्रेयसी मान बैठे हैं। लेकिन छायावाद के सौंदर्योन्मुखी प्रेम और आवरण की प्रवृत्ति के परिज्ञान से यह भ्रम दूर हो सकता है।"[1]

शोकात्मकता

विपदाओं के झंझा, झकोर, गर्जन, बिजली तथा नीरदमालाओं में घिर गये शून्यताग्रस्त हृदय की तंत्रियों से निसृत तीखी तान के साथ कवि आँसुओं के धागों से जो करुणा-पट बुनते हैं, उसमें वे सर्वप्रथम अपने प्राणाधार स्वरूप प्रेयसी की

---

1. प्रसाद का साहित्य प्रेम तात्त्विक दृष्टि - डॉ॰प्रभाकर श्रोत्रिय, पृ॰144

लावण्यपूर्ण सूरत ही चित्रित करते हैं । उसकी याद इस खिन्नता में भी उनके हृदय को रसाप्लावित कर देती है । वह अब उनका चिर सुन्दर सत्य बन गयी है । पार्थिव जगत् की जीवन संगिनी मात्र वह पहले थी । अब वह उनके जीवन का मंगलमय पद प्रशस्त करनेवाले चैतन्य तत्व के उत्कृष्ट पद पर आरूढ हो चुकी है । इस प्रेमिल मूर्ति की सुषमा के वैविध्यपूर्ण चित्रों का अंकन अश्रुसिक्त वर्णों में बडी काव्यात्मकता के साथ कवि करते जाते हैं[1]। उस रूप राशि का बखान करते करते मानों वे अघाते ही नहीं । उसके द्वारा अपनी प्रेयसी के प्रति कवि के मन में भरे-प्रेम की सघनता और अनन्यता पूर्णतः अनुभूयमान होती है ।

"घन में सुन्दर बिजली, बिजली में चापल चमक पुतली में श्याम झलक, प्रतिमा में सजीवता, तव चिर यौवन में रूप सीमा" लावण्य शैल राई-सा, कला की कमनीयता, काली जंजीरों से बंधा विधु और मणिवाले फणियों के मुख में भरे हीरे, मानिक मदिरा से भरी नीलम की प्याली, अतृप्ति जलधि में तिरती निराली नीलम की नाव, काला पानी वेला-सी काली अंजन रेखा क्षितिज पटी को तेरी बरौनी तूलिका से चतुर चितेरी कितने हृदयों को घायल कर देती है । स्मित रेखा में छिपी कुटिलता की पहचान की बलखाई भौहें, विद्रुम सीपी संपुट में निहित मोती के दाने, मधु उषा के अंचल में कंपित सरसिज वन-वैभव से अपना उपहास करनेवाली हँसी, मुख कमल समीप सजे पुरइन के दो किसलय के दो ओस कण, अनंग के धनु के दुहरी शिथिल शिंजिनी आदि[2] न जाने

1· आँसू - प्रसाद, छ· 35-49, पृ·20-24

2· वही, छ· 42-48, पृ·24

कितने ही बिंबों व प्रतीकों में चन्द्रिका स्नात जैसे मधुरालोक युक्त उस पावन तन की अंग-प्रत्यंग सुषमा को मंवलित करने का प्रयास करते हैं[1]।

इस वर्णन में विवृत होनेवाली अपनी प्रेयसी की कमनीय सूरत की मधुर स्मृतियों की शीतल ज्वालाएं कवि को इतना विकल बना देती है कि अब इस प्रेमभाजन के साथ हुई सारी प्रेमिल बातें छलना-मात्र-स्वप्नवद् मालूम पड़ने लगी है। जिसके सान्निध्य में उन्होंने अपनी हस्ती की सत्यता अनुभव की थी, जिसे उन्होंने अपनी जीवन-संगिनी के रूप में भरोसे में ले लिया था।

"छलना थी, तब भी मेरा
उसमें विश्वास घना था
उस माया की छाया में
कुछ सच्चा स्वयं बना था[2]।

उसे जब मृत्यु ने एक धड़ाके से भग्न कर डाला तो वह आघात उनके विश्वास पर लगा वज्रपात सिद्ध हुआ। उस धक्के ने उन्हें बुरी तरह बेबस कर डाला, क्षुब्ध कर डाला। सत्यासत्य की पहचान भी असम्भव-सा लगा। अब भी कवि को सारी बीती बातें स्वप्न सदृश ही दीखती है। अतः यद्यपि

---

1. चंचला स्नान कर आये
   चन्द्रिका पर्व में जैसी
   उस पावन तन की शोभा
   आलोक मधुर थी ऐसी" - आँसू - प्रसाद, छ.48, पृ.24
2. वही, छ.49, पृ.24

प्रेमिका-रूप वैभव के साथ उससे जुडी हुई प्रेमपूर्ण बातों की यादों की बारात-सी उनके स्मृति-पथ पर निकल पड़ती है, तो भी उनके पीछे यह प्रश्न भी वे पूछ बैठते हैं कि किसने ऐसा किया ? क्यों ऐसा हुआ आदि[1]। कभी वे स्वयं अपनी दिवंगत प्रेमिका को उन्हें छोड कर चले जाने के वास्ते भला-बुरा सुनाते हैं[2]। कभी कठोर शब्दों से उसे संबोधित करते हैं[3]।

"निष्ठुर ! यह क्या छिप जाना ?
मेरे भी कोई होगा
प्रत्याशा विरह-निशा की
हम होंगी और दुःख होगा ।

ये सब वास्तविकता को स्वीकार करने में यथार्थ से समझौता करने में - कवि को असमर्थ बनानेवाली, कवि के अन्दर अब भी तरंगित रहनेवाली अतृप्त वासना की तरंगों का वर्णन है । इसे वेदनाजन्य परवशता की अभिव्यक्ति ही कह सकते हैं ।

आत्मानुभूति की सघनता

अपने नष्ट स्वर्ग की स्मरणाओं से जनित व्यथा को कवि प्राकृतिक उपकरणों और बिंब-प्रतीकों द्वारा बडे प्रभावात्मक ढंग से अभिव्यंजित करते हैं । कवि अपना शोक व्यक्त करके कहते हैं कि जिसे मैं ने चैतन्यपुंज समझ रखा था, वह केवल मृण्मय मात्र ठहरा, जडपदार्थों का मिथ्या सिद्ध हुआ । वह केवल रूप मात्र था,

---

1. आँसू - प्रसाद, छं. 51, पृ.25
2. वही, छं.50, पृ.25
3. वही, छं.79, पृ.36

उसमें कभी स्पंदित हृदय रहा हो, सन्देहास्पद है । जिन अलकों ने मेरे जीवन को उलझा लिया, उनकी सुन्दरता बहुत जल्दी मेरे जीवन का कभी न सुलझनेवाले उलझनों का जंजाल साबित हुआ । जीवन की शांति एवं चैन और जीवन-सार स्वरूप मेरे प्रेम को, मेरे उसी में तल्लीन रहते वक्त किसने छीन लिया ? प्रेम में उलझे रहना, उन लटों में जीवन को उलझे रखना तो आनन्ददायक निवृत्तिदायक - है ही, लेकिन न जाने क्यों उसके - उस सुख के - साथ वियोग-जन्य करुणा भी जुटी रही[1] ।

लास्विलास पूर्ण उन दिनों की प्रेमानुभूति एवं प्रेम व्यापारों को तत्कालीन प्रकृति पर आरोपित करके कवि प्रेमलीलायुक्त सुखद, मादक निमिषों की याद कर बिलखते ही नहीं, अपितु कामुक तरुण सहज "जित देखूँ तित लाल" (कबीर) की सर्वसौंदर्यदर्शी तरल चित्तावस्था का परिचय भी देते हैं - हिलते द्रुम-दल कल किसलय में बिंबित प्रेम लहरी जनित अधीरता, तरलता, डालियों की उलझन में प्रीतिकृत गलबाहियाँ, अलिगुंजित सुमनों में प्रतिफलित चुंबन, मधुपों के गुंजन में अनुगुंजित प्रेमोष्मल भावनाओं की तान-सब हमेशा के लिए नष्ट हो चुके हैं ।

"हिलते द्रुम-दल कल किसलय
देती गलबाँही डाली
फूलों का चुम्बन, छिड़ती -
मधुपों की तान निराली[2] ।"

---

1. आँसू - प्रसाद - छं.50,51,52, पृ.25
2. वही, छं.53, पृ.26

प्रेयसी के अधरमुकुलों के खिलने पर विहँसने पर - निसृत होती वीणा-सम सुरीली वाणी कवि के कानों में मधु-धारा का संचार करती थी[1]। वे परिरंभण कितने नशेदार थे, मादक थे। मलयपवन सम उसके निश्वासों की शीतलता कैसे विस्मृत हो सकती है ? विधु-वदन की लुनाई की चन्द्रिका मे मेरा मुख भी धुल जाता था।

परिरंभ कुंभ की मदिरा
निश्वास मलय के झोंके
मुख-चन्द्र चाँदनी जल से
मैं उठता था मुँह धोके[2]।

सुखालस्य तथा रतिमूर्छा में बीत जानेवाली वे रातें, मानसाकाश में सदैव चमकनेवाला वह मुखचन्द्र श्रम-सीकर के नक्षत्रों से भीगनेवाला अम्बर पट -

थक जाती थी सुख रजनी
मुख-चन्द्र हृदय में होता
श्रम सीकर सदृश नखत से
अम्बर पट भीगा होता[3]।

---

1. आँसू - प्रसाद, छं•54, पृ•26
2. वही, छं•55, पृ•27
3. वही, छं•56, पृ•27

इन सबके द्वारा विदित होती उन संभोग पूर्ण रातों की याद कवि को सूनेपन, व्यर्थता एवं निराशा के तीखे एहसास को हवाले कर देती है ।

सोयेगी कभी न वैसी
फिर मिलन कुंज में मेरे
चाँदनी शिथिल अलसायी
सुख के सपनों से मेरे[1] ।

और

मानस का सब रस पीकर
लुढ़का दी तुमने प्याली[2] ।

यह कह कर कवि अपने प्रणय सम्बन्ध के तुड जाने पर और प्रेम सुधारस का पूरा अनुभव करके उनके हृदय को सूना-सूना छोड मृत्यु का वरण कर स्वार्थी की तरह अकेली चली जानेवाली प्रेयसी की बेहरमी पर उद्भूत उद्विग्नता, निराशता और अन्त:क्षोभ को भी प्रकट करते हैं । अपने प्रेम और तज्जनित आनन्दानुभूति की स्वप्निल क्षणिकता उन्हें कुंठा, नीरसता के तट पर ला खडा कर देती है ।

"हे स्नेह सरोज हमारा
विकसा, मानस में सूखा[3] ।"

---

1. आँसू - प्रसाद, छं॰57, पृ॰27
2. वही, छं॰58, पृ॰28
3. वही, छं॰59, पृ॰28

अदृष्ट के हाथों छीनी गई प्रेयसी की और उससे संप्राप्त सुखानुभूतियों की स्मृतियाँ बार-बार उनके अन्दर जाग उठती हैं। वे उन्हें अशान्त एवं व्यथित बनाए रखती हैं। व्यथा व्यक्ति के नियंत्रण के बाहर बढ़ जाने पर अनुभूत तड़प और विवशता या असहायता में एक निरीह प्राणी के समान छटपटाने लगता है। वह न जाने क्यों, किस से अपने दु:ख का कारण पूछता है, समाधान माँगता है। प्रश्नों की श्रृंखला में वह अपनी वेदना को निवेदित करता है। ठीक वैसे ही कवि भी मृत व्यक्ति से शोकनिवेदन करने लगते हैं, उससे वे शिकायत करते हैं - क्यों तुमने अपने मलयज सम शीतल स्पर्श से मुझे जगा कर कहीं छिप गयी ? क्यों मुझसे इतनी निर्दयता दिखायी ? हिमशीतल प्रणय आज अनल बन जलने लगा है।

"हीरे सा हृदय हमारा
कुचला शिरीष कोमल ने
हिमशीतल प्रणय अनल बन
अब लगा विरह से जलने[1]।"

धुँधली सन्ध्या प्रत्याशा से हो कर एक-एक को रोते हुए, दीपक-सा जल उठनेवाले स्नेह और नवनीत से पिघलनेवाले हृदय में अवशिष्ट धूमरेखा से भर जानेवाला अँधेरा दिखा कर[2] शून्यता भरी नीरवता से निर्भर तन्मय हृदय पुलिन में प्रवाहित प्रणय कालिन्दी की ओर संकेत करके[3] रजनी के पिछले पहरों कुसुमाकर के खिलते समय झर जानेवाले मृदुल शिरीष सुमन सा प्रात: धूल में मिलनेवाले अपने

---

1. आँसू - प्रसाद, छंद 62, पृ.30
2. वही, छंद 64, पृ.30
3. वही, छंद 65, पृ.31

मन कुसुम की दयनीयता को दिखला कर[1] इस विरह तरंगिनि-तीरे व्याकुल हो, मधु सौरभ से धीरे-धीरे निश्वास छोड़नेवाले मलयानिल की दशा का चित्रण करके[2] चुम्बन अंकित प्राची के कपोलों के पीले पड़ते समय तक कोरी आँखें पथ निरखते रहने के बाद प्रात: समय सो जानेवाले कवि की निर्निद्र-उनींदी-रातों की बेचैनी के द्वारा[3] धरणी का श्यामल अंचल अश्रुकणों के मुक्ताहलों से भरनेवाले छूछे बादलों से भरे प्रेम, प्रभात गगन से अपनी दशा को बिंबित करके[4] वे अपनी करुणाजनक स्थिति की असहायता को उसे समझाने की कोशिश करते हैं ।

इस प्रकार नाना प्रकार के प्राकृतिक, काल्पनिक वस्तुमूलक, भावमूलक एवं गतिमूलक बिंबों के माध्यम से अपनी आन्तरिक पीड़ा का अभिव्यंजन करते हुए कवि समस्त प्रकृति को भी उनके साथ व्यथा की सहभोगी के रूप में प्रस्तुत करते हैं । इससे अपनी प्रियतमा के व्यक्तित्व की महिमा और सुषमा का उत्कर्ष भी उद्घाटित करके अपनी व्यथा की गहनता को सहृदय हृदय में अनुभूत कराने में कवि सफल हुए हैं । ऐसी स्थिति में प्रेमदशा में आमग्न कवि पर आ पड़े आघात ने उन्हें बिल्कुल हतप्रभ, तेजहीन बना दिया । उस सुषमापूर्ण सान्निध्य के नष्ट में कवि ऐसा बिलख सकते हैं -

---

1. आँसू - प्रसाद, छंद 66, पृ.31
2. वही, छंद 67, पृ.31
3. वही, छंद 68, पृ.32
4. वही, छंद 69, पृ.33

"मादकता से आये तुम
संज्ञा से चले गये थे
हम व्याकुल पड़े बिलखते
थे, उतरे हुए नशे से[1]।

अब इंद्रधनुष की आभा छोड़कर चंचल चपला के समान चली जानेवाली प्रेयसी के क्षणिक सान्निध्य की स्मृति में वे फिर आमग्न हो जाते हैं। हृदय कलिका को मुस्कुराने वाली वह मदमाती स्मृति मकरंद मेघमाला-सी मन में आने लगती है। नीहार कणों की शीतलता से युक्त चन्द्रिका के बिछ जाने में अपनी प्रेयसी के प्रेम रस पूर्ण मन्दहास और मुक्ताहल वर्षा को अनुभव करना[2] ठंडी हवा के झोंकों में उसके मृदु स्पर्श के सिहरन का एहसास करना[3] आज उन्हें सुखदायक नहीं, बल्कि उनके नितांत अभाव में अनुभूत अकेलेपन की तीव्रता उन्हें संत्रस्त कर देती है। अत: कोमल कोंपलों के उपधान के सहारे सोनेवाली मधुमालतियों के सामने अपने आप को अकेला पाकर[4] वे इतना झुंझला उठते हैं -

"निष्ठुर ! यह क्या छिप जाना ?
मेरा भी कोई होगा[5]।"

1· आँसू - प्रसाद, छंद 73, पृ·33
2· वही, छंद 76, पृ·35
3· वही, छंद 77, पृ·36
4· वही, छंद 78, पृ·36
5· वही, छंद 79, पृ·36

कवि का विलाप अपने नष्ट-सौभाग्य की दारुण स्मृतियों की चट्टानों पर टकरा कर उतार चढाव के साथ आगे बढ़ता है । कभी वे अपने भाग्य को कोसते हैं, कभी विधि को शाप देते हैं, कभी मृत्यु के सामने अपनी असहायता को महसूस करते हैं । कहीं उनका मन शान्त होता दिखाई नहीं पड़ता । प्रकृति का हर व्यापार उनकी व्यथा को और बढाता ही रहता है । शान्त सन्ध्या के वर्णोत्कर्ष में चढ गई काली अन्धियारी में अत: वे अपने प्रेमिल जीवन की रंगभंगिमा पर वेदना की कालिमा उडेल देनेवाली भवितव्यता का आभास ही देखते हैं[1] । आँसू से धुल कर निखरनेवाला उसका अनोखा रंग अब छुड़ाने पर भी छुड़ता नहीं[2] । उसकी यादों से, उस सूरत के जादू से कवि को कभी मुक्ति नहीं । वे मुक्त होना चाहते भी नहीं । कामना कला की कमनीय मूर्ति-सी कवि के मनोमंदिर में विकसी उसकी प्रेमिल लावण्यमयी सूरत हृदय पटल पर अभिलाषा बलवती अरमान - जीवन प्रेरणा - बन कर अपार्थिव अस्तित्व में उन्हें पूर्वाधिक प्रभावशाली अनुभूत होती है ।

"कामना कला की विकसी
कमनीय मूर्ति बन तेरी
खिंचती है हृदय पटल पर
अभिलाषा बन कर मेरी[3] ।"

---

1. आँसू - प्रसाद, छंद 80, पृ.37
2. वही, छंद 81, पृ.37
3. वही, छंद 82, पृ.38

शरीरी के रूप में कवि की जीवन संगिनी की जीवन-ज्योति कवि के अन्दर किरणों की लट बिखरानेवाला दाहक पुंज दर्द की ज्वालाओं के साथ उन ज्वाला में भासित आत्मज्ञान के आलोक को फैलानेवाली आग बन जाती है[1]। इस प्रकार रुदन के बीच प्रियतम की सुन्दरता, गुणवत्ता, महिमा मृत्यु के बाद भी उसके प्रति अपने घनिष्ठ प्रेम और उसके साथ आत्मैक्य की भावनाओं को प्रकट करते समय भी, वियोग-व्यथा की अधिकता में और अतृप्त विषयलालसा युक्त विक्षिप्त-सी चित्तावस्था में उसे कृतघ्न ठहरा कर वे कह भी उठते हैं -

"यह तीव्र हृदय की मदिरा
जी भर कर - छक कर मेरी
अब लाल आँख दिखला कर
मुझ को ही तुमने फेरी[2]।"

फिर उनका यह अन्त:क्षोभ दीनता असहायता के एहसास में परिणत होता है। प्रपंच के वर्तक को संबोधित कर अपनी इस असहाय, दीन, सूने अस्तित्व के दु:ख का निवेदन करने लगते हैं - उमड़ते आँसू नद में डूबते हृदय मरुस्थल के एक पद-चिह्न भी शेष नहीं[3]। पता नहीं कब तक इस अश्रुनद में तिरते रहना पड़ेगा[4]। तिमिरोदधि में अकेला ही अज्ञात कूलों की तलाश में न जाने कितना भटकती रही यह तरणी। प्रियतमा के मुखचन्द्र किरणालोक में ही

---

1. आँसू - प्रसाद, छंद 83, पृ.38
2. वही, छंद 85, पृ.39
3. वही, छंद 88, पृ.41
4. वही, छंद 89, पृ.41

जीवन-धरणी के तीर पर आ सकी थी[1]। इस जीवन-प्रेम के पारावार का मंथन बड़ी ही तृष्णा से आवेग ने जोश से नाना प्रकार की कठिनाइयों एवं बाधाओं के बावजूद-मथ डाला - आशा की चिरन्तन सुख की उपलब्धि होगी। लेकिन मिला क्या? अन्तत: मर्मान्तिक पीड़ा का जलता बड़वानल ही हाथ आया?

तुरन्त वे आशावादिता से प्रिया-मिलन की प्रतीक्षा करते हैं, अपनी नश्वरता के बन्धन को तोड़ कर

"पड़ेगा कहीं तुम्हें तो
ग्रह पथ में टकराऊँगा[3]।"

जीवन - दुनिया - की निर्ममता, संवेदनहीनता विडम्बनापूर्ण स्थिति में अपने प्यार का नष्ट होना स्वाभाविक मानने की संयमित चित्तावस्था वे बीच-बीच में पा लेते हैं;[4] और समझ लेते हैं, प्रेम का परिणाम दु:खपूर्ण है और उस पीड़ानुभव में ही उस प्रेम की चरितार्थता है। फिर भी

"मकरन्द भरी खिल जायें
तोड़ी जायें बेमन की[5]।" में कलियों के लघुजीवन की

---

1. आँसू - प्रसाद, छंद 91, पृ. 42
2. वही, छंद 92, पृ. 42
3. वही, छंद 94, पृ. 43
4. वही, छंद 95, पृ. 43
5. वही, छंद 99, पृ. 44

नश्वरता मानने को तैयार नहीं है । जीवन की उत्कर्षावस्था में एकदम अवांछित निमिष में अकस्मात् उसका टूट पड़ना[1] सांसारिक जीव के लिए दर्दनाक है ही । प्रसाद का यही दर्द है । फिर भी अनिवार्यता के सामने अपनी असहायता वे मंजूर करते हैं । काल-सहज निर्ममता के सत्य को उन्हें स्वीकार करना ही पड़ता है ।

"निर्मोह काल के काले
पट पर कुछ अस्फुट लेखा
सब लिखी पड़ी रह जाती
सुख दुःख मय जीवन रेखा[2] ।"

सुख दुःखात्मक जीवन की विसंगतिपूर्ण सार्थकता समझ लेने के विवेक के उदय में वे थोड़ा आश्वस्त तो होते हैं -

"मानव जीवन वेदी पर
परिणय हो विरह-मिलन का
दुःख सुख दोनों नाचेंगे
है खेल आँख का मन का[3] ।" और देखते हैं कि जीवन की इस आँखमिचौनी में उन की यह दीनावस्था कोई असाधारण बात नहीं है । बारी-बारी से यह सब पर गुज़र सकता है ।

---

1. आँसू - प्रसाद, छंद 100, पृ.45
2. वही, छंद 102, पृ.45
3. वही, छंद 104, पृ.46

लेकिन यह विवेकोदय भी उनके आँसुओं के प्रवाह और उनकी आत्मा के प्रलाप को हमेशा के लिए रोक न पाया । बौद्धिक चिंतन का सहारा लेकर दार्शनिक समाधानों पर अपनी आत्मवेदना को उतार रखकर आश्वस्त होने का उनका प्रयास ऐसे निमिषों में विफल रह जाता है जब प्रकृति के सुन्दर दृश्यों का साक्षात्कार उनके भावुक हृदय को फिर से तरल बना देता है[1] । वे फिर से अपने विगत सुखानुभव के बारे में सोचकर पछताते है, समस्त धरणी को भी अपने दुःख से आकुल देखते हैं[2] । दुःखपूर्ण ऐहिक और सुखग्राही दैव के बीच अपनी प्रियतमा को चकोर दृष्टि से एकटक देखते रहते ही मन ही मन सोचते हैं -

"दुःख क्या था उनको, मेरा
जो सुख लेकर यों भागे[3] । और मन दैन्यता से भर जाता है । यह अश्रुवर्षी प्रसाद के अन्दर गतकाल दुरन्त की घनीभूत पीडा के काले बादलों का परिणाम है । वर्षा की अजस्रता से घटाओं की सघनता का अंदाज़ा हो सकता है । फिर भी उसमें धारा की प्रवाहमयता एवं गति की आशा नहीं की जा सकती है । "शोकगीतों की प्रभविष्णुता प्रथमतः उसकी संक्षिप्तता में है । आँसू, ठीक है, शोकानुभूतियों की सांद्र गंभीर अभिव्यक्ति है । उसके हर छन्द में कवि के दुखते दिल की विकल रागिनी का शोक सहृदय अनुभव भी कर सकता है । वेदना का

1· आँसू - प्रसाद, छंद 106, पृ·47

2· वही, छंद 108, पृ·48

3· वही, छंद 109, पृ·48

जो चित्र इसे हो पाया है, वह मार्मिक एवं मर्मस्पर्शी अवश्य है ।"[1]

डॉ॰ रामप्रसाद मिश्र "आँसू" काव्य की आलोचना करते हुए कहते हैं "अपार व्यथा का विषपान कवि को शिव बना देता है तथा वह अपना काव्य समरसता प्रतिपादन एवं मंगलाशा के साथ समाप्त करता है । आँसू प्रसाद का मेघदूत है[2] ।

रुदन का एकतान स्वर

शोकगीत या शोककाव्य के लिए शोक के हेतुभूत घटनाओं और वियुक्त या दिवंगत के साथ हुई बातों का वस्तुपरक वर्णन एक हद तक आवश्यक है । इससे प्रयोजन यह है कि अभिव्यक्त शोक वास्तविकता के पुट से अन्वित हो सकता है, उसकी रसानुभूति में वृद्धि आ सकती है । यही नहीं, शोकनिवेदन प्रतिभिन्न अनुभवों और घटनाओं पर टकरा कर उतार-चढाव के साथ और आकर्षक बन पड़ता है । एकतानता की एकरसता दूर हो सकती है । आँसू में इस प्रकार के वर्णनों का नितांत अभाव है । छायावादी शैली की अभिव्यक्तिमूलक सूक्ष्मता एवं कवि की छिपाव की प्रवृत्ति ने उन्हें ऐसे इतिवृत्तात्मक वर्णन से अलग रखा ।

1· जयशंकर प्रसाद का कामायनी पूर्व काव्य आँसू का वेदना दर्शन शान्ति स्वरूप गुप्त, पृ·138

2· प्रसाद, निराला और पंत - डॉ॰ रामप्रसाद मिश्र, पृ·25

परिणाम यह हुआ कि वस्तुओं और घटनाओं का जो प्रभाव उनके दिल पर पड़ा, उसका ही प्रकाशन मानो बिंब-प्रतीकादियों में प्रतिफलित अनुभूतियों के रूप में काव्य में उपलब्ध होता है । इसलिए उनका क्रन्दन एकतान स्वर से मुखरित जलयशि का रूप अपना गया । घटना निर्देशों के द्वारा वास्तविकता का रंग ज़रा उसमें मिल जाता तो वायवीयता, रहस्यात्मकता, काल्पनिकता एवं अलंकार बिम्ब-प्रतीकादि की प्रचुरता में शोकावेग की तीव्रता तनिक भी क्षीण नहीं पड़ती ।

फिर भी कवि को इस काव्य में अपनी प्रेयसी की तनुशोभा, उसके साथ अपने घनिष्ट प्रेम-संबन्ध एवं प्रेम व्यापारों का जो साक्षात्कार स्मृतियों के द्वारा हुआ है, कवि के एकान्त नीरस वर्तमान जीवन के सन्दर्भ में उसकी दुःखोद्रेक क्षमता देखनेलायक ही है । प्रत्येक बिम्ब या प्रकृति की विभिन्न सुन्दर वस्तुओं एवं उद्दीपनकारी व्यापारों में प्रतिबिंबित कवि की हृदयव्यथा की गंभीरता एवं मार्मिकता सहृदय के हृदय को शोकानुभूति से विभोर करने में समर्थ ही है । इस काव्य में वर्णित वेदना की तीन दशाएं द्रष्टव्य है -

1. शारीरिक-मिलन के बाद बिछोह से सम्बन्धित ।
2. मानसिक - जिस में कहीं-कहीं व्यथा का आलम्बन कोई अलौकिक सत्ता मालूम पड़ने लगता है और पीडा आध्यात्मिक विरह वेदना में रूपान्तरित हो जाती है । इस दशा में काव्य में रहस्यात्मकता का आभास स्पष्ट होने लगता है ।

3. निर्वैयक्तिक - व्यक्तिगत पीडा की आत्यंतिक परिणति के रूप में विश्वमंगल की अभिलाषा का स्वर बुलन्द होता है। उस अवस्था में कवि चाहते हैं कि प्रभात हिम-कण सा बरसों आँसू इस विश्वसदन में।[2]"

विचारात्मकता

जैसे पहले सूचित किया गया, इस लंबे विलाप में अन्त तक आते आते विधुर चित्त का तीव्र भावावेग मंदीभूत होकर विचारात्मकता में परिणत होता है। "दुःख की वैकारिक अनुभूतियाँ चिंतन की वैचारिक अनुभूतियों में बदल जाती है। तब जीवन सुख की पहचान के रूप में दुःख की आवश्यकता को और जीवन एवं मृत्यु, सुख और दुःख दोनों की जन्म-जात सहितता को, परस्पर-संपृक्ति को शान्त मानसिक अवस्था में निर्मम भाव से वे देख सकते हैं।[2]"

"सुख मान लिया करता था
जिसका दुःख था जीवन में
जीवन में मृत्यु बसी है
जैसे बिजली हो घन में।[3]"

यही नहीं,

---

1. आँसू - प्रसाद, छं. 190, पृ. 79
2. प्रसाद का कामायनी पूर्व काव्य शान्ति स्वरूप गुप्त, पृ. 138
3. आँसू - प्रसाद, छं. 113, पृ. 50

"हो उदासीन दोनों से
दु:ख सुख से मेल कराएं
ममता की हानि उठा कर
दो रूठे हुए मनाएं ।"[1]

यह ममतामुक्त सुख दु:ख से उदासीन अकेलेपन की शून्यता से भरे कवि के हृदय में अनुभूत वेदना की नाना प्रकार की निरंतर व्यंजनाओं के बीच शनै: शनै: उभर आता है । तब कवि को अपनी प्रियतमा के क्लेशहारिणी और कल्याणकारिणी अलौकिक सत्ता दीखने लगती है । उससे कवि की कामना यही है,

"विस्मृति का नील नलिन रस
बरसो अपांग के घन से ।"[2]

ममता जन्य सम्बन्ध की यादों की विस्मृति में ही दु:ख-तप्त विशदीभूत हृदय में लोककल्याण भावना जग सकती है ।

"विस्मृति समाधि पर होगी
वर्षा कल्याण जलद की ।"[3]

---

1. आँसू - प्रसाद, छंद 115, पृ.50
2. वही, छंद 125, पृ.55
3. वही, छंद 128, पृ.55

लोककल्याण कामना इस प्रकार पीडानुभव द्वारा जागरित विवेकिता एवं सामाजिक चेतना की निशानी है । वेदना में ही हृदय पिघल कर प्रवाहमान होता है; अन्यों के दुःखों को जान सकता है । अपनी पीडा की तीव्रता का लोप हो सकता है । स्वानुभूति, सहानुभूति में परिणत हो सकती है । सहानुभूतिपूर्ण चित्त में ही लोकसेवा अंकुरित होती है । अर्थात् वेदना को, कर्मण्यता को तेज़ करने के तत्व के रूप में स्वीकार करना, व्यक्ति के परिष्कार का साधन मानना ही वरेण्य है । उसी में व्यक्ति के अस्तित्व को चरितार्थ करनेवाली - सार्थक बनानेवाली - सामाजिकता निहित रहती है । अतः वियोगजन्य पीडा को अकर्मण्यता का आधार मानना प्रकृति के विरुद्ध है । व्यथा को अन्य व्यक्तियों के दुःख को महसूस करने का साधन समझ कर उनके दुःख निवारण के कार्यों में लग जाएं । तब तो अपनी व्यथा से मुक्ति-विस्मृति - संभव हो सकती है । अतः दिवंगत आत्मा प्रसाद के लिए जीवन निषेधी अवसाद का हेतु नहीं है, अपितु जीवन के प्रति समष्टिमूलक दृष्टि प्रदान करनेवाली लोकमंगलकारिणी चेतना है । ध्यातव्य है कवि यहाँ अपनी प्रियतमा से संबद्ध मोह-ममता जन्य सारी व्यक्ति मूलक बातें भूल जाना चाहते हैं, जिनसे वे पीड़ित रहे, उससे कोई वैयक्तिक लाभ भी चाहते नहीं । अर्थात् वह अब उनकी जागृत समष्टि चेतना का प्रतीक बन गई । अपनी प्रेमिका के इस उदात्त और अपार्थिव - महत्वीकृत - सत्ता से बार - बार उनकी एक ही कामना है -

जगती का कलुष अपावन
तेरी विदग्धता पावे

फिर निखर उठे निर्मलता
यह पाप पुण्य हो जावें[1] ।"

वैयक्तिक दुःख लोकमंगल की भावना में बदल जाता है -

"सब का निचोड लेकर तुम
सुख से सूखे जीवन में
बरसो प्रभात हिमकण-सा
आँसू इस विश्व सदन में[2] ।"

इस प्रकार "आँसू" में वैयक्तिक दुःख को एक गंभीर दार्शनिक आधार प्राप्त होता है । वह दार्शनिक धरातल तो अहं के लोप या अस्मिता का विस्तार[3] या कहें सर्वात्मभाव की भारतीय दृष्टि से समर्पित है । "मम" को ममेतर से सम्बद्ध रखने या कर लेने में व्यक्ति के व्यक्तित्व की सार्थकता और अस्तित्व की चरितार्थता अनुभव करनेवाले भारतीय जीवन दर्शन में दुःख का स्थान आत्मा के विस्तार एवं व्यक्ति के परिष्कार के साधन का है । "दर्द सब को माँजता है[4] ।" और व्यथा ही एकमात्र साधन है जो सच्चे ज्ञान का द्वार खोल देता है[5] ।

1· आँसू - प्रसाद छंद 176, पृ·74
2· वही, छंद 190, पृ·79
3· " ताने॑न्न भावमतु तोनायुक वेणमिह
तोनुन्नताकिलखिलं तानितेन्नवषि तोनेणमे" श्लोक - 3
- एषुत्तच्छन - हरिनामकीर्तनम्
4· अज्ञेय व्यथमोलरिवोतिटुन्न सद् -
गुरुर्वु मर्त्यनु वेरेयिल्ल तान् । चिन्ताविष्टयाय सीता,
5· - कुमारनाशान्टे पद्यकृतिकल्,श्लोक:4।
पृ·525

आँसू भी इसी वेदना दर्शन के लिए हुए हैं । यही कारण है कि काव्य के प्रारंभ में दुःख से कराहनेवाले कवि आगे चलकर अपने नैराश्य[1] से मुक्त हो कर लोक मंगल की भावना के वशीभूत हो जाते दिखाई देते हैं । "यह कैसी परवशता है ?"[2] जैसी आत्मोद्गार वेदना संबंधी इस दार्शनिक मनोभाव से उद्रिक्त है । वे इस स्थिति में खिन्नता जनित- जीवन - निरास भावना एवं मानसिक शिथिलता और अकर्मण्यता के चंगुल से छटपटा कर बाहर आते हैं । वेदना के हेतुभूत मृत व्यक्ति की दुखद स्मृतियों को विस्मृत करके उसे अपनी आत्मसत्ता के चैतन्य तत्व स्वीकार कर उससे आत्मैक्य प्राप्त कर लेते हैं; और उस चैतन्य से प्रेरित होकर विश्व भर के दुखियों से अपने को संबद्ध कर लेते हैं ।

इस चित्त वैशद्य का परिणाम ही काव्य के अन्त में उपलब्ध सामाजिक चेतना का परिस्फुरण एवं विश्वकल्याण-कामना है । दुःख का "पोसिट्टीव इफक्ट" - कल्याणकारी प्रभाव - है कि वह दुखी को "सोऽहम" की स्थिति में पहुँचा देता है ।

निष्कर्ष

आँसू उत्कृष्ट शोक कोटि का काव्य है । कवि ने अपनी प्रेयसी के चिरवियोगजन्य वेदना की तीव्र अनुभूतियों को अत्यन्त उदात्त भावभूमि पर खंड से अखंड में स्थूल से सूक्ष्म में परिवर्तित कर अपनी दार्शनिक चेतना का परिचय दिया है । वे अपनी वैयक्तिक पीडा को नियति नियोग स्वीकार कर आनंद में विलीन कर सके ।

-----

1. "यह व्यर्थ साँस चल चल कर
करती है काम अनिल का ।" आँसू छंद 7, पृ.10

2. वही, छंद 130, पृ.57

विषाद

श्री सियाराम शरण गुप्त ने इस शोक काव्य में अपनी पत्नी के असामयिक देहवियोग से उत्पन्न गहन अवसाद को वाणी दी है। इस काव्य में कुल 15 गीत है।

अन्तर्विषय

अतीत की स्मृतियों में स्वयं खो बैठे कवि के कानों में सुदूर से एक गान आ पड़ता है। विगत की संतप्त स्मृतियों को जगानेवाले उस गान का संबोधन कर कवि कहते हैं - "हे गान! इस नीरवता में चुप छिप आकर तू क्यों मेरी वेदना को जगाता है? मेरी सोयी हुई स्मृतियों को जगाकर क्यों मेरे प्राण को विकल कर देता है?[1]

---

1. विषाद - सियारामशरण गुप्त, पृ.10

गान तो वेदना को जाग्रत कर लुप्त हो जाता है। लेकिन कवि की सुप्त विरह व्यथा जाग उठी, जिसे वे सम्हाल नहीं पाते। एक सुनहली किरण के समान कवि की प्रियपत्नी उनके गृहकक्ष में आयी। कवि के एकाकी जीवन में एक दिव्य-ज्योति सी अपने पेलव अधरों पर मृदु-मुस्कान ले वह आयी। कवि की धमनियों में विद्युत प्रवाह पैदा करनेवाली वह मुस्कान पल भर में ओझल हो गई। लेकिन वह एक निमिष उन के मरु-से जीवन में अमृत धारा बहाने में पर्याप्त था। अपने घर पत्नी का पहला आगमन कवि को ऐसा लगा कि कोई देवी दया के दीप को जलाये मार्ग में सुवर्ण-धूलि बरसाये आई हो। वह दीप उनके घरको आलोकित करता रहा किंतु अब पत्नी के तिरोधान से वह दीप भी ओझल हो गया।

स्वर्गता पत्नी का चित्र कवि की सुप्त व्यथा को जगा देता है। एक असह्य पीडा उनके मन को मथ डालती है। उन्हें कभी कभी जड चेतन का फरक भी नहीं होता। पत्नी के चित्र का संबोधन कर उसे फरियाद करते हैं कि "इन अपलक नयनों से मुझे निहार कर मेरे चित्त की अव्यक्त वेदना को तू बार-बार जगा रही है।[1] कवि निराशा के अंधकूप में गिर जाते हैं। उन्हें ज़िन्दगी भार-स्वरूप लगती है। एकांत वातावरण में अकेले बैठे कवि को अपने चारों ओर अंधकार ही अंधकार महसूस होता है। इस तमोमय जीवन में आशा की किरण कहीं न दीख पडती। किंतु अगले क्षण अपना आस्तिकता-बोध उनकी

---

1. विषाद - सियारामशरण गुप्त, पृ. 14

रक्षा केलिए आ जाता है । दुःख एवं निराशा के बीच में भी आशा का आलोक क्रमशः दृष्टिगत होता है । अपनी प्रेम-पत्नी की यादें रह रहकर उस विधुर चित्त की मृदुल तंत्रियों में कंपन पैदा कर देती है ।

शोकजर्जर कवि की दृष्टि किसी अकाल में झडे फूल पर पडने से उन्हें अचानक अकाल में काल कवलित पत्नी की याद आ जाती है । तब उनके मन से उद्गार निकलते है कि "हे शुभे, तू चली गयी । न जाने तू हम से कितनी दूरी पर है । न जाने किस अदृष्ट की कुदृष्टि तुझ पर पडी है ।[1]" कवि अपनी वियुक्त प्रिया को प्राप्त नहीं कर सकते । जहाँ प्रिया रहती है, उस अज्ञात देश की कोई भी बात कवि को ज्ञात नहीं । उस दुनिया से कोई यहाँ लौट आया ही नहीं । वहाँ से कोई संदेश यहाँ नहीं आता है । वहाँ की सारी स्थिति अनुमान पर आधारित है । फिर भी कवि की आशा है वह अज्ञात संसार अपनी प्रिया को पसंद आवें ।

विकल कवि स्वप्न में भी प्रिया से मिलना चाहते हैं । जब कभी ऐसा भाग्य मिलता है, वे अपनी पत्नी से हर्षोल्लास से बातें करते हैं । किन्तु बाद में उसे स्वप्न मात्र जानकर पहले से भी अधिक म्लान होते हैं । मानव की विवशता का यह कितना करुण चित्रण है ।

---

1. विषाद - सियारामशरण गुप्त, पृ.2।

प्रिया की निधन-तिथि में कवि की दुःखद स्मृति के ताजा होकर उमड आती है । फिर प्राण प्रेयसी के स्मृति चित्र पर पहनाने के लिए हृद्रक्त के अश्रुबिन्दुओं का एक हार पिरो लेते हैं ।

कवि की यादें फिर अतीत में मंडरा रहती हैं । जब कभी कविता लिखने के लिए वे बैठते थे, पत्नी निश्शब्द से आकर उनके पीछे खडी होकर देखती रहती थीं । अब तो उसकी दर्दनाक यादें उन्हें लिखने नहीं देतीं ।

कवि के मन में सीताविरही श्री राम की याद आ जाती है । अपनी पत्नी के वियोग में उसकी स्वर्ण मूर्ति उन्हें बननी पडी । किंतु अकिंचन कवि क्या कर सकते हैं ? लेकिन विरह-भोग में दोनों पति समान दुःखी है । आखिर दुःखी ही दुःखी को पहचानकर पाता है । मृत्यु के समक्ष मानव कितना असहाय है । अपनी प्रियतमा को मृत्यु पाश से बचाने की शक्ति उसमें नहीं । न उसके प्रेम में । जीवन का एकाकीपन कवि की वैयक्तिक करुणा को और भी गहरा बनाता है । कवि का विरहाकुल चित्त अपनी प्रिय पत्नी के दर्शन केलिए उत्कट अभिलाषा रखता है । वे कभी कभी अनजाने में प्रिया से मिलन की लालसा से निकल पडते हैं । किंतु गोधूली-बेला में वे श्रान्त हो कर वापस आते हैं, उनके मन में उथल-पुथल मच जाता है । उन्हें यह मालूम नहीं कि आगे इस प्रकार कितने दिन बिताने हैं, पर पत्नी की तलाश वे अविरल करते रहते हैं ।

हवा में उड आनेवाले एक कागज़ के टुकडे को देखकर कवि कल्पना करते हैं कि अपनी प्रियतमा ने स्वर्ग मे उनके लिए संदेश भेजा है । इस कागज के टुकडे को देख प्रियतमा को एक पत्र

लिखना चाहते हैं । दीप के सामने बैठ एक हाथ से अपनी लटें को ठीक कर वह लिख रही थी । अब वे सारी स्मृतियाँ उठ कर कवि विवश होते हैं ।

पावस ऋतु का धन घटा सुन कवि सोचते हैं कि बिजली और घन के निनाद से युक्त वर्षा धरती को परमानंद प्रदान करती है, किन्तु वह कवि हृदय को विदीर्ण कर देती है ।

पत्नी की परलोक-प्राप्ति के बाद कई वर्ष बीत गये पत्नी की स्मृतियों का गुफन जो विषाद-पूर्ण तनाव मन में पैदा करता है उसे कम करने का कोई उपाय नहीं । फिर भी उन्हें सारे भावों को वाणी देने के प्रयास में जो विषाद स्थापित हुआ उसे पत्नी को भेंट करना चाहते हैं । अश्रुबूंदों के मोतियों द्वारा एक माला पिरोकर उसकी पुण्य स्मृति में चढा कर कवि विदा लेते हैं ।

<u>हृत्तन्त्री का टूटा राग</u>

कवि अपनी प्रियतमा के चिरवियोग की शोकभरी स्मृतियों को अनश्वर बनाना चाहते हैं ।

ओठों पर हास लिए मुस्कुराती खडी प्रियतमा के चित्र के आगे एकांत विधुर कवि अतीत की स्मृतियों में गुम-सुम बैठे हैं । पत्नी की एक एक हँसी उनकी ज़िन्दगी थी । किंतु वह मृदु मुस्कान सदा केलिए ओझल हो गयी । निराशा एवं अवसाद

विधुर पति को घेरकर उन्हें सताता रहता है । फिर भी दूसरे क्षण उनका आस्तिकता बोध आशा का आलोक बिखर देता है । उन्हें लगता है कि कोई देवी दया का दीप लिए उनके सामने खडी है और उनके अंधकार से आच्छन्त पथ पर सुवर्ण रश्मि की राशि बरसाती रहती है । दूसरे क्षण वे सच्चाई के धरातल पर उतर आते हैं; भव-दु:ख की पीडा अनुभव करने लगते हैं । उनके मन से अनजाने ही यह उद्गार निकल पड़ता है -

"चली गई है शुभे, कहाँ तू हमसे कितनी दूर,
किस अभाग्य की, किस अदृष्ट की दृष्टि हुई यह क्रूर ।"[1]

अदृष्ट की कुदृष्टि पडने से ही शायद वह जल्दी चली गयी होगी । भगवान से कवि परिदेवन करते हैं कि यह नया विधान कैसे होता है कि आदि के साथ-साथ अंत भी होता है ! कवि ने दाम्पत्यजीवन शुरू कर दिया कि जल्दी उसका अवसान भी हो गया । अत: उस निस्सहाय विधुर का मन रह-रह कर सोचता रहता है कि

"दूज को ही विधु राहु-ग्रस्त
किया क्यों, उदय साथ ही अस्त ?
छीनना ही था जिसे तुरन्त,
वस्तु क्यों दी ऐसी भगवन्त ।"[2]

1· विषाद - सियारामशरण गुप्त, पृ·21
2· वही, पृ·19

इस प्रकार उसकी याद में मग्न कवि प्रियतमा की अब की दुनिया के बारे में तरह तरह की कल्पना कर उस संकल्प लोक की सृष्टि कर एक अट्टालिका के झरोखे के पास बैठनेवाली प्रियतमा से मिलते हैं। वे आशा करते हैं कि उसके कर्णपुटों में उस विधुर पति का व्यथित विलाप अनुगूंज उठे, यह करुण क्रन्दन सुन नंदन-वन के वीणावादकों के साथ नहीं क्षण भर थम जायेगी।

समान दुखियों को देखते समय दुःखभार कुछ हल्का होता है। कवि भी सीताविरही राम की ओर मुड़ते हैं और तसल्ली की भीख मांगते हैं। जगत्राता श्रीराम के लिए असाध्य कुछ भी नहीं, अतः जिस प्रकार यज्ञ पूरा करने के लिए कांचन सीता को यागशाला में रख यज्ञ पूर्ति की गयी वैसे पत्नी की स्वर्ण-मूर्ति बना कर जीवन यज्ञ पूर्ण करने की क्षमता कवि में नहीं। इसलिए पत्नी वियोग की दुर्दांत पीड़ा अनुभव करनेवाले राम ही आंसू के कड़ुए रस पीनेवाले कवि को कम से कम पत्नी की सोने की एक मूर्ति बना देने की कृपा करें। उसके सहारे वे जीवन का यज्ञ पूरा कर सकें।

कवि कभी कभी वेदना एवं कसक से इतने बेचैन हो जाते हैं कि पत्नी से मिलनातुर उनका मन उसकी तलाश में निकल पड़ता है। कम्पित वक्ष तथा विह्वल मन से वे सारा लोक-लाज या संकोच विचार छोड़कर भारी दिल से प्रियतमा की खोज करते हैं। प्रभात की सुनहली वेला से लेकर गोधूली वेला तक आते-आते निशा जब नेत्रों में नीर भर, दीर्घनिश्वास छोड़ धीरे-धीरे आती है, कवि भी अत्यधिक अधीर हो जाते हैं।

"अशिव अवेश बनाकर आती,
चंचलाग्नि उर पर दहकाती,
करके मुझे अधीर
हृदय में कौन छेदता तीर[1] ।"

कवि के मन की कभी कभी अत्यन्त निराशामय स्थिति होती है । आश्वासन के लिए चारों तरफ निःसहाय देखनेवाले कवि अन्धकार से आकृत रहते हैं । अत्यधिक प्रकाश के बाद आनेवाले घने अन्धकार में फँस जाने की अवस्था-सी अपनी अवस्था को कवि मानते हैं । जब प्रिया थी, सब आनंदमय था । वे सुखी रहे । जीवन में आशाएँ थीं, सपने थे, चैन की नींद सो सकते थे । अब स्थिति चौपट हो गई, निराशा उनकी साथिन है, उनके सपने मिट गये, बेचैन होने से नींद कोसों दूर खड़ी है । उन्हें शुष्क, निरस, विरस निर्जीव दिनों को काटना पड़ता है । निर्दय नियति से वे पूछते हैं -

"हाय ! देकर वह दिव्य प्रकाश
किया है तू ने तमोविकास[2] ।"

अत्यपूर्व अवसर पर स्वप्न में प्रिया से क्षणिक मिलन का सौभाग्य कवि को मिलता है, किंतु अगले निमिष जब स्वप्न भंग हो जाता है साथ ही प्रियतमा का दर्शनामृत छूट जाता है तो स्वप्न के से ये काल्पनिक मिलन का परिणाम आँसू बहाने के लिए ही होता है ।

---

1. विषाद - सियारामशरण गुप्त, पृ.35
2. वही, पृ.19

प्रियतमा की मृत्यु का निधन-तिथि आया तो कवि का विधुर चित्त अवसाद से भर जाता है । हृदय के अंतराल की निगूढता में अत्यधिक प्रेम और श्रद्धा से पत्नी का जो स्मृति चित्र वे छिपा देते हैं, उस पर अपने हृदय के लहू से निसृत आँसू के मोतियों से पिरोकर एक परम पवित्र माला आदरपूर्वक पहना लेते है । फिर उसकी स्मृति में खोकर घंटों बैठ जाते हैं ।

दु:ख, दु:ख को जानता है अत: अपने मन की पीडा से मुक्ति पाने के लिए राम-भक्त कवि भगवान की ओर मुड़ कर विनती करते हैं -

"भुक्त भोगी तुम हो हे नाथ !
दया कर आज तुम्हीं दो नाथ ।"[1]

वे सच्चे रामभक्त अपनी सारी वेदना, भगवान् के चरणों पर अर्पण कर आश्वासन के अर्थी बनते हैं । कवि के दु:ख-दग्ध हृदय से निसृत इस प्रार्थना की गरिमा एक भुक्त भोगी ही जान सकता है । कवि के दर्द-जर्जर मन की निजस्थिति से अवगत होकर कवि के "विषाद" के बारे में डॉ· नगेन्द्र ने कहा "इस काव्य की घनीभूत पीडा बरबस मर्म को स्पर्श करती है[2] ।"

1· विषाद - सियारामशरण गुप्त, पृ·32

2· सियारामशरण गुप्त के काव्य - डॉ· नगेंद्र, पृ·59

इस काव्य की प्रमुख विशेषता है स्वानुभूत भावातिरेक की संयमित अभिव्यक्ति । कवि की निजी दु:खानुभूति को पाठक के मन में यथासंभव प्रेषित करने की क्षमता "विषाद" में है । इस शोक काव्य पर दृष्टिपात कर दूसरे आलोचक की यह उक्ति उल्लेखनीय है - "एको रस करुण एव" की भूमिका में हम यह कह सकते हैं कि विषाद की रचना कवि की अन्यतम उपलब्धि है । यह पाठकों को प्रभावित करती है । साथ ही सियारामशरण जी के कवि को पहचानने में सरलता होती है[1] ।"

इस शोककाव्य में अलंकार-प्रयोग के लिए कवि कोई तलाश नहीं करते हैं । केवल अभिधा से काम किया गया है अपने आहत दिल के भावों की सीधी अभिव्यक्ति के लिए उचित शब्द कवि ने अपने दिल से ही चुन लिया है । अत: प्रत्येक शब्द दिल को प्रभावित करता है । प्राय: कलाकार अपने भावों को रंगायित कर व्यक्त करता है । योगी जो है अपने भावों का सीधा आविष्कार करता है । कवि भी योगी जैसे, सीधे ढंग से अपने हृदयगत भावों को अभिव्यक्त करते हैं, फलत: वह ज्यादा मार्मिक बन पड़ा है ।

---

1. सियारामशरण गुप्त सृजन और मूल्यांकन - ललित शुक्ल, पृ.29

निष्कर्ष

सियारामशरण गुप्त की कविता का मूलस्वर करुणा है । अपनी स्वर्गता पत्नी के वियोग का दुःख अत्यधिक मार्मिक ढंग से उन्होंने अभिव्यक्त किया है । शुद्ध मानवीय धरातल पर उन्होंने यह काव्य लिखा है । शिल्प की दृष्टि से, रूप रंग के चमत्कार से रहित उनकी यह स्वच्छ वाग्धारा है ।

****

मुर्झाया फूल

आधुनिक हिन्दी-काव्य-धारा में सुश्री महादेवी वर्मा वेदना की मधुर गायिका के रूप में सुविख्यात हैं। हिन्दी की गीतकाव्य परंपरा को आपकी तूलिका ने काफी संपन्न किया है। उनके संवेदनशील हृदय से करुणा, स्नेह भावुकता आदि की मृदुल-कोमल एवं मधुर धारा का अनुस्यूत प्रवाह हुआ है।

विषाद और वेदना की एक निराली चित्तवृत्ति उनके संपूर्ण काव्य जगत् की अन्तर्धारा के रूप में काम करती है। आपके "नीहार" में संकलित "मुर्झाया फूल" नामक यह कविता जीवन की करुणा से भीगी हुई है। उनकी करुणा स्थूल से सूक्ष्म, भौतिक से आध्यात्म हो गयी है।

"मुर्झाया फूल" महादेवी का एक प्रसिद्ध गीत है। इसमें कवयित्री ने एक झडे हुए कुसुम को प्रतीक रूप में ग्रहण करते हुए उसके जीवन की पूर्वकालीन गरिमामय महिमा के साथ वर्तमान की

दयनीय स्थिति की तुलना की है । साथ ही मानव जीवन की क्षणिकता उसका स्वार्थ-मोह जैसी मनोवृत्तियों का विश्लेषण किया गया है । मानव का सांसारिक सुख भोग, उसकी मोह ममता, उसका रिश्ता-नाता, उसकी सैकड़ों अरमानें, अभिलाषाएँ आदि की दु:खात्मक परिणति पल-भर में होती है । साधारण मानव, जीवन के इस उलट-पलट से अज्ञात नहीं होता, किन्तु जो अज्ञात है, वह अनवधान-सा रहता है; कारण, जिन्दगी के प्रति प्रबल इच्छा उसके मन में बनी रहती है । जिन्दगी में प्राय: ऐसी आँधी चल उठती है कि उसमें सब कुछ स्वाहा हो जाता है । "मुर्झाया फूल" में प्रतीकात्मक ढंग से इस "आर्य सत्य" का अनावरण हुआ है ।

फूल के शैशव के वर्णन के साथ कविता शुरू होती है । जब वह फूल केवल कली की अवस्था में था तब पवन उसको अपनी गोद में बिठाकर उसे खिलाता था, जिस पर वह मुस्कुरा हो उठता था । जैसे नन्हे बच्चों को बडे लोग गोद में बिठाकर तरह तरह की तोतली बोली से उन्हें खिला-खिला कर हँसाते हैं, वैसे लता के कोंपलों के बीच सुरक्षित, स्वस्थ बैठकर बाल सूर्य की किरणों का संस्पर्श पाकर हवा के झूले में झूल कर धीरे-धीरे वह फूल खिल गया ।

कवयित्री कहती हैं कि हे फूल ! चन्द्रिका-चर्चित रातों में चन्द्रमा की स्निग्ध शीतल किरणों के संस्पर्श से तू आनंदविभोर होकर नाच रहा था । रात तो ओस बूंदों रूपी मोती तुझ पर अर्पण कर देती थी । मधुप अपने गुंजन से लोरियाँ गा-गाकर तुझे सुलाता था । बगीचे का माली भी तुझ पर सविशेष ध्यान

देता था कि कोई नटखट लड़का या लड़की तुझे अपने डंठल से लेन जाय । इस प्रकार उद्यान में सबों के स्नेह-वात्सल्य का पात्र बन कर तू सदा अठखेलियाँ कर इतरा कर रहता था । अपने रूप लावण्य से अज्ञात तू अपने हाव भावों से सब को अपनी ओर खींच लेता था । या तेरा आकर्षण इतना प्रबल था कि जाने-अनजाने सब तेरे आकर्षणवलय में फँस जाते थे ।

सबों के आकर्षण का केंद्र बिंदु होकर विकसित विहसित फूल का पतन शीघ्र ही हुआ । खेद ! जिस मंद पवन ने पहले उसे झूले पर झुलाया था उसी ने अपने प्रबल प्रताडन से उसे धराशायी कर दिया । कवयित्री कहती है - "जिसने तुझे गोद में लेकर सहलाते पुचकारते तुझे प्यार से आश्लेषण करते, तुझे पुलकित करते खिलाते हँसाते बडा किया, तुझे देख तुष्ट हुआ, उन्होंने अपने झोंके से तुझे गिरा भी दिया । अब तू सूखकर तितर-बितर हो कर कोरे ज़मीन पर अकेला पड रहा है । पहले की स्थिति से बिल्कुल भिन्न अवस्था में अब तू पडा है । तुझमें अब मधु-मकरन्द, गंध कोमलता नहीं आकर्षण हीन तुझे पूछनेवाला कोई नहीं । तेरा तेरा मुख अब मलिन और सूखा है । अंगोपांग शिथिल बन पडे हैं । पवन के तीव्र झोंके ने तुझे तितर-बितर कर दिया । जिस मधुप ने लोरियाँ गा गाकर तुझे निद्राविवश कर दिया, तेरे मधु का पान किया, जिसे तूने अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया, बडे चाव से तेरा देखभाल जिन्होंने किया निरीह जीवन के दूर जाने पर अब लापता हैं । अब तेरी दु:स्थिति पर रोनेवाला कौन होता है ? कवयित्री संसार की कृतघ्नता पर विस्मय एवं शोक प्रकट करती है - अगर तुझ जैसे महादानी पर संसार निर्दय, कठोर एवं कृतघ्न रहे तो हम जैसे निसार प्राणियों की बात पूछनेवाला कौन है ?

कवयित्री फूल को दिलासा देती है । उनका संवेदनशील दिल फूल की दुरवस्था पर रो उठता है। क्योंकि एक ही हाथ ने दोनों की सृष्टि की । संसार की निर्दयता का कारण वह नहीं किसी पर अनावश्यक अपराध - आरोपण वे नहीं करना चाहतीं । सृष्टि की विलक्षणता मात्र इस उदासीन चेष्टा का कारण है । भगवान ने सबको स्वार्थमय बनाया, इसलिए हे सूखे सुमन ! तू व्यथित मत हो जा । इस संसार ने किसी को भी सुख नहीं दिया है । लेकिन तू, यह सोच शांत हो जा कि तू ने संसार के लिए अपनी ज़िन्दगी सेवा की बलिवेदीपर अर्पण कर दिया । तू ने अपने जन्म का कर्तव्य निभाया निर्वाण का कोई निश्चित अवसर नहीं । वह आज हो या दिनों बाद । जो जन्म लेता है , वह मरता है । लेकिन कृत-कृत्य भाव ही आश्वस्थ होने का एकमात्र उपाय है ।

इस कविता में कवयित्री ने एक ओर प्रकृति की अनन्त सुन्दरता एवं विचित्रता का वर्णन किया है तो दूसरी तरफ जन-जीवन के दुःख दर्द के करुणा-मिश्रित क्रन्दन को मुखरित कर दिया है । जिस प्रकार एक ओस कण में संपूर्ण वन-वैभव झलकता है वैसे एक फूल के क्षणिक जीवन के द्वारा संपूर्ण मानव जीवन का महा इतिहास प्रस्तुत किया गया है । यह तो गागर में सागर भरने का जादू है ।

संसार के सभी जीवों के प्रति संवेदनशील कवयित्री फूल के शैशव का, याने उसकी सौभाग्यपूर्ण अवस्था का, चित्र खींचने के बाद उसकी तत्कालीन दुरवस्था का भी परिचय देती है । जैसे -

"स्निग्ध किरणें चन्द्र की
तुझ को हँसाती थी सदा,
रात तुझ पर वारती थी
मोतियों की सम्पदा ।

आगे

लोरियाँ गाकर मधुप
निद्राविवश करते तुझे
यत्न माली का रहा -
आनन्द मे भरता तुझे ।

वह तो

कर रहा अठखेलियाँ -
इतरा सदा उद्यान में ।"[1]

उस समय अपने ऐसे शोचनीय अन्त के बारे में उसने स्वप्न में भी सोचा नहीं था उसकी तत्कालीन स्थिति इस प्रकार है ।

"सो रहा अब तू धरा पर -
शुष्क बिखराया हुआ,
गन्ध कोमलता नहीं
मुख मंजु मुरझाया हुआ ।"[2]

---

1. मुर्झाया फूल - नीहार महादेवी, पृ.50
2. वही, पृ.50-51

अब उसके पहले के प्रेमी जन का नामोनिशान ही नहीं, न जाने सब कहाँ जा छिपे हैं । सबसे बड़ा दुःख, सब से बड़ी प्रतिक्रिया अवगणना की है, अब फूल ऐसी एक दुःस्थिति में है । कवयित्री के शब्दों में -

"आज तुझको देख कर
चाहक भ्रमर आता नहीं,
लाल अपना राग तुझ पर
प्रातः बरसाता नहीं ।"[1]

जिसने प्यार किया उसने उसे ठुकरा कर एक धक्के से धराशायी कर दिया ।

"जिस पवन ने अंक में
ले प्यार था तुझ को किया
तीव्र झोंके से सुला -
उसने तुझे भू पर किया ।"[2]

अगर कृतज्ञता न दिखावें तो उपकार के बदले अपकार एवं अवगणना सब से घोर पाप है । लेकिन दयालु सुमनस् ऐसा दानवी कृत्य नहीं करेगा । दुखी ही दुखी को पहचान पाता है । जिन्दगी चाहे अत्यल्प काल का ही क्यों न हो इतर प्राणियों की सेवा के लिए उसका सदुपयोग होनी चाहिए । फूल ने ऐसा ही किया । उसने अपना मधु, गंध, सुषमा, राग, वर्ण - सब कुछ दूसरों को दान दिया । किंतु प्रतिदान मिला निर्दाक्षिण्य तिरस्कार ! इस तिरस्कार पर कवयित्री को दुःख हुआ।

1 मुरझाया फूल पृ - ८।
2 वही

यह भी उन्होंने समझ लिया कि उसके दर्दभरे दिल से जो आहें निकलती है उन्हें वह सूखे ओठों की ओटों में छिपा देता है । उसके मूक दुःख से तादात्म्य पाकर कवयित्री का करुणार्द्र चित्त उसको तसल्ली देता है -

"मत व्यथित हो फूल ! किसको
सुख दिया संसार ने ?
स्वार्थमय सब को बनाया
है यहाँ करतार ने ।"[1]

वह मनस्विनी संसार को अपराधी बनाना नहीं चाहती । सृष्टि के सहज वैकल्प केलिए किसको दोषी बनावें ?

फूल की इस तिरस्कृत दशा में अपने अनुभूत पाठ से उसने अपने जीवन की पुस्तक में आँसू से लिखा होगा कि यह संसार कितना अस्थिर तथा कृतघ्न है, जिसके पथ में बेचारे ने सौरभ एवं मकरंद बिछा दिया, बदले में उसके नयनों में उसने धूल भर दी। इस जघन्य कृतघ्नता पर सोच वह सूखा सुमन अपने उच्छ्वासों की छाया में पीडा के सशक्त आलिंगन में जकड निःशब्द रो रहा है । उसके आँसू पोंछने के लिए मनस्विनी, संवेदनशील कवि की करुणार्द्र उँगली ही आगे बढती है । कवि भी दुखिया है । अपने को फूल से नाता जोड कर वे पूछती है कि "हम जैसे निसार प्राणियों के लिए कौन रोएगा ? निर्दय लोक के स्वभाव से भली-भाँति अवगत होने के बाद आँसू बहाना बेवकूफी है । इतना ही नहीं कोई हमेशा के लिए नहीं रहता । इसलिए दुखी होने की अवश्यकता नहीं ।

---

1. मुर्झाया फूल - नीहार महादेवी, पृ.5।

इस करुण-रस मिश्रित कविता द्वारा कवयित्री मानव जाति को यह अक्षय संदेश देती है कि दुखियों के दु:ख पर हमदर्दी दिखा दें। जीवन के वसन्त काल में सब सुन्दर लगता है। लेकिन अवस्था के ढलते-ढलते पट बदलता जाता है। मानव का सौभाग्य अचल नहीं। क्षणिक सुख भोगात्मक जीवन का दुखात्मक परिणाम है। संसार निष्ठुर तथा निर्मम बन कर घोर अवगणना करता है। जो इसका शिकार बनता है दु:सह पीडा से कराह उठता है।

इस प्रतीकात्मक कविता में कमनीय कुसुम के स्थान पर एक स्वस्थ सुन्दर युवती की कल्पना कर निरीक्षण करें तो यह कठोर सत्य मालूम हो जायगा कि जब तक युवती के आरक्त कपोल पर मृदुता रहेगी मुस्कान रहेगा, उसके अंगोपांग स्वस्थ एवं सुन्दर हों - संयत रूप में कहें तो वह भोग क्षम हो तब तक ही युवक वृंद फूल की तरफ भ्रमर जैसे उसकी चारों ओर मंडरायेंगे। जब बाढे सी आनेवाली तरुणाई उसी तेज़ी से चली जाती है तो उसे पूछनेवाला कोई नहीं होगा। विस्मृति की कोठरी में वह धकेल दी जायगी। उसकी ज़िन्दगी घोर निराशा एवं संकट में पडेगी। अतीत के आह्लाद की अनुभूति की तथा उसकी सुन्दरता की फीकी यादों में वह अपने को खोयी हुई बैठेगी, जबकि अपने प्रेमी सोल्लास मधुप-सा दूसरे फूलों की गंध में आकृष्ट हो उसके पीछे पड मौज उडाता रहेगा।

मधुमयी प्रतिभा और जागरूक भावुकता के मेल से 'मुर्झाया फूल' की रचना द्वारा श्रीमती महादेवी वर्मा ने

प्राणि-जगत् के सुख-दु:ख एवं जीवन की क्षणिकता का मनोमुग्धकारी चित्र खींच कर अपने "अज्ञात प्रियतम" की महत्ता की घोषणा की है । उन्होंने अपनी पैनी दृष्टि से प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण करने की पटुता का परिचय भी दिया है ।

चाहे नारी शिक्षिता हो या अशिक्षिता प्राय: प्रवंचिता होकर मूकवेदना में गलती रहेगी । उसकी आत्मपीडा की प्रतीकात्मक अभिव्यंजना के रूप में भी यह कविता अत्यंत चेतोहर बन पडी है ।

निष्कर्ष

महादेवी की कविता का मूल स्वर करुणा है । जीवन क्षणिक है । सुख-दु:ख समन्वित है । कवयित्री झडे फूल के दु:खपूर्ण जीवन को प्रतीक के रूप मे ग्रहण करते हुए इस शाश्वत सत्य का उद्घाटन कर देती है ।

****

शोकाश्रु-बिन्दु

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की मृत्यु पर बदरीनारायण चौधरी "प्रेमघन" द्वारा लिखित "शोकाश्रुबिन्दु" हिन्दी साहित्य का सर्वप्रथम शोकगीत है । "प्रेमघन" भारतेंदु युग के कवि तथा भारतेंदु हरिश्चन्द्र के घनिष्ठ मित्र भी थे । अपने अन्तरंग मित्र की, तथा हिन्दी साहित्य के एक महान् नेता की चिरस्मृति की यादगार है यह शोकगीति ।

आत्म मित्र का असामयिक तिरोधान

शोकाश्रुबिन्दु की रचना संवत् 1942 में हुई । इसमें दिवंगत आत्मा के सारे के सारे गुणों का उद्घाटन किया गया है । संवत् 1942 के माघ मास के कृष्ण पक्ष की आठवीं तिथि की रात को एक ऐसी दुर्घटना घटी जो समस्त भारत को तथा सभी हिन्दी प्रेमियों को दुःखसागर में डुबानेवाली थी ।

उस दुर्दिन में कुटिल काल ने ऐसी एक कुचाल रची जिससे कवि के प्राणप्रिय मित्र का हरण हुआ । उस दिन के अभिशप्त घड़ियों को कवि धिक्कारते हैं । अपने दिवंगत मित्र के त्यागोज्वल जीवन एवं उनके अतुल्य व्यक्तित्व की महानता का स्मरण करते-करते मित्र की आत्मा को शांति देने के लिए कवि जगदीश से प्रार्थना करते हैं ।

शोकात्मकता

काल-रूपी राहु ने भारतेंदु हरिश्चन्द्र को ग्रस लिया । वे अपने बन्धु-मित्रों के लिए प्राण प्यारे थे । रसिक जनों के वे शिरोमणि थे । ऐसे उनके अप्रत्याशित निधन से कवि अपना दुःख यों प्रकट करते हैं कि कविता की जहाज डूब गयी, कवियों के अपने आत्मीय नेता खो गए । भारत को अपने अमूल्य मुकुट नष्ट हुए । कवि का यह परिदेवन है कि इस अमूल्य रत्न को न जाने कौन उठा ले गया ? भावावेग की उच्च दशा पर पहुँचकर अपने मित्र के प्रति कवि की यह मार्मिक उक्ति है -

"रोवैं क्यों न गुनी जाके रहे गुन गाहक ना
पंडित सुकवि रोय सुख सेज सोवै न ।
रोवै क्यों न पत्रन प्रचारक हितैषी देश,
सभा को करैया कैसे हिय हरखु खोवै ना ।"[1]

---

1. शोकाश्रुबिन्दु - बदरीनारायण चौधरी "प्रेमघन"
प्रेमघन सर्वस्व, पहला भाग, पृ.175

भारतेंदु के सारे के सारे गुणों की और उनके अप्रतिम व्यक्तित्व की याद कर स्वर्गीय मित्र के सारे बन्धु, मित्र, यहाँ तक कि अगर उनका कोई शत्रु है तो वे भी रो उठते हैं। सबों के उपकारी महादानी के निधन पर वे क्यों न रोवें ?

"दीन-मीन दान सिन्धु सूखे किन रोवे,
रोवे भारत समस्त दूजो सत्य प्रिय जोवे ना
मित्र क्यों न रोवे तेरो शत्रु क्यों न होवे तउ
पूरो पशु होवे न तो क्या मजाल रोवे ना।"[1]

"प्रेमघन" की राय में अपने मित्र हिन्दी भाषा एवं साहित्यरूपी लता के एक सुशक्त आधार थे; उस सुदृढ तरु को काल ने अपने कराल कुठार से काट लिया।

वे कवि के प्राणोपम मित्र थे। हिन्दुस्थान के उस चन्द्रमा के गायब हो जाने से भारत की द्युति मंद पडी है। भारतेंदु के लिए अपनी जननी और जन्मभूमि दोनों समान रूप से प्यारी थी। न जाने देशबन्धु होने पर भी क्यों अपने देश को छोड कर वे चले गए। स्वयं आश्वस्थ होकर कवि कहते हैं कि शायद भारत के उस समय का भाग्यविपर्यय देखकर दुखी होकर वे चुपचाप चले गए। कवि मृत्यु की अजेयता तथा मृत्युपरान्त जीवन पर मानव की लाचारी तथा अज्ञता की ओर संकेत करते हैं। न जाने निर्दय विधि ने अपने मित्र को चुराकर कहाँ रखा है ?

---

1. शोकाश्रुबिन्दु - बदरी नारायण चौधरी "प्रेमघन"
"प्रेमघन" सर्वस्व, पहला भाग, पृ. 175

यह भी संभव होगा कि अपना दायित्व निभाने के बाद उन्होंने सांसारिक मंच छोड दिया होगा । हिन्दी की उन्नति करने का उपाय न जानकर वे परलोक की ओर रवाना हुए होंगे । अथवा स्वदेश की भलाई उचित उपाय ढूंढ निकालने के लिए उन्होंने भगवान का आश्रय पाया होगा । भगवान् अपने प्रिय भक्तों को जल्दी अपने पास बुला लेते हैं । गुणी लोग अल्पायु होते हैं; इसलिए भगवान ने अपने मित्र को जल्दी बुला लिया । अपने अनुमान पर आधारित इन धारणाओं से कवि के मन को सान्त्वना नहीं मिलती । अतः उनका आकुल अंतरंग यही पूछता रहता है कि असमय पर उनका प्रस्थान क्यों हुआ ? लेकिन उनका चिरवियोग सत्य ही है । उनके अकाल के तिरोधान पर सब लोग अतीव दुःखी है । सारे सज्जन कवि, विद्वान शोकाकुल होकर आँसू बहाते रहते हैं । भारतेन्दु ने अपनी यश रूपी धवल किरणों से सारी दुनिया को आलोकित कर दिया था । अब उनके गायब होने से सारी दुनियाँ शोक सन्तप्त हो गयी है । वसुन्धरा निस्तेज पडी है । भारतेन्दु भारतीयों के हितैषी थे, हमारे शत्रु उनसे डरते थे । हमारे महान् आदर्शों के वे रक्षक थे । वे अपनी रचनाओं द्वारा जनता में आत्मविश्वास और देश-प्रेम तथा स्वतंत्रता की इच्छा बढाने का कार्य कर पराधीनता से मुक्ति और भारत की उन्नति के लिए अहोरात्र प्रयत्न करते रहे । ऐसे एक महानुभाव का गुणकीर्तन करना कवि अपना कर्तव्य मानते हैं ।

अन्य सभी मानवीय सम्बन्धों की अपेक्षा मैत्री-संबंध का अपना अलग महत्त्व है । मित्र यदि अत्यधिक आत्मीय हो तो उसका वियोग असहनीय अवश्य है । उसकी क्षतिपूर्ति असंभव है ।

सच्चे मित्र परस्पर सुख-दुःख के भागीदार होते हैं । आखिर रिश्तों की गहराई खून से तुली नहीं जा सकती । गहरे मित्र जब चाहे स्वच्छन्दता से मिलने हिचकते नहीं । ऐसे मित्र दिल खोल कर बातें कर सकते हैं, और सब प्रश्न हल कर सकते हैं । भारतेंदु, 'प्रेमघन' के लिए ऐसे एक सच्चे मित्र थे । स्वर्गवास होने पर उन्हीं की स्मृति में मग्न कवि, अपने अपरिहार्य नष्ट पर शोक मूक हो जाते हैं ।

गुणकीर्तन

भारतेंदु हरिश्चन्द्र आधुनिक हिन्दी के प्रारंभकालीन श्रेष्ठ साहित्यिक थे । साहित्य की प्रायः समस्त विधाओं पर उनका असाधारण अधिकार था । साहित्य की उपासना के लिए उन्होंने अपनी जिन्दगी समर्पित की थी । अपनी महान् सेवा से आपने उस समय के समूचे वातावरण को इतना अधिक प्रभावित किया कि भारतेन्दु युग नाम उनके समय को अभिहित किया गया । वे भारत के हिन्दी साहित्य के, अपने बन्धु-मित्रों के इन्दु थे । मानवीय गुणों के धनी अपने मित्र को "प्रेमघन" महामानव कह कर उनकी तुलना राजा हरिश्चन्द्र से करते हैं । वे सत्य को जीवन-व्रत मानते थे, यही उनकी कीर्ति का हेतु है । वे अपनी कलात्मक साधना के लिए कीर्तिमान थे । उनकी कविता साहित्य रस की खुशबू एवं सत्य की सुधा से आपूरित है । वे देश के हितैषी थे । देश की एकता के वे पोषक भी थे । वे भारत माता के प्रिय एवं सुयोग्य पुत्र थे । धर्म धुरन्धर एवं भक्तशिरोमणि थे । दुखियों का दुःख मिटाने के लिए वे अविरल प्रयत्नशील रहे । वे दानवीर थे । कर्ण या राजा विक्रम सिंह के समान उनके पास जो अर्थी बन कर आते थे, वे खाली हाथ नहीं

लौटते थे । कला-कामिनी के सच्चे प्रेमी वे एक सच्चे नागरिक तथा सर्वगुणसम्पन्न थे । ऐसे महान् गुणी मोक्षपद को प्राप्त करने के लिए चले गए । कवि का यह अनुमान है कि भारतेंदु मोक्षगामी इसलिए हुए कि रसिकशिरोमणि होने से वे सोचते होंगे कि अपनी जवानी का अन्त शीघ्र ही होगा, इसलिए अपने सारे सद्गुण एवं अपनी बची हुई तरुणता बटोर कर देवलोक जाना ही अच्छा होगा, जहाँ नित्यवसन्त तथा नित्ययौवन का साम्राज्य है । अभिशाप्त जरा-मरण वहाँ है ही नहीं । यही नहीं वहाँ भी नये-नये ग्रंथों का प्रकाशन हो सकें ।

> "नित नव ग्रंथन सुमन के परकाशक तरु होय,
> मूरतिमान सिंगार को अंग नायक नवल ।
> चले लिए सकल भाव रस-रंग ।"[1]

वे गुणियों के पारखी थे । मित्र का गुण गायन करते हुए कवि बताते हैं कि वे हिन्दी भाषा रूपी दुल्हिन के प्रिय दुल्हा थे । इस प्रकार कवि ने अपने मित्र की सत्यप्रियता साहित्य एवं समाज सेवा, सत्कार प्रियता विनोद प्रियता, दानशीलता, परदुःख कातरता आत्मीयता पूर्ण मित्रता इत्यादि सभी गुणों को याद कर उनका यशोगान किया है ।

अपनी अल्पायु में ही भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने अपनी कवित्व शक्ति और सर्वतोमुखी रचना क्षमता का परिचय दिया । आपके साहित्य-फलक के विस्तार से अभिभूत होकर साहित्यकारों ने उन्हें "भारतेंदु" की उपाधि देकर उनका सम्मान किया ।

---

1. शोकाश्रुबिंदु - बदरीनारायण चौधरी "प्रेमघन"
प्रेमघन सर्वस्व, पहला भाग, पृ.198

"प्राचीन और नवीन के उस संधिकाल में जैसी शीतल कला का संचार अपेक्षित था वैसे ही शीतल कला का संचार अपेक्षित था वैसे ही शीतल कला के साथ सर्वतोन्मुखी प्रतिभा वाले भारतेंदु का उदय हुआ इस में सन्देह नहीं।[1]"

नवीन युग के बोध से अवगत होने पर कोई युगप्रवर्तक नहीं बनता, प्राप्त ज्ञान या बोध को संप्रेषणीय बनाने की क्षमता भी अपेक्षित है। निःसन्देह भारतेंदु हरिश्चन्द्र में यह विलक्षण क्षमता थी, और इसी के बल पर वे अपने युग को सच्चा एवं सफल नेतृत्व प्रदान कर सके।

इस शोकगीत में भारतेंदु हरिश्चन्द्र के घटनाबहुल जीवन की प्रायः सभी पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। एक सच्चे, गुणी मित्र का असामयिक निधन कवि को दुःख-सागर में डुबा देता है। इस व्यथा को हल्का करने के लिए, मित्र के प्रति अपना दायित्व पूरा करने के उद्देश्य से उनके सारे के सारे गुणों पर प्रकाश डालकर इस शोकगीत का सृजन हुआ। शोकाश्रुबिन्दु केवल शिष्टाचारवश लिखी श्रद्धांजलि नहीं; जैसे कि शीर्षक व्यक्त कर देता है, यह उनके अश्रुसिक्त नयनों से समर्पित सहज भेंट है। यह सच्चे मित्र के सही दिल से फूट पड़नेवाले दुःख दर्द की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है।

---

1. हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ - प्रो. शिवकुमार वर्मा, पृ. 438

निष्कर्ष

भारतेंदु हरिश्चन्द्र के अप्रत्याशित निधन पर उनके घनिष्ठ मित्र प्रेमघन से लिखा गया "शोकाश्रुबिंदु" हिन्दी का प्रथम शोकगीत है। भाषा-शैली की दृष्टि से सरल यह काव्य आकार में छोटा है। मित्र का गुण-गान करते हुए दुःख की सहज अभिव्यक्ति इसमें हुई है। प्रस्तुत शोकगीत की यह विशेषता है कि यह वैचारिक से ज्यादा वैकारिक है।

५५५५५५५५५५५

प्राणार्पण

बालकृष्णशर्मा "नवीन" के इस शोककाव्य में अमर शहीद श्री• गणेश शंकर विद्यार्थी की ऐतिहासिक आत्माहुति की गौरव-गाथा है ।

काव्य का कथ्य

यह काव्य चार आहुतियों या सर्गों में विभाजित है । यह नामकरण काव्य के नायक की आत्माहुति की याद दिलाता है ।

1931 में कानपुर में जो दंगे हुए, हिन्दू-मुसलमानों की जो दर्दनाक दशा हुई, उसका यथातथ्य, हृदयविदारक वर्णन इसमें किया गया है ।

"प्रथम आहुति में कवि ने हिन्दू-मुस्लीम दंगों को दानवी करनी कहा है। उनके परस्पर हिंसक भाव इतना भयानक था कि कवि ने इसे "राक्षसी, मज्जालथपथ" एवं "शोणित मज्जित" कहा है। इस काव्य में कवि ने अपनी आँखों देखी घटनाओं का वर्णन ही किया है। इतनी डरावनी एवं निष्ठुर करनियों को अपने नेत्रों से देखने से कवि ने अपने उन नयनों को अभिशाप्त कहा है।

"अपने अभिशाप्त दृगों से हे देखी मैं ने वे घटनाएँ
देखी है इन आँखों ने वे अति घोर राक्षसी - रचनाएँ।"[1]

कहीं कहीं स्त्रियाँ मारी गयी तो कहीं उनका चारित्र्य छिन गया था। कहीं हिन्दू को ही मुसलमान मान कर हिन्दुओं द्वारा मारे गये और उल्टे भी। हत्यारों को लड़का, लड़की, स्त्री या पुरुष बूढा या बूढी में कोई फरक नहीं था। निर्मम होकर सबका संहार वे करते गये। इस भीषण हत्या-काण्ड को देख कर मानवता नग्न हो गयी थी।

द्वितीय "आहुति" में धार्मिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि का वर्णन किया गया है। इन दंगों को भड़काने में विदेशी सत्ता तुली हुई थी। हिन्दू-मुसलमान जब अंग्रेजों के विरुद्ध एक हो गये तब "विभाजन कर शासन करने" (divide and rule) की उनकी नीति काम आयी। जनता के बीच सांप्रदायिकता का

---

1. प्राणार्पण - बालकृष्णशर्मा नवीन, पृ. 6

ज़हर उन्होंने फैला दिया बाँट कर शासन करने का उनका तंत्र सफल हुआ । गांधीजी के कठिन प्रयत्न से एकता एवं जागरण का ज़ोर पकड़ने लगा था कि सरकार के कुतंत्रों द्वारा वह नष्ट हुआ । इतना ही नहीं, धन जन का विनाश हुआ, मसज़िदें ढही गयी और मंदिर टूट पड़े । सब कहीं विद्वेष एवं घृणा फैल गयीं ।

यह विभीषिका देख कर जननायक गणेश शंकर विकल हो गये । हिन्दु-मुस्लिम वैमनस्य को मिटाने का उनका सारा प्रयत्न विफल होते देख वे दुखी हुए ।

"तृतीय आहुति" में गणेश जी के मन का घात-प्रतिघात विचार विमर्श व्यक्त किया गया है । इसमें अंग्रेज़ी शासकों की कूटनीति से भारतीय जनता के पशुवत् व्यवहार गणेश जी की आकुलता एवं हृदयवेदना का वर्णन हुआ है । मानव मूलत: अहिंसा प्रेमी है । किंतु अज्ञानवश हिंसा के मार्ग पर वह चलता है । इस जघन्य पाप से भारतीय जनता को मुक्त करने का दृढ निश्चय लेकर, "स्वधर्मे निधनं श्रेय:" वाले भारतीय सिद्धांत को अपनाकर वे साहसपूर्वक आगे बढ़े ।

चतुर्थ "आहुति" में गणेश जी की महान् सेवा एवं उनकी आत्माहुति का दारुण चित्र प्रस्तुत किया गया है । वे वीर नायक प्राण को तृणवत् समझकर दंगों के बीच आ गए । उनके एक तरफ क्रुद्ध, पागल हत्यारे, दूसरी तरफ इस डकैती के शिकार

बन कर कराहनेवाले निःसहाय प्राणी । उनकी रक्षा में मग्न उन्हें वे बर्बर और पागल कहने लगे । उनके परिहास को अनसुना कर वे अपने कर्तव्य में निरत रहे । विपत्ति-ग्रस्त मुस्लिम बस्ती मे उनकी रक्षा करके हिन्दू की बस्ती में जाकर उनकी रक्षा करने लगे । इस असाधारण करनी पर लोग विस्मित हुए । मृत्यु-वक्त्र में निर्भय होकर चलनेवाले गणेश जी को देख वे बोल उठे -

> कौन यह ? कौन यह ? अरे जो सुना रहा है
> प्रेम क्षेम शांति का संदेश आज घर घर ?"[1]

लोगों को उबारते हुए एक स्थान से दूसरे स्थान पर वे पहुँचे तो कुछ हत्यारों ने हाथ में लाठी भाले, छुरी जैसे शस्त्र लेकर उन्हें घेर लिया । उनको लक्ष्य करके भाले तने, लाठी उठी, छुरी चमकी, किंतु वे अडिग रहे । किसी ने उनकी कमर में छुरी घुसेड दी, किसी ने लाठी मार दी, वे गिर पडे, उनके साथ दोनों पक्ष के कुछ स्वयंसेवक अवश्य थे, किंतु उनकी रक्षा करने में वे सफल न हुए । हिंसक तो अपनी उक्त पिपासा के शमन के लिए तुले हुए थे । उनके सामने गणेश जी ने अपने प्राणों की आहुति दीं ।

श्रद्धा से परिवेष्टित शोक की अभिव्यक्ति

गणेश जी कवि के लिए कौन थे यह जानने के लिए काव्य का अन्तर्साक्ष्य ही पर्याप्त है । इसके प्रथम खण्ड में कवि के

---

1. प्राणार्पण - बालकृष्णशर्मा नवीन, पृ.44

श्रद्धांजलि परक ये शब्द है -

"मेरे गणेश की यह गाथा, मेरे अग्रज का है अर्चन,
है कोई काव्य नहीं, यह तो है केवल मम श्रद्धा तर्पण"[1] ।

श्रीमती सरला शर्मा ने भी इनके दृढ आत्म-बन्धु पर इशारा करते हुए कहती है "कवि के लिए गणेश जी अग्रज, सखा, नेता और प्राणों से अधिक प्रिय थे[2] ।"

भारत माता के इस सपूत्र का परिचय भी कवि "प्राणों के बलिदानी", "निर्मोही" "चिर विद्रोही" "चिर दानी" के रूप में देता है ।

गणेश जी ने जिस महान् कार्य के लिए अपने प्राण त्याग दिए उन घटनाओं का वर्णन कवि ने अत्यन्त मर्मस्पर्शी ढंग से प्रस्तुत किया है । आँखों देखी उन घटनाओं का वर्णन इतना प्रभावशाली हुआ है कि एकदम आँखें छल-छल आती हैं और शिराएं सुन्न हो जाती हैं । साम्प्रदायिकता के दंगे में असंख्य निरीह प्राणियों की हत्या हुई । एक दृश्य यों है - एक घर में एक माता और उसका बच्चा ही रहे, वहाँ हत्यारों के भाले घुस आए और दोनों का काम तमाम हुआ । रक्त की धारा से घर की दीवारें लाल हुई, माँ बेटे की चिल्लाहट से अम्बर की छाती भी दरक गयी[3] ।"

---

1. प्राणार्पण - बालकृष्णशर्मा नवीन, पृ.5
2. वही, आमुख
3. वही, पृ.7

कवि एक दूसरे हृदयभेदक दृश्य का वर्णन देते हुए कहते हैं कि उन्होंने एक शून्य घर के अन्दर देखा तो एक घोर दृश्य देख वे स्तब्ध हुए । उस घर के कोनों और गड्ढों में खून भरा पड़ा था । लम्बे केश वहाँ बिखरे हुए थे । वे भी रक्त से सराबोर थे । उस घर की दीवारें भी रक्त रंजित थी । टूटी फूटी चूड़ियाँ तितर बितर पड़ी थीं । न जाने वह सुकेशिनी कहाँ गायब हो गयी । किन्तु घर के आँगन में जो कुआँ था उससे दुर्गंध भभकती थी । इस प्रकार एक नहीं दो नहीं सैकड़ों दृश्य के वे मूकसाक्षी बने थे ।

निर्भय जन-सेवक

इस प्रकार के कुकर्मों से लोगों को विरत कर उन्हें समझा बुझा कर दंगों को शान्त करने का प्रयास गणेश जी करते रहे । दानवता को भी लजानेवाली निष्ठुरता देख हृदयालु गणेश जी का चित्त विदीर्ण हुआ । अत्याचार देख उनका कोमल मन क्षुब्ध हो उठा । तूफान की तरह कलह स्थानों पर वे दौड़ आए । मानवता की प्रतिमूर्ति वे स्नेह धनी मानवता की बलिवेदी पर प्राणार्पण करने का दृढ निश्चय ले लेते हैं । कवि उनका रूपवर्णन इस प्रकार करते हैं -

"खद्दर के शुभ्र वस्त्र, नग्नसिर, हँस मुख,
कृश तन, तेजोमय लोचन एवं प्रसन्न रूप वाले थे।[1]"

1· प्राणार्पण - बालकृष्णशर्मा नवीन, पृ·32

अपने हिंसा कर्म से विरत करने का आह्वान गणेशजी ने उन दानवों को दिया, किन्तु अपने दानवाचरण बन्द करने के लिए वे तैयार नहीं थे। अत: अपने धुन के पक्के गणेश जी ने जान को तृणवत् समझ कर त्याग एवं सेवा की बलिवेदी पर अपने को सज्जित किया। विपत्ति स्थान पर निर्भय पहुँच कर वे विपन्न नर-नारी एवं बच्चों को उबारने लगे। सब उनकी इस धीरता पर मुग्ध हुए और उनकी प्रशंसा करते रहे। करीब दो सौ प्राणों की रक्षा उन्होंने इसी धीरता से की, जैसे किसी हिंस्र जानवरों के मुख से हरिण शावक की रक्षा कोई करता हो। लोग विस्मित होकर परस्पर पूछने लगे कि -

"यह भी क्या संभव है, प्राणान्तक निमिषों में
कोई आज आके प्राण-त्राण की सुनाये तान
कैसे संभव है मृत्यु उल्का पात वेला में कि,
कोई खड़ा रहे नवजीवन-वितान तान ?"[1]

लोगों के भय और क्लेश हरने के लिए वे इस भाँति गतिशील हुए मानो संरक्षण मूर्तिमान होकर गतिमान हो गये हो। अथवा प्राण कन्दुक को ठुकराते हुए स्वयं बलिदान मूर्तिमान होकर चल पड़ा हो।

धीरता की उस मूर्ति को देख किसी ने सलाम किया, किसी ने आदर से उनका कर चूम लिया। कोई आकर सद्भाव से गले मिला तो कोई विस्मय स्तब्ध हो कर खड़ा रहा।

---

1. प्राणार्पण - बालकृष्णशर्मा नवीन, पृ.40

इसी बीच क्रोध में मत्त, धर्म और जाति के नाम पर मदांध, हत्या दत्त चित्त रक्त पिपासुओं का एक दल उनकी ओर आते हुए दिखाई पड़ा । तब एक मुस्लीम स्वयंसेवक ने उन्हें खींच वहाँ से तत्काल भाग जाने का अनुरोध किया । लेकिन गणेश ने उसका एक न माना । वे यह कह कर वहाँ अड़िग रहे कि मैं ने आज तक अपने कर्तव्य में पीठ न दिखलाई, अब क्यों कर्तव्य निभाने के बीच प्राण को बचाने के लिए भाग जाऊँ ? एक बार सब को मरना होगा । यदि ये मदान्ध मुझे मार डाले तो मैं अपने को बचाने की कोशिश कर मानवता का अपमान करना नहीं चाहता[1] ।" तब वे आततायी "इसको मारो" का नारा बुलन्द उनकी ओर बढ़े । एक मंदहास में गणेश जी उनसे कहा "यदि मारना है तो मारो, मेरे खून से तुम्हारी प्यास बुझती हो तो मुझे मारो[2] ।" इतने में किसी ने उनपर भाला भोंक दिया, और किसी ने उनके सिर पर लाठी का प्रहार किया, वे भहरा कर गिर पड़े, उनके प्राण उड़ चले ।

"दया माता रोयी', लोक रंजन बिलख उठा,
जब धराशायी हुआ वह चिर धीर श्रेष्ठ,
अम्बर का छोर कंपा, धरित्री सिहर उठी,
जब धरती पर गिरा वह वीर श्रेष्ठ[2] ।"

कवि का कथन है शहीद गणेश जी के लिए कोई स्मृति चिह्न नहीं; कुछ शेष न रह गया । वे एक अत्यन्त साधारण

---

1. प्राणार्पण - बालकृष्णशर्मा नवीन, पृ॰5।
2. वही, पृ॰5।

आदमी था, किसके पास अवकाश है, कोई जाके उनके स्मरणार्थ एक यादगार बनावें ? लेकिन करोडों के मानस में उनका स्मृति-मंदिर उठेगा । वैसे उनकी याद चिरस्थाई रहेगी[1] ।

प्राय: ऐसा होता आया है कि जिन लोगों ने अलख की झलक देखी है, जिन्होंने अदृष्ट को मूर्त किया है और असंभव को संभव बनाया है जग उन्हें पहचान नहीं पाते हैं या समझें तो बहुत देर के बाद । काल की यवनिका के पीछे की अनन्त नीलिमा में उनके ओझल हो जाने के बाद लोग तडपते और बिलखते जाते है । गणेश जी भी अपने जीवन का मोल आंक कर सघन अंधकार में तीक्ष्ण प्रकाश फैलाकर चले गए ।

इस खण्ड काव्य में गणेश जी के अंतिम दिनों की घटना का चित्र "नवीन" जी ने खींचा है । वे कांग्रेस के चोटी के नेताओं में थे । हिन्दू-मुस्लीम दंगों को शांत करने का व्रत लेकर उसके लिए उन्होंने अपने प्राण को सेवा की बलिवेदी पर चढा दिया ।

कवि ने इस महामानव के त्यागोज्वल जीवन की स्मृति को अमर बनाया । इस काव्य की भूमिका में स्व.पं.जवाहरलाल ने स्पष्ट किया है कि कवि और उनके मित्र दोनों गुज़र गये । लेकिन उनकी यह कविता उन दोनों की एक स्मारक रहेगी ।

---

1. प्राणार्पण - बालकृष्णशर्मा नवीन, पृ.33

दो विभिन्न पहलू

जिसने स्नेह, दया, सेवा आदि मानवता की गंगा यहाँ बहायी, जिसने मानवता को बनाये रखने के लिए, मानव-मानव को एकता के सूत्र में कसकर बाँधने के लिए हँसते हुए अपने प्राणों की आहुति दी, उस महामानव के उज्वल चित्र के साथ ही कवि ने देश के इतिहास के पन्ने पर लगे कलंक का एक मलिन चित्र भी प्रस्तुत कर दिया है । काव्य की अंतिम "आहुति" विषाद से आच्छन्न है।कवि ने सांप्रदायिकता से मदान्ध पाशविक वृत्ति की दीनहीनता के चक्र में पिसनेवाली भोली जनता के तीव्र शोक तथा उनकी दीन हीन स्थिति का मार्मिक चित्र भी इसमें अंकित किया है । निहत्थे गणेश जी पर किए गए घोर अत्याचार एवं उनकी दारुण हत्या की स्मृति दिल को कचोटती है । वे मानव प्रेमी होने से सांप्रदायिकता के नाम पर हुए उन दंगों को अपने आप में होते देखते थे ।

प्राणार्पण एक ही समय एक चरित्र काव्य है, इतिहास काव्य है, सर्वोपरि शोककाव्य है । इस काव्य के नायक गणेशजी की महिमा के बारे में श्री जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव कहते हैं कि "प्रारंभ में ही "नवीन" जी ने गणेश जी को "ओ, तुम प्राणों के बलिदानी" कह कर वंदना गीत गाया जिसमें पहले धर्म की अमर निशानी कहा है और डेढ पसलिये के इस नरवर को साधारण मानवों से अलग कर सर्वथा पृथक् उच्च श्रेणी का महामानव माना है[1] ।"

---

1. नवीन और उनका काव्य - जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव, पृ.218

निष्कर्ष

इस श्रद्धांजलि परक शोककाव्य में कवि हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य की बलिवेदी पर मानवता तथा विश्वसाहोदर्य के प्रेमी, शहीद श्री॰ गणेश शंकर विद्यार्थी की पावन किन्तु विषादमयी स्मृति पर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करके विश्वबन्धुत्व की दुहाई देते हैं। देश के शहीदों की श्रेणी में गणेश जी का नाम अमर रहेगा।

****

अंजलि और अर्घ्य

राष्ट्रकवि एवं भारतीय संस्कृति के प्रवक्ता के रूप में ख्यातिप्राप्त श्री मैथिलीशरण गुप्त द्वारा लिखित शोकगीत है "अंजलि और अर्घ्य" । राष्ट्रपिता के निधन से कवि के मन को जो आघात लगा उसने "अंजलि और अर्घ्य" में अभिव्यक्ति पायी है । इसका प्रकाशन सन् 1950 में हुआ ।

सच्चे गांधीवादी गुप्तजी के लिए गांधीजी की हत्या एक अप्रत्याशित धक्का सा लगी । इसके बारे में कवि स्वयं अपना अनुभव यों व्यक्त कर देते हैं "उन दिन कुछ ज्वर के कारण दिया जले में लेटा था । सहसा रेडियो का शब्द सुन कर उठ गया और जो कुछ सुना उससे "अरे राम" कहते कहते स्तब्ध हो गया । रात को कितनी बार उन दो शब्दों का उच्चारण मैं ने किया, मुझे स्मरण नहीं, परन्तु उनके अतिरिक्त कुछ कहने के लिए वाणी जैसे जड हो गई थी । फिर दिन पर दिन बीतते गये, मैं कुछ कर न सका ।"[1]

---

1. अंजलि और अर्घ्य - आमुख, पृ.3,4

"अंजलि और अर्घ्य" की सृजन-प्रेरणा के संबंध में आपका कथन है - "श्रद्धांजलि न देने में धर्म - हानि थी । उसी से बचाने का यह प्रयत्न है । इतना भी करना संभव न होता, यदि वर्तमान व्याधियाँ इसे न कर जा सकने की ग्लानिमयी आधि उत्पन्न न कर देती ।"[1]

गांधीजी की हत्या से कवि के मन की आत्मग्लानि तथा दैन्य का भाव प्रथम श्लोक में ही व्यक्त होता है ।

अरे राम ! कैसे हम झेलें
अपनी लज्जा उसका शोक ?
गया हमारे ही पापों से
अपना राष्ट्रपिता परलोक ।"[2]

शोकावेग से कवि कुछ देख या सुन न सके । दिन रात योंही ढलते रहे । कभी-कभी मन ग्लानि से भर रहा था कि जिसने अपूर्व काम किया उसकी कृतज्ञता हमने उसकी छाती को छेद कर दिखायी । खेद एवं विस्मय इस बात पर है कि एक हिन्दू ने यह घृणित कार्य किया है ।

कवि गांधीजी के महान गुणों का स्तवन करते हुए कहते हैं कि उन जैसे महामानवों का जन्म युग में एक बार ही होता है । उनमें प्रेम, अहिंसा, सत्य, दया, त्याग आदि कोमल भावनाओं का समावेश है । भारत माता की कोख से

---

1. अंजलि और अर्घ्य - आमुख, पृ.4
2. वही, पृ.7

इनका जन्म अंधकार को दूर कर उदित होनेवाले सूरज के समान हुआ । किन्तु उस तेज पुंज को हमने स्वयं बुझा दिया । वे पुण्यश्लोक चले गये । इस वियोग से दुःखी होकर धरती माता कराह रही है, अंतरिक्ष आहें भरता है । मनुज से ही मानवता हट चली गई ।

बापू की निष्ठुर हत्या करने से आपके हत्यारों को कोई विशेष लाभ नहीं हुआ । सोने के बदले उनके हाथ में मिट्टी भी नहीं आयी । सैकड़ों वर्षों की गुलामी के बाद स्वराज्य प्राप्त कर हमने क्या पाया है ? बापू भारत के ही नहीं विश्व के नायक है । उन्होंने असाध्य को साध्य कर दिया । गुलामी का दृढ बन्धन गांधीजी की आत्मशक्ति से ही टूटा है । वैसे हम आज़ाद हुए । किंतु अँग्रेज़ों ने लूटे हुए इस गेह को वासयोग्य बनाने का भारी कर्तव्य शेष रहता है । कला एवं कमला को मनाकर लाना चाहिए । भले ही राजनीति के क्षेत्र में हम ने स्वतंत्रता पाई फिर भी अनेक क्षेत्र ऐसे हैं जिन्हें सुधारने का भारी काम शेष रहता है । इस नाज़ुक अवसर पर आपका तिरोधान देश की बडी हानि एवं क्षति का कारण बना रहा । "हे बापू ! आप तो धीर भगीरथ जैसे यहाँ स्वतंत्रता की शुद्ध, शुभ्र धारा लाये । आपके ज़रिए देश की आज़ादी के साथ-साथ विश्वमानविकता की स्थापना तथा पाशविकता का विनाश होना है[1] ।"

गुप्तजी बापू के महान् व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि बचपन से ही उन्होंने सत्य-धर्म का पालन किया ।

---

1. अंजलि और अर्घ्य - मैथिलीशरण गुप्त, पृ. 14

भीति दोष से पिता से दंड मिले यह भय त्यज कर पिता के सामने अपनी समस्त भूलों को स्वीकार किया । पिता का दुःख एवं रोष दूर हुआ । पुत्र की सत्यनिष्ठा पर वे मुग्ध हुए, वे पुलकित हो उठे । अपनी पुण्यशीलता के कारण कस्तूरबा जैसी साध्वी नारी को पत्नी के रूप में उन्होंने पाया । यहाँ तक कि दूसरों के अपराधों को भी वे अपने ऊपर उठा लेते थे । विलोम परिस्थिति में भी धीरता से, सौम्य भाव से काम करते रहे । जो उन्हें भावुक समझते थे वे भी आपके भक्त हुए, विपक्षी भी आपके विश्वासी हुए । अपकारी और उपकारी - सबोंकी भलाई समान रूप से आप चाहते थे । एक संत जैसे आप सब से सौम्य भाव से व्यवहार करते रहे । सदा न्याय के पक्ष में रह स्वजन-परजन के भेदभाव के बिना कार्य निर्वाह करते रहे । इसकी याद कवि यों करते हैं -

"हे संत! शोषकों मे भी तू ने परिपोषक व्यवहार किया । गोरों का अपनी काली करनी मे आपने उद्धार किया ।"[1]

गुप्तजी गाँधीजी के अनोखे आत्मबल पर विस्मित हो उठते हैं । जिस प्रकार अपनी माता देवकी को कृष्ण ने जेल से मुक्त किया वैसे इस मन मोहन ने भारत माता को गुलामी से मुक्त कर दिया । बड़ी मर्मस्पर्शी बात यह थी कि शत्रु की गोली वक्षस्थल को चीर कर जब वे धराशायी हुए, तब भी हाथ जोड घातक की उन्होंने वन्दना की ।

---

1. अंजलि और अर्घ्य - मैथिलीशरण गुप्त, पृ. 18

हम बापू जैसे महामानव को अपनाने में योग्य नहीं रहे । अंधकार में ज्योति पुंज से आप आये । महान् लोगों को किसी देश-काल की सीमा में बाँध देना मूर्खता है । वे देश काल-वर्ण-वंश-गत सीमा के परे रहते हैं । संसार भर की सुख समृद्धि के वे हितैषी थे । अपने पुण्य का फल आपने सबों केलिए दे दिया । हमने पाप किया, उसका प्रायश्चित्त उन्होंने किया । श्रद्धा एवं बुद्धि आप में गंगा और यमुना सी मिली थी । किसी को भी आपने तंग न किया । आपकी कथनी और करनी एक थी ।

गुप्तजी गांधीजी की तुलना मनु, कृष्ण, ईसा आदि जगद्गुरुओं से करते हैं । उनके सारे गुण बापू में मौजूद थे । उनका पावन स्पर्श उन्हें हुआ है । मौन व्रती आप चिर मौन-व्रती हुए, फिर भी आपके प्राण बोल रहे हैं । आपका चरण-चिह्न हमारा पथ बन गया है । संसार अपने लिए जीता है तो आप संसार के लिए जिए हैं । मृत्यु को भी आपने नव-जीवन सा वरण किया है ।

काव्य के अंत में कवि यह सूचित करते हैं कि संसार में शांति फैलाने का एकमात्र उपाय अहिंसा को अपनाना है । अतः संसार के लिए आपका शुभ संदेश था -

"सत्य अहिंसा को अपनाओ
निर्भय हो जाओ सब देश"[1] ।

---

1. अंजलि और अर्घ्य, पृ.42

बापू सत्य और अहिंसा को ईश्वर-स्वरूप मानते थे। इनकी उपासना ही ईश्वर की आराधना है। निर्भयता ही सच्चे भक्त का सुनिश्चित लक्षण है। अब तो बनावटी निर्भयता और शांति फैली हुई है। प्राय: ऐसा देखा जाता है कि हाथ में विनाशकारी बम हो और मुख पर सुख शांति की मुस्कान। यह कभी नहीं हो सकता।

कर्मफल पर विश्वास रखते हुए गुप्तजी का कथन है कि अपने कर्मों का फल हमें भोगना पड़ता है। पिता तुल्य बापू की हत्या करके हमने जघन्य पाप किया है।

बापू एक बार यहाँ आने की कृपा करने की प्रार्थना करके कवि दिवंगत आत्मा से प्रश्न करते हैं कि "तेरे जन यहाँ नरक यातना सहते समय, हे बापू! स्वर्ग में तू किस प्रकार चैन से रह सकता है? भगवान् हमारे बापू को लौट देने की दया करें। उन्हें छोड कर हम नीच, कैसे क्षमाप्रार्थी हो जावें? बापू! आज सभी आशायें दृष्टिशून्य कर जाती हैं और मेरी आँखें आपको अंजलि और अर्घ्य देने को भर-भर आती हैं।"[1]

शोक की हार्दिक अभिव्यक्ति

इस शोककाव्य की केन्द्रवर्ती भावना बापू के अप्रत्याशित निष्ठुर हत्या से उद्भूत कवि की मानसिक पीडा है।

---

1. अंजलि और अर्घ्य, पृ.43

बापू के आदर्शों को वे अपनाते थे । उनसे निकट-से जानते भी थे । उनसे घनिष्ठ संबन्ध था । अतः उस महान व्यक्तित्व की महिमा के गायन के साथ भारतमाता के उस सुपुत्र की हानि समस्त जगत के नुकसान के रूप में कवि देखते हैं । यह असंभव जानकर भी कवि तीव्र आशा करते हैं कि बापू जैसे गुणी के स्वर्गवास से उत्पन्न अभाव की पूर्ति कम से कम गोलोकवासी बापू के एक बार भूलोक लौटने से मात्र हो सकें । हमने उनसे जघन्य अपराध किया इस पर कवि अतीव दुखी है । अतः कभी-कभी लज्जा तथा ग्लानि से वे चूर-चूर हो जाते हैं । गांधीजी की महान् सेवा से भारत की जो उन्नति हुई है इस से कवि पूर्णतः अवगत होते हैं । स्वराज्य की स्वाधीनता के लिए गांधीजी ने जो अथक प्रयत्न किया जितने कष्ट सहे, बदले में हमने हीन कार्य कर अपना और आपका अपमान किया । जंगली जानवर भी ऐसी क्रूरता करने से हिचकें । किंतु बाघ के अग्नि नेत्र, सिंह के तेज नख तथा सर्प के विषैले दांत के समान कठोरता और निष्ठुरता को अपने अन्तरंग में छिपाकर मानव-रूप धारण करनेवाला राक्षस ही ऐसे निकृष्ट कार्य कर सकता है । आखिर नीचता की भी हद होती है । अपना तन, मन प्राण बुद्धि आत्मा, धन - सर्वस्व - अपने शरीर के रक्त की अंतिम बूंद तक - हमारे लिए अर्पण करनेवाले बापू के प्राणरूपी रत्न का हरण कर हमने अपनी कृतघ्नता एवं नीचता का परिचय दिया । यही कवि के आहत दिल को बेचैन कर देता है । इसलिए ही हत्या का समाचार सुनते ही वे अवाक् - सुन्न से - रह गये । इस पाशविक, निष्ठुर करनी से कवि के कोमल चित्त पर कितनी गहरी चोट लगी हुई होगी इसका अनुमान हम कर सकते हैं ।

इस शोक काव्य के बारे में डॉ॰ जनार्दन पाण्डेय के शब्द इस संदर्भ में ध्यातव्य है - "महात्मा गांधी के प्रति अपनी पूज्य भावना के साथ इस काव्य में कवि ने बापू के महत्वपूर्ण कार्यों और आदर्शों का भी उल्लेख किया है । शोककाव्य की दृष्टि से यह अत्यन्त सफल काव्य है [1] ।"

महामानव की नित्यहरित स्मृति

इस शोक काव्य की रचना के बारे में गुप्त जी ने जो कुछ कहा उससे हम भारतीयों के लिए बापू कितने प्यारे एवं मूल्यवान थे इसका पता लग जाता है । कवि गांधीजी पर कितनी आस्था रखते थे, दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध कितना घनिष्ठ था गांधीजी का अप्रतिम व्यक्तित्व ने कवि को जितना प्रभावित किया यह हम समझ सकते हैं । गांधीजी ने कठोर से कठोर परिस्थितियों का सामना करके यह साबित किया कि भारत की सेवा ही उनका ध्येय था । अपने आराध्य के प्रति कवि की श्रद्धा भक्ति का प्रमाण दिवंगत आत्मा के गुणगान मे ही मिल जाता है । उनका आह्वान सुन पुरुष ही नहीं भोली स्त्रियाँ भी घर की चाहारदिवारी से बाहर आकर स्वतंत्रता के लिए लड़ने लगी -

"सुन तेरा मृदु कठिन मन्त्र उठ
जनता मानों पार गई,
और मुक्ति के अर्थ बद्ध हो
हँस हँस कारागार गई ।

---

1. मैथिलीशरण के काव्य में भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति - डॉ॰ जनार्दन पाण्डेय, पृ॰53

उबलाए भी तेरे बन से
बाहर आ आकर जूझीं,
कुछ न समझ कर भी वे अपनी
सन्त भक्ति समझी बूझी[1]।"

कवि ने केवल बापू के गुण-स्तवन ही नहीं उनके जीवन की मुख्य घटनाओं का उल्लेख भी आनुषंगिक रूप में इस शोककाव्य में किया है। इस ओर ध्यान देते हुए डॉ॰राजकिशोर पांडेय कहते हैं "कवि ने बापू के जीवन की प्रमुख घटनाओं का वर्णन करते हुए भारत की जनता पर उनके उपकारों का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है[2]।"

गुप्तजी स्मरण करते हैं कि जब भारत दासता की जंजीरों में जकड़ा हुआ था, विदेशियों का अत्याचार अपनी चरम सीमा पर था, जब कोई रास्ता सूझ नहीं रहा था, उस समय गांधी अंधकार में प्रकाश से आये[3]। लोहे को सोना बनाने वाले उस स्पर्शमणि को निर्दय नियति ने चुरा लिया।

"चुरा लिया हा! आज हमारा
प्यारा वह पारस किसने,
लोहे को सोना करने का
चमत्कार पाया जिसने[4]।"

---

1. अंजलि और अर्घ्य, पृ॰53
2. मैथिलीशरण गुप्त और तत्कालीन भारतीय साहित्यिक परिवेश - त्रिदिवसीय संगोष्ठी स्मरणिका - डॉ॰राजकिशोर पांडेय, पृ॰40
3. "कुछ न सूझते अँधियारे में उजियाला सा आया तू" । अंजलि और अर्घ्य, पृ॰38
4. वही, पृ॰36

कवि का यह नष्ट बोध कृत्रिम नहीं । हृदय के अन्तराल मे निसृत एक गांधीवादी कवि की मार्मिक पीडा की अभिव्यक्ति है ।

कवि गांधीजी के वियोग पर रोते हैं । एक अमूल्य "स्पर्शमणि" के नष्ट पर दुखी होते हैं । उनकी हत्या से कवि के लिए व्यक्ति गत हानि और देशगत हानि ही नहीं संपूर्ण संसार की यह हानि है । क्योंकि वे महामानव अपने लिए नहीं जगत के लिए जिए । विश्वमैत्री एवं विश्व का पथ प्रदर्शन ही उनका ध्येय था । विश्वमानव को पाशविकता से मुक्त करना भी उनका जिन्दा रहना आवश्यक था किंतु उस करुणाकर की करुणा का फल भोगते हुए कृतघ्न वधिक ने उन्हें गोली मे भून डाला । रह-रह कर इसकी ग्लानि तथा पश्चात्ताप कवि के दिल मे हटाने पर भी नहीं हटता । बापू के प्राण हमारे लिए कितने प्यारे थे, उनकी महान् सेवा कितनी त्यागोज्वल थी यह सोचते ही कवि बेहद भावविभोर बन जाते हैं । हत्यारे पर वे क्षुभित हो उठते हैं ।
म्लेच्छ भी कर गया मूर्तियुग / पुरुषोत्तम की मर्म मयी,
जानी जाती नहीं रूप से / जाति प्रकृति-गुण-कर्म मयी[1] ।"
उस नृशंस की दयाशून्य करनी इस प्रकार थी -

"अट्टहास कर वधिक, बुझाकर
हम असंख्यकों का दिग्-दीप[2] ।"

---

1. अंजलि और अर्घ्य, पृ.8
2. वही, पृ.8

भारतीय संस्कृति एवं परंपरा के गायक एवं अहिंसा के पुजारी कवि इस हृदय वेधी घटना से चूर-चूर हो जाते हैं। उनका दिल टूट जाता है। शोकावेग से अधिक देर स्तब्ध रहने के बाद उनका शोक श्लोकत्व को प्राप्त कर भारत एवं जगत् का उद्धार करने के लिए आए बापू की नित्य हरित स्मृति पर संतप्त दिल से अंजलि और अर्घ्य चढ़ाकर अपना कर्तव्य पूरा कर देते हैं।

शोकसंतप्त हृदय से निकलने वाले शब्द होने से इस शोककाव्य की भाषा सरल किंतु प्रभावमयी बन पड़ी है। पाठक के ही नहीं, वधिक के हृदय की कठोरता दूर करनेवाली अमोघ शक्ति इनकी भाषा में छिपी रहती है। इसकी प्रत्येक पंक्ति में वेदना की ज्वाला जलती रहती है, साथ ही ग्लानि, दैन्य, पश्चात्ताप विश्वमैत्री एवं मानविकता से परिपोषित राष्ट्रीय भावना की झलक भी मिलती है। डॉ. कमलाकांत पाठक इस शोककाव्य के बारे में कहते हैं " "राष्ट्रपिता के प्रति यह एक उत्कृष्ट तथा भावपूर्ण श्रद्धांजलि है, जिसमें बापू के जीवन वृत्त का आख्यान् ही नहीं किया गया, वरन् आलंबन का शोक विदग्ध गौरव गान गाया गया[1]।"

निष्कर्ष

गांधीजी के स्वर्गवास पर गुप्तजी द्वारा लिखित शोककाव्य है 'अंजलि और अर्घ्य'। गांधीजी हमारे नेता ही नहीं, महामानव भी थे। अपने इस छोटे सरल काव्य में गुप्तजी बापू के विराट व्यक्तित्व के प्रति अपनी श्रद्धा अर्पित करते हैं।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य - डॉ.कमलाकांत, पृ.558

बापू

हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के त्यागोज्वल जीवन की स्मृति पर श्री॰रामधारीसिंह दिनकर ने इस काव्य में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। गाँधीजी की आकस्मिक हत्या ने संपूर्ण भारतवासियों को दुःख में डाल दिया। कवि दिनकर के दिल पर इससे गहरी चोट लगी। देश के उस महान नेता के महाप्रयाण पर अपना दुःख व्यक्त करने के साथ-साथ, कवि का कथन है कि "यह विराट के चरणों में वामन का दिया हुआ कुछ उपहार है।"[1]

"बापू" चार खंडों में विभक्त लंबा काव्य है, जिसका प्रकाशन 1947 में हुआ था। बाद में 1948 में गाँधीजी के हत्याकांड पर कवि का तीव्र दुःख तथा बापू जी पर किए गए अत्याचार के प्रति कवि का क्षोभ आदि से रूपायित काव्यांश भी इसमें जोड दिया गया है।

---

1. बापू - रामधारी सिंह दिनकर, पृ॰33

जन-नायक गांधी जी के आदर्श-चरित्र के प्रभाव से कवि के मन में नये भावों और विचारों का जागरण हुआ। गांधी जी अहिंसा के पुजारी और प्रेम के दूत थे। "नोआखाली की यात्रा में बापू ने जिस अग्नि परीक्षा द्वारा अहिंसा को सर्वोपरि सिद्ध कर दी, उससे कवि का हृदय भी अहिंसा की ओर आकृष्ट हुआ साधन के रूप में कवि ने उसे स्वीकार किया।"

अत्याचारियों के बीच "मोहनदास" का धैर्य क्षमा, ममता, प्यार और करुणा देख दिनकर के अंगारे भी लजा उठे और उन्होंने "बापू" काव्य को पूजा के अर्घ्य के रूप में विराट के चरणों में वामन बन अर्पित किया।"[1]

विषयवस्तु संक्षेप

काव्य के प्रथम चौदह पदों में बापू की महानता का, उनके उदार चित्त के आराधक के रूप में कवि ने पूजा की है।

"संसार पूजता जिन्हें तिलक
रोली, फूलों के हारों से
मैं उन्हें पूजता आया हूँ
बापू! अब तक अंगारों से।"[2]

---

1. राष्ट्रकवि दिनकर और उनकी काव्य कला - डॉ. शेखरचन्द्र जैन, पृ. 75
2. 2. बापू - रामधारीसिंह दिनकर, भाग 1, पृ. 2।

उन शांति दूत की आराधना का भाव काव्य के अंत तक आते-आते कलियुग के कृष्ण के व्याकुल अवतार का स्वरूप स्वीकार करता है। क्योंकि वे राज्य की दीन-हीन स्थिति पर आँसू बहाते हैं। भगवान् कृष्ण भी धर्म-च्युति पर व्याकुल होकर धरती पर आए। भारत-माता रूपी द्रौपदी की लाज रखने के लिए हे बापू ! तुम भी कृष्ण के समान दौड आए। हे बापू ! तुम समयरूपी समुद्र के महानस्तंभ और आत्मा के आकाश में फहरानेवाले ऊँचे झण्डे हो। बापू तो मर्त्य और अमर्त्य, स्वर्ग और भूमि, अम्बर और अवनि के बीच महासेतु से शोभित थे। सब को एकता के सूत्र में बाँधने की क्षमता उनमें थी। कवि को लगता है कि बापू का विशाल तथा विस्मयजनक रूप अपनी कल्पना में नहीं समाया जाता। उनके गुणों का जितना वर्णन करें तो भी वह अत्यल्प ही रहेगा। उनके बारे में कहने को बहुत कुछ शेष रहेगा। बापू जी के महत्वपूर्ण एवं गरिमामयी व्यक्तित्व के सामने अपने को लघु मानते हैं।

"लज्जित मेरे अंगार, तिलक -
माला भी यदि ले आऊँ मैं,
किस- भांति उठूँ इतना ऊपर ?
मस्तक कैसे छू पाऊँ मैं ?"[1]

उस विराट-मानव की पूजा करने की तीव्र अभिलाषा होते हुए भी अपनी वामन की सी स्थिति पर कवि पछताते हैं -

---

1. बापू - भा.म.,पृ.33

"ग्रीवा तक हाथ न जा सकते,
उँगलियाँ न छू सकती ललाट,
वामन की पूजा किस प्रकार
पहुँचे तुम तक मानव-विराट् ।"[1]

सांप्रदायिकता की आग में अपने को आहुति देने जाने वाले बापू को भीषण परिस्थितियों में देख कवि उनकी रक्षा के लिए पुनः पुनः ईश्वर से प्रार्थना करते हैं ।

बापू की हत्या ने केवल कवि को नहीं, बल्कि समस्त विश्व के लिए शोक में डुबो दिया । "बापू" काव्य में संगृहीत "वज्रपात" "अघटन घटना" तथा "क्या समाधान" में क्रांति के कवि की, अहिंसा के उस अग्रदूत के प्रति अश्रुसिक्त श्रद्धांजलि है ।

प्रथम सौ पंक्तियों में एक भक्त की भांति कवि ने गद् गद् कंठ से अपने दुःख की अभिव्यक्ति की है ।

वज्रपात

गांधीजी का दारुण अंत्य समस्त संसार के लिए एक अशनिपात था ।

---

1. बापू - भा.म., पृ.33

पर्वत-सा भारी एक वज्रपात हम पर अचानक टूट पडा है । हम सब अपनी दुर्विधि पर रोयें । हमारी नौका जब नदी के ठीक मध्य में पहुँची तो अचानक पतवार हाथ से छूट गयी, जिससे हम अनाथ हो गये । हमारा भाग्य फूट गया; किंतु खेदभरी बात तो यह है कि हमारे कारण ही यह दुर्घटना घटी है । हम स्वयं छले गये । कम से कम इतना भी पूछने का अवसर न मिला कि बापू तुम क्यों हमें छोड चले गये । गांधी जी के हत्यारे को धिक्कारते हुए कवि का कथन है "हे पापी ! आखिर तुम ने यह क्या किया ? क्यों किया ? किस पर तुम ने यह वार किया ? यह वज्र तुमने कहाँ गिराया ? किसका निष्करुण हनन किया ? वह पापी, जिसने राष्ट्रपिता पर गोली चलाई, उसने यह कदापि नहीं सोचा था कि किस की छाती पर उसने गोली चला रहा है । यह दारुण दृश्य देख किसकी छाती न फट जाती ? इस घोर कृत्य से हमारा भाग्य फिर गया, भाग्य पर आग लग गयी है[1] ।

गांधीजी का चेतनहीन शरीर देख कवि कहते हैं कि यह तो मनुज की लाश नहीं, यह तो प्रत्येक मानव के भाग्य विधाता की चैतन्यहीन देह है । तपस्वी का यह शरीर है । वह अमृतदायिनी हँसी ओझल हो गयी । चालीस करोड लोगों से भरी नौका के वे पतवार थे । वह मूर्ति काल-यवनिका के पीछे छिप गयी । आगे उनके दर्शन एक बार भी कर न पाते । विश्वास ही नहीं होता कि अब बापू हमारे बीच नहीं ।

---

1. बापू - दिनकर, पृ.34-35

भूमंडल के अलंकार तथा दुखी मानवता का आधार दिवंगत हुए । जगत् से एक अलौकिक तेज:पुंज का तिरोधान हुआ ।

अलौकिक आभा मंडित उस पावन आत्मा के स्वर्गवास से यह भूतल निस्तेज हो गया । माता यशोदा को छोड़कर मोहन उससे सदा के लिए अलग हो गये । साकेत नगरी के राम निकल गये । वृन्दाबन के घनश्याम चले गये । निष्काम कर्मी गौतम बुद्ध का निष्क्रमण हुआ । प्यासे को अपने हृदय की लहू से उन्होंने तर्पण किया । गुलामी की बेड़ियों को तोड़कर माता को स्वतंत्र कर वह सुपुत्र मंच पर से निवृत्त हुए । वे देव, दानवों के अत्याचारों से हँसते हुए अहिंसा रूपी दैवी हथियार से लड़कर विजयी हुए । "स्वर्गादपि गरीयसी" भारत भूमि को छोड दे चले गए । इस धरती को अनाथ छोड दे न जाने कहाँ गायब हुए । अपने मूल्यवान प्राणों को अपनी माता के चरणों पर अर्पण कर करुणा की मूर्ति जो चालीस करोड अभागों की आशा, भुजबल तथा अभिमान थे वे अप्रत्यक्ष हुए ।

कवि बापूजी की अप्रत्याशित हत्या पर शोक प्रकट करते हुए उनके परलोक गमन की कल्पना करते हैं कि अपनी आँखों का तारा बापू अन्यदेश के लिए प्रस्थान करते समय भारत माता उनके प्रयाण को रोकने का प्रयास करने केलिए नगराज से वह ज़ोर से चिल्लाती है । देश की विभूति बापू से न जाने उनसे अनुरोध करती है । भारत माता नगराज से ज़ोर से कहती है कि उन चरणों को पकडो जिन्हें पकड हमें सौभाग्य मिला है,

उसके स्पर्श से हमारी जीवन-कली खिल उठी है ! अगर बापू चले जायेंगे तो हम अपनी दु:ख-गाथा किसे सुनाते ? अगर बापू लौट न आवें तो रो-रो कर हम दम तोडें अगर दुनिया हमारा कुशल पूछें तो हम क्या उत्तर देंगे ? सिर झुका कर सारी कठिनाइयाँ सहनी पड़ेंगी । अत: हे अनाथ के नाथ बापू ! आप लौट आइए । "हे दयानिकेतन ! शत-शत पापों को क्षमा करनेवाले हे देव, लौट आइये । हे दुखियों के प्राण ! निर्बल के बल ! वसुधा के अमृत निकेतन ! भारत के पवित्र गंगाजल ! लौट आइए । हे बापू ! हम तुम्हें मृत्यु का वरण नहीं करने देंगे । जीवन्मणि का इस तरह काल से हरण होने नहीं देंगे । आश्रय दाता! उन चरणों को एक बार छूने दो । उस छाती को पकड रोने दो जिसमें हमने गोली मारी है ! हे बापू ! हमारी करुणा की पुकार सुनो ! राम के समान इस संतप्त देश को आपके साथ लिए जाइये ।"[1]

अघटन घटना क्या समाधान !

सन् 1948 जनवरी 31 शाम को जो दुरंत हुआ उसका मर्मस्पर्शी विवरण कवि वर्णन करते हैं -

"उस दिन अभागिनी संध्या की गोद में देश के पिता, राष्ट्र के कर्णधार, जग के नर-सत्तम, भारत के महान् बापू

---

1. बापू - दिनकर, पृ.42-43

प्रार्थना मंच पर, इंद्रप्रस्थ के आंचल में गोली खाकर गिर गये ।"

उस भीकर दृश्य का वर्णन करने में जीभ सिहरती है, कलम मूर्च्छित हो जाती है, बापू का हत्यारा एक हिन्दू था । उस वक्त पर भी उनके मुँह से "हे राम "! ही निकला । उनके मुख पर शांति व्याप्त थी । मानों अदृश्य ईश्वर के चरणों पर अंतिम प्रार्थना कर रहे हैं, और जिसका अंत भी नहीं होता ।

गांधीजी की दारुण हत्या देख सहसा ब्रह्मांड कांप उठा, प्रकृति चीत्कार कर उठी । सृष्टि के उर की धड़कन एक घड़ी के लिए रुक गई, मानों तीन गोलियां उसकी छाती में लग गई हो । इस भयानक दृश्य को देख सूरज सहम गये, वे मूर्च्छित होकर अस्ताचल पर गिर गये । डरते-डरते चन्द्रमा भी क्षितिज पर से निकले, लेकिन जगत को देखने केलिए आँख न खोल पाया । अत: बादलों में छिप सहम कर रात भर चलने लगे ।

इन्द्रप्रस्थ की छाती पर अचानक एक बहुत बड़ा पर्वत आ गिरा । ऐसा लगा मानो कुम्भीपाक नरक धरती पर कूद पड़ा हो । शेषनाग भी कलमला उठा, दिल्ली डोलने लगी, सारा संसार भी अकुलाने लगा ।

---

1. बापू - दिनकर, पृ.45

आकाश कांपता हुआ पूछने लगा क्या हुआ है ? सागर भी अपने हज़ारों मुख से पूछ उठा, अम्बर ! यह क्या हो गया ? तब सिसकियां भर समीर बोल उठा कि बापू न रहे । एक उन्मत्त हिन्दू हत्यारे ने उन पर गोली मारी । यह सुन कर शोकाकुल हो कर अखिल लोक रो उठा । स्वर्ग अतीव संतप्त हुआ । कल्पतरु के पत्ते कुम्हला गये । हरि के सिंहासन की मणि निस्तेज हुई । अप्सराओं के नूपुर जो हमेशा मुखरित थे, अब मूक हो गये । देवलोक में सर्वत्र शोक छा गया ।

सहसा अतीत के गह्वर में कुहराम मच गया । विगत सदियां विवश होकर परस्पर पूछने लगीं कि क्या तुमने पहले कभी ऐसी क्रूरता देखी है ? ऐसा पातक, ऐसी हत्या, ऐसा कलंक ! वे सब मौन होकर सोचती रहीं कि अगर हिन्दू ही ऐसी क्रूरता दिखाने लगे तो धरती का भविष्य क्या होगा ? तब भारत का इतिहास भी व्यग्र हो कर कहने लगा अब तो छाती की आग बुझेगी नहीं । हमने अपने इतिहास के पन्नों पर अनेक मलिन कथाएं लिखी हैं, लेकिन आज जो हुआ उसे देख मैं थर-थर कांपता हूं । धरती का उज्वलतम चरित्र पल भर में मलिन हो जाता है । इसे अगर लिखूं तो राम और कृष्ण की कथाओं के पृष्ठों पर कलंक लग जाएगा । अगर नहीं लिखूं तो यह पाप तुम्हें छोड कर और किस के सिर पर मंडराएगा ? क्या तुमने कभी भी यह सोचा कि किसकी छाती पर गोली मारी है ? यह देखकर सारी सृष्टि कराह रही है, उनके वक्षस्थल से रुधिर टपकता रहता है । जो चोट प्रकृति को लगी है उससे विश्व के उर में गहरा घाव लगा है । मर्मभेदिनी पीडा के कारण सुर एवं नर दोनों छटपटा

रहे हैं। सब लोग विषादयुक्त विस्मय से परस्पर पूछने लगे कि यह क्या हो गया है ? दिशाएँ चकित होकर अपनी मूक भाषा में पूछने लगी कि यह क्या है ? पिछली प्रत्येक सदी तथा निकट-वर्ती भविष्य खिन्न होकर पूछने लगे यह क्या हो गया है ? अब इसका क्या समाधान है ?

बापू के पैरों तले लग कर काँटे भी कोमल हो कर मुड जाते थे और पत्थर भी इस पर ध्यान देता था कि बापू के चरणों पर लगकर छाले न पड जायें। उनको बादल भी छाया देते थे। उनके पास आते ही आँधी भी विनम्र हो कर समीर बन जाती थी। वसुधा भी अपने वक्षस्थल पर प्रिय पुत्र बापू के चलने फिरने से आनन्द में मग्न हो जाती थी उसका यह विचार था कि "मैं बड भागी हूँ, भगवान स्वयं देह धारण कर मेरे वक्षस्थल पर चलते हैं। पुण्य पुरुष के दर्शन से सभी लोगों का मन पवित्र हो जाता था, हम बापू के कालीन हैं, एक ही समय में हम जीते थे, यह स्मरण में आते ही हमारा आनंद उमड पडता है। सूर्य की वही किरण जो गाँधीजी को नहलाती है, जिस पवन से गाँधीजी साँस ले रहे हैं, वही पवन हमारा भी स्पर्श करता जाता है। विधाता धन्य है जिसने, गाँधी के युग में हमको जन्म दिया। कराल तलवार उनकी विनम्रता के आगे शर्म से अपना सिर झुका लेती है उनके सामने अंगारे भी बरफ हो जाते थे। हिंस्र सिंह भी पालतू हरिण जैसे पैर चाटने लगता है। एक बार की बात है कि एक साँप इधर-उधर सूँघ साँघ गाँधीजी की जाँघों पर आ बैठ कर शायद यह सोचकर कि यहाँ कोई ज़हर नहीं, फिर मैं क्यों इसे काटने का पाप कर नरक-कुंड में पड़ूँ ?

चुपचाप उतर चला गया। लेकिन उस निर्मल बापू की छाती पर हे हत्यारे! तुम ने साँपों से भी कराल बन कर अपनी पिस्तौल खाली कर दी? वे तो चन्द्रमा के समान शीतल तथा कमल के समान पवित्र एवं कोमल थे।

हत्यारे से कवि पूछते हैं कि उस समय जब तुम बापू को गोली से फूँक उठाते थे तब अपना हृदय ज़रा सी काँप न उठा? बापू को सामने देख तुम्हारी बंधी मुट्ठी न हिली? तुम लज्जा से न मर गये? इस हत्या का क्या समाधान आनेवाली पीढी को तुम दोगे? जब सदी पर सदी गरजती आएगी और ये ही सवाल दुहरायेंगी तो क्या उत्तर दोगे? अत: मैं अपने काले काले अक्षरों में यह लिखता हूँ और रात के मुँह पर पर्दा डालने का अधिकार किसी का नहीं है। इसलिए कुंभीपाक नरक के पीव-कुंड में कलम बोर कर मैं यह कठोर सत्य लिखता हूँ कि बापू का हत्यारा कोई क्रूर-हिन्दू था, वह कायर नृशंस, कुत्सित पामर तथा दानवों में भी अति घृणित दनुज था। मानव को वह पहचान न सका। वह ऐसा एक जघन्य भीकर जन्तु था। भेदभाव के बिना सब पर समान रूप से ठंढक बरसानेवाली चाँदनी को करुणा विह्वल छाती उस पापी ने फाड डाली। सब को शीतल छाया प्रदान करने वाले उस उदार तरु के धड पर ही उस निर्मम पापी ने कुठार चला दिया। शायद उस खल ने यह सोचा होगा कि क्यों निस्सीम जलद धरती पर झुककर बरसे? इससे अच्छा है पानी के लिए जग और हम तरस पडे। वारिद के पावन तूल-पुंज में उस पामर ने आग फूँक दी, जिसके फलस्वरूप जगत का दयामेघ तथा सुधापूरित तडाग जल गया। चाँदनी मर गयी,

पादप सूख गया, वर्षा समाप्त हुई । जग के समक्ष वधिक का काला मुख लेकर हिन्द देश खड़ा है । हे पापी ! सदियों तू इस प्रकार अपने सिर को झुकाकर खड़े रहे । हत्या का कुटिल दंश भोगे और वध की विष-भरी टीस भोगो । उपेक्षित खड़े रहो गरदन में वध का कफन डाल कर खड़े रहे । अपने मन की ग्लानि किसे कहे ? तेरा हाल कौन पूछेगा ? तुम यह देखते नहीं कि सूरज और चन्द्रमा तुमसे कतरा कर जाते हैं, तुम्हारी छाया से घबरा कर खग एवं मृग चौंक कर चलते हैं । जब सबसे मिलती जुलती सदियों पर सदियाँ आ जायेगी किन्तु सिर्फ तुम्हारे दर्शन से आँखें बचकर वे आगे बढ जायेंगी । जीवन-जुलूस से दूर खड़े होकर किसी से बातें करने केलिए तुम तरसोगे । अपने अन्दर की व्यथा सुनकर हमदर्दी प्रकट करने के लिए कोई नहीं होगा । वृद्ध निर्दोष पिता के हृदय में शूल फेंकने वाले उस जघन्य पापी से कौन बात करेगा ? तुम अभी समझ पाओगे कि वे ऐसे एक दयामय थे, जो पाप भूलकर पापी को अपने गले लगाते थे । अब वही देह टूट गिरी है । हे पापी ! अब भी होश में आओ । मिट्टी से लिपट कर रोओ और उन आश्रयदाता के पैरों को पकड़ो और रो-रो कर क्षमा मांगो । यह धरती पाप के भार से न फट जाय । आसिन्धु हिमाचल विकल तथा व्यग्र यह भूमि कहीं न उलट जाय ! इस पातकी देश पर ईश्वर की कोपाग्नि न बरस पड़े । पर्वत-कूट न धँस पड़ें । नदियों का जल न सूख जाय । पीड़ितों के प्रति प्रेम कहीं टल जाय ! वध से ग्रसित तुम्हारे अम्बर में सूर्य तथा चन्द्र का उदय न रुक जाय । पवन का बहना न रुक दें । उडुओं को विरक्ति न हो जाय । सस्य न सूखें, खेतों की उर्वरा शक्ति भारी न हो जाय । आकाश न गिरें, भूमि सागर में

डूब न जाय । एक दिन अचानक यह भाग्यहीन देश न जल उठे । यह धरती विदीर्ण हो सकती है ! आकाश धीरज छोड सकता है । बापू की हत्या के फलस्वरूप किसी भी दिन कुछ भी हो सकता है । अब रो-रो कर पितृशव का अभिषेक अश्रु से करना है । इन अगुणी कृतघ्न जन के एकमात्र आश्रय अब भी बापू ही है । वे करुणामय है, करुणा के प्राण हैं, अशरणों की शरण हैं, जग को अमृत देने के लिए उन्होंने स्वयं मृत्यु का वरण किया । हे पापी ! तुम जानते हो कि कौन इस संसार से सदा के लिए चला गया ? होश में आकर इन चरणों को पकडो, इनके बिना दूसरा कोई शरण नहीं, अन्यगति भी नहीं ।

काव्यविचार

बापू की स्मृति पर दूसरे कवियों ने भी अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है । किंतु दिनकर जी की यह श्रद्धांजलि ज्यादा मर्मस्पर्शी होने से अधिक लोकप्रिय बनी है । गांधी जी के व्यक्तित्व से कवि अत्यधिक प्रभावित हो गये हैं । डा॰ शेखरचन्द्र जैनकहते हैं बापू की रचना कुरुक्षेत्र के पश्चात् हुई है, जिसमें कवि के मानसिक विकास और स्थिर विचारों को स्थान मिला है । दिनकर पर यह आरोप लगाया जा सकता है कि वे परिस्थितिवश अपने विचार बदल लेते हैं, परंतु सत्य तो यह है कि कवि जब क्रांति की निस्सारता को देख चुके, बापू द्वारा चलाये जाने वाले आन्दोलनों से स्वतंत्रता की जगमगाती उषा के

आगमन की लाली उसे दिखाई देने लगी । वे बापू के प्रति आस्थावान् हो गये[1] ।"

कुरुक्षेत्र के तर्क वितर्क के बाद भीष्मपितामह जिस आदर्श को स्वीकार करते हैं, वही भाव दिनकर जी बापू में निहारते हैं । कुरुक्षेत्र में प्रकट कवि का हिंसा-अहिंसा का द्वंद्व बापू में समाप्त होकर अहिंसा को ही सार-रूप में स्वीकार करता दिखाई देता है । साम्प्रदायिकता की आग में अकेले कूद पड़नेवाले साहसी गांधी, कवि के लिए आराध्य हैं । कवि गांधीजी के इस आत्मबल पर मुग्ध हो उठे हैं । गांधीजी की साहसिकता देख कर देवजाति भी सांस रोक विस्मयविस्फारित नेत्रों से गांधी जी को देखने लगी । उनके पास तो श्रद्धा, विश्वास, क्षमा, ममता, सत्यता, स्नेह एवं करुणा का संबल था । इन्हें लेकर विक्षुब्ध सागर में वे अकेले नौका चलाने लगे । यह देख कवि भगवान से प्रार्थना करते हैं कि "हे भगवान् ! संभालो नौका की पतवार तुम्हारे हाथ में है[2] ।"

बापू की हत्या से कवि का मन ग्लानि नैराश्य एवं पीड़ा से भर जाता है ।

---

1. राष्ट्रीय कवि दिनकर और उनकी काव्य कला - डॉ॰ शेखरचन्द्र जैन, पृ॰75
2. बापू - दिनकर, पृ॰29

"कांपा न हृदय, सहमे न प्राण,
सामने देखकर भी बापू को
हाय ! बंधी मुट्ठी न हिली;
या जब वे गिरने लगे हाय !
तुम लज्जा से मर भी न गये ।"[1]

क्यों बापू पर गोलियाँ लगी ? आनेवाली पीढी के इस प्रश्न का सही उत्तर दे न सकें ।

"क्या मुख ले आगे बढ़ूं ?
सदी पर सदी गरजती आयेगी;
क्या होगा मेरा हाल
सही उत्तर न अगर वह पायेगी[2] ।"

गांधीजी के हत्यारे को चुने हुए शब्दों से कवि फटकारते हैं "वह पापी, कायर, नृशंस, कुत्सित पामर दनुजों में भी अति घृणित दनुज है । ऐसे जघन्य विकराल की पहचान मनुज न कर पाये[3] ।"

---

1. बापू - दिनकर, पृ.54
2. वही,
3. वही, पृ.55

सब पर भेद भाव के बिना ठंढक बरसानेवाली चाँदनी की करुणा-विह्वल छाती को उसी पापी ने छेड दिया। उस खल को इस जघन्य पाप के कारण कुम्भीपाक नरक में भी जगह न मिलेगी। खग मृग भी उस पापी की छाया से डर कर चलेंगे। निर्दोष बूढे पिता की हत्या करनेवाले उस नराधम से कोई भी बात न करें। किंतु इस जघन्य पापी को अपनानेवाले एक ऐसे दयामय है, जो हमारे बापू के अलावा और कौन हो सकता है?

"हाँ, एक दयमय था ऐसा
जो सब को गले लगाता था;
पातक पर दे पद-धूलि
पापियों को बढ कर अपनाता था[1]।"

अत: बापू के हत्यारे से कवि कहते हैं कि तुम जाके बापू के चरणों को पकड कर माफी माँगो। तेरे लिए इसे बिना और कोई चारा नहीं। उन चरणों को पकडो[2]।"

कवि इस पर अपनी शंका व्यक्त करते हैं कि शायद इस घोर अन्याय से संसार का सर्वनाश होगा। सर्वत्र उथल-पुथल हो

---

1. बापू - दिनकर, पृ.57
2. वही, पृ.58

जायगा । इसलिए बापू से माफी मांगने के अलावा दूसरा उपाय ही नहीं ।[1]

"रो-रो कर मांगो क्षमा,
त्राहि ! धरती न पाप से फट जाये,
आसेतु-हिमालय विकल-व्यग्र
यह भूमि न कहीं उलट जाये ।"

भूकंप, अतिवृष्टि, अनावृष्टि अकाल आदि विपत्तियाँ इस हत्या के दंड के रूप में आकर देश को पीड़ित करने की संभावना है । ईश्वर के कोप से छूट जाने का एकमात्र उपाय पाप का प्रायश्चित्त करना है ।

दिनकर ने भी गांधीजी के आदर्शों को अपनाने के लिए देरी की । बाद वे पछताते हुए आशा की कि "काश ! मैं ने इस स्वर्गिक शीतलता की आराधना पहले ही की होगी ।"[2] बापू के जीवार्पण पर कवि का तीव्र दुःख इस प्रकार अभिव्यक्त हुआ है कि "तरी भँवर के बीच आते ही पतवार हाथ से छूट गई; हम अनाथ हुए, हमारी किस्मत फूट गई है हाय ! मुझे रोने दो ।"[3]

---

1. बापू - दिनकर, पृ.58
2. दिनकर और उनकी काव्य कृतियाँ - प्रो.कपिल, पृ.176
3. बापू - दिनकर, पृ.35

दिनकर कहते हैं, "बापू के वियोग से उत्पन्न व्यथा की स्निग्ध लता पर कल्पना-लोक के देवपक्षी अभी चहचहाते रहते हैं। चन्द्रमा भी धरती की ओर पूर्णतः आँखें खोलकर नहीं देखता है। धन में छिप कर रात भर वह सहम कर चलता रहा है[1]।"

इस लघु काव्य की भाषा अतीव मार्मिक है, कहीं-कहीं शोकार्त अश्रु के प्रवाह है तो कहीं दार्शनिकता का पुट भी देखने को मिलता है।

"है प्रेम-लोक का नियम, सहन कर
जो बीते, कुछ बोल नहीं[2]।"

दिनकर की कविता हृदयप्रधान कविता कही जाती है। बापू की पंक्तियाँ हमारे हृदय को चकित करके कंपा डालने के लिए यथेष्ट है।

निष्कर्ष

गाँधीजी का महाबलिदान दिनकर के लिए मानो एक वज्रपात था। आपने दिल की व्यथा को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। गाँधी जी के उस त्यागपूर्ण जीवन की स्मृति पर दिनकर जी अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

****

---

1. बापू - दिनकर, पृ.47
2. वही, पृ.16

कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति

यह पंतजी का लिखा हुआ शोकगीत है । इसमें कवीन्द्र रवींद्र के प्रति अपना श्रद्धा भाव तथा उनके निधन पर अपना शोक व्यक्त किया है । विश्वकवि टैगोर के प्रति पंत जी का आदर अपरिमित रहा है । प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पंत जी पर उनका गहरा प्रभाव पड़ा है । पंत जी अपने को टैगोर के शिष्य मानते थे । अपने गुरु के स्वर्गारोहण के दिन कवि अश्रुसिक्त नयनों से और शोक संतप्त हृदय से अपने गुरु की पुण्यस्मृति पर श्रद्धांजलि अर्पित कर देते हैं ।

प्रतिपाद्य

पंतजी ने विश्वमानवता के प्रतिनिधि के रूपमें आये हुए टैगोर के प्रति अपनी अपार श्रद्धा प्रकट करते हुए विनयान्वित होकर कहा है कि आप शिष्य की श्रद्धांजलि स्वीकार कर दें । फिर शंकित होकर पूछते हैं, "जीवन के रणक्षेत्र में खड़े होकर अपने गुरुदेव के चरणों पर क्या श्रद्धांजलि वे अर्पण कर दें ?

अपने गुरु की स्थापित चेतना और मानवता की क्षति हुई है । आत्म तेज खोकर, ध्वंसात्मक-वृत्तियों के लिए कटि-बद्ध होकर शांतिहीन संसार के सत्ताधारी राष्ट्र दलबन्दी में पड़कर तीसरे महायुद्ध की तैयारी करते दीखते हैं । अणुबल से गरलवृष्टि कर वसुन्धरा का सर्वनाश करने के लिए वे उद्यत हो जाते हैं । भौतिकता, लोहे के अपने निर्मम चरण बढ़ा कर मानवात्मा को पैरों तले रौंद कर विजय की घोषणा कर रही है । मानव के जीवन में बड़ी कुंठा है, मन में बड़ी वितृष्णा है । फिर भी कवि के हृदय-कमल में अपने गुरु के प्रति स्मृति के मकरंद का अक्षय कोष वर्तमान है ।

गुरुदेव विश्व-मानविकता का स्वप्न देखते थे किंतु वह स्वप्न ही रहा । देश-काल वर्ग वंश रहित उस अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के बदले स्वार्थ के जड़ कंकालों से भरा आज मर्दित है । जनता के बीच वर्ग की श्रेणी बना के, दीवारों से विभक्त कर राष्ट्रों के कटु स्वार्थ, मानवता को बंदी बना कर अंधरूढ़ियों की कारा में डाल दिया है । परिणाम यह हुआ कि ब्रह्मरूप मानव अपना आत्मतेज खोकर सौंदर्य, प्रेम, आनंद जैसे आंतरिक वैभव खोकर श्रीहीन हो गया है । यही नहीं उसकी सृजन चेतना निष्क्रिय होकर पंगु पड़ी है । धरती अपने स्वर्णिम पंख फैला कर स्वर्ग को छू नहीं पाती । भारतीय जीवन-दर्शन के आधार भूत तत्व सत्यं-शिवं-सुन्दरम् के उन्नत शिखर से मानव आज पृथ्वी पर गिर गया है । आत्मार्क चैतन्य से उद्भूत प्रकाश आज उसके मुख पर नहीं दिखाई पड़ता है । यह धरती यथार्थ आंतरिक आनंद से बहुत दूर है ।

आशावादी कवि पंत इस अंधकार में भी आशा की किरण दिखाई पड़ती है । युगों की दासता की लौह श्रृंखला टूट गयी और भारत स्वतंत्र हो गया । नैराश्य, दैन्य और पीडन आदि हे गुरुदेव, आपके मन्द गंभीर स्वर के वज्र प्रहार से छिन्न भिन्न हुए । जनता में आपने नव जागृति भर दी । बापू अपने शोणित से जीवन के युग प्रभात को रंगायित कर काल की यवनिका के पीछे ओझल हो गये हैं, और हम मुक्त हुए ।[1] बापू टैगोर को "गुरुदेव" कहते थे । उन दोनों के बीच इस प्रकार का घनिष्ठ संबन्ध था, यदि रवीन्द्र रूप-मांस के थे तो वे दृढ आत्म-पंजर थे । शांतिनिकेतन की रीढ की हड्डी थे गुरुदेव । काव्यानन्द का सुधारस आपने सब को पिलाया । यदि आप सुन्दर स्वप्निल जगत् में सब को ले गये तो बापू ने अपने कर्मों द्वारा जनता की भलाई की । किन्तु आज वे दोनों सारथि अन्तर्धान हुए ।

यद्यपि भारत राजनीतिक तौर पर आज़ाद हुआ तो भी भारत की आत्मा अभी मुक्त न हो पाई । मध्ययुगीन विकृतियाँ अब भी सिर उठा रही है, और स्वतंत्र भारत को दुर्बल और क्षीण कर रही है । आज़ादी के पहले एक ही लक्ष्य पर दृष्टि रख कर सब काम करते थे । लेकिन जब लक्ष्य सिद्धि हुई तब जनता भिन्न मतों, दलों और व्यूहों में बंट कर देश को निर्बल, निर्वीर्य एवं निस्तेज बना रही है । अब घृणित सांप्रदायिकता की बर्बरता में देश पीड़ित हो रहा है । पुण्यप्रसविनी इस आर्षभूमि में लहू की नदियाँ बह रही है । जन के मुख पर मानव होने का

---

1. स्वर्णिम रथ चक्र - कवींद्र रवींद्र के प्रति - सुमित्रानंदन पंत, पृ. 162

वह गौरव नहीं झलकता । उनका मन स्वार्थों से संकुचित होकर अवरुद्ध हो गया है । वे आत्मत्याग नहीं कर पाते हैं, वे अब भी एक महान्-राष्ट्र के लिए योग्य धीर, दृढ, प्रबुद्ध, निर्भीक नागरिक नहीं बन पाये ।

कवि आगे भारत की अति शोचनीय स्थिति का वर्णन कर रवींद्र की आत्मा को दुखाना नहीं चाहते । ये सब सुना कर कवींद्र के विषण्ण मुख वे देखना नहीं चाहते । पर भारत की दु:स्थिति देख कवि का मन दुखी हुआ, अनजाने ही अपनी वाणी में यह दु:ख फूट निकला । अगर भारत सच्चे अर्थ में सब भाँति स्वतंत्र हो चुका तो आज निश्चय ही भारत की भौतिक परवशता छूट जाएगी और उसके प्राण चैतन्य धन्य हो जाएंगे । फिर भी अवश्य बडा परिवर्तन आ गया । पहले जहाँ पशुबल अपने ज़ोरों पर था वह मिट गया । घृणा और द्वेष की निम्नवृत्तियाँ शांत हो गई । कटु स्पर्धा और अधिकार-लिप्सा मंद पड गई । जीवन की आशाएं आकांक्षाएं जाग उठी और इनमें कुछ संतुलन भी दिखाई पडा । पराधीनता का तमोमय मुख अब आज़ादी के प्रकाश से दीप्त होने लगा । संसार भर में भारत की विजय की यह निशानी है । इस स्वर्णिम धरा की अमर चेतना धन्य हुई । दीर्घकाल के उसकी तप-साधना सफल हुई । अज्ञान, भ्रम, हिंसा के पाशविक स्थान पर सत्य अहिंसा तथा विश्वास की विजय हुई । पंत जी आशा करते हैं कि निश्चय ही मानव का भविष्य उज्वल हो जाएगा । निश्चय ही जग का मंगल होगा और जन-मानस निडर हो जाएगा ।

कवि भावना में दिवंगत अपने गुरूदेव की आत्मा स्वर्ग के नन्दनवन में विचरण करते देखते हैं । मानव होने पर भी देवों से भी सुभग अपने गुरू यश-शरीरी होकर अतीन्द्रिय लोक में सैर करते होंगे । वहाँ की फुलवारी के पारिजात, मंदार आदि फूलों की सुगंधी का आस्वादन कर आपके प्राणों में नित्य-नव-नव भावनाएं जाग उठेंगी । उस नंदन वन के जहाँ नित्य वसंत रहा हो - रंग बिरंगी फूलों से मधु पी-पी कर मस्ती में मधुप वृंद गुंजन करते होंगे । शायद आप किसी कल्पद्रुम के घनी, शीतल छाया में ध्यान निमिग्न रहे होंगे । पास से होकर सुर-सरिता कल-कल रव से बहती होगी जिसका मधुर निनाद सुन देवजाति आनन्द नृत्य करती होगी । आप तो दिव्य उन्मेष से प्रभावित होकर कोई नये साहित्य-सृजन करते होंगे । चारों ओर के आनन्द कोलाहल से आप अछूते रहे होंगे । सुरसुन्दरियाँ लास्य नृत्य करती हुई आपके पास आती होंगी । ध्यानिस्थ आप शायद उस अलौकिक कोमलता की ओर आकृष्ट नहीं होंगे इस उपेक्षाभाव से वे दुखी और ईर्ष्याकुल होंगी तो आप अर्धनिमीलित नयनों से एक पल उनको निर्निमेष देखेंगे । उनके अनन्त यौवन की शोभा देख आप विस्मित रहे होंगे । उन आनन्दपूर्ण निमिषों का वर्णन करके कवि का कथन है कि गुरूदेव ऐहिक जीवन के रसोल्लास तथा आनन्द कलियों के प्रति हमेशा जागरूक रहे । एकरसता के कारण वहाँ के उन्मिषित वातावरण से आप ऊबते होंगे । अब आपके मन में यह आशा पैदा हुई होगी कि अमरों के उस अनाद्यन्त आनन्दलोक से निकल कर फिर एक बार भूलोक में विचरण करें । इस धरती के हृदयस्पंदन सुनने के मोह में वे वहाँ की दिव्य वीणा लेकर आवेंगे और सुख-दुःख संकलित भूजीवन के गीत गाकर सहृदयों की हृत्तंत्रियों में कंपन पैदा करेंगे ।

उनमें जीवन के प्रति आशा बनाये रखने के लिए इस नर-जीवन के रोदन को संगीत में परिवर्तित करेंगे ।

विश्वकवि के जन्मोद्देश्य पर कवि का विचार है कि इस धरती के भेदन को संगीत में बदलने केलिए आप यहाँ पधारे । भारतीय जीवन की सूखी सिराओं में अपनी स्वर-राग सुधा का संचरण कर दिया । जागरण के दिव्य स्रोत में आपने प्रत्येक भारतीय को निमज्जित कर दिया । आपकी विराट प्रतिभा की अद्भुत शक्ति से स्वर्ग और भूमि के बीच एक सेतुबन्धन का निर्माण करके यहाँ के शापित-तापित मनुजों को सुरलोक के दिव्य दर्शन करायेंगी ।

इस पुनरुद्दान युग में युग द्रष्टा बन कर आप आए थे । जन गायक बन कर देश-काल वर्ग-वर्ण-वंश की सीमाओं का उल्लंघन कर इस धरती के अवसाद से भरे जन सहस्रों को उद्बोधन का गान तथा जागरण का मंत्र और मनोबल प्रदान करने के लिए आप आए थे । गुरुदेव ने उपनिषदों का रस निचोड कर उसमे जनगणमन के अतल गुहा से उनकी चैतन्य शक्ति को बाहर लाकर नव जागृति के आलोक से उसे भर दिया ।

पंत जी भारत को विधुर देश कह कर उसके दुःख को दूर करने के लिए यहाँ दुबारा आने के लिए अपने गुरुदेव को निमंत्रण देते हैं । उनका विश्वास है कि गुरुदेव अपनी अमर

निरत में इस धरती को आश्वासन देंगी । वाणी के उस वरद पुत्र के आने की प्रत्याशा लोग इसलिए करते हैं कि वे अपने दिव्य स्वरों से मृत्यु-ग्रस्त मानवों को जीवन प्रदान कर देंगी । वे चाहते हैं कि मध्ययुग के वासनापूर्ण प्रपंचजाल में भारतीय जनता फंस जायें, भारत के मलिन मुख पर नैतिकता तथा मानवीयता की उज्ज्वल कांति झलक जाएं । गुरुदेव के आदर्शों की शीतल छाया में बैठ कर गुरुदेव के अमृत स्पर्श से जन जीवन को नव-जीवन प्रदान करें । अतः हे कवि देव ! जीवन रूपी वसन्त का अभिनव पिक बन कर एक बार और आप इस धरती को सांस्कृतिक नवोदय की अरुण किरणों से आलोकित कर दें ।

कवि भारतमाता के तेजोमय मुख मंडल की कल्पना करते हैं, वे भावना में देखते हैं कि उसकी आत्मा में आदित्य-प्रभा दिखाई पड़ती है । उसके अन्तरतम के ज्योतिर्मय सहस्रदल पर अविनाशी प्रभु खड़े हैं । आत्मसंयम और तप के शुभ्र नीहार जड़ित भारत के चेतना-श्री पर सृजन-हर्ष की विस्मृति में परम-पुरुष नृत्य कर रहे हैं । उनसे निरन्तर सत्यं शिवं और सुन्दरम् की पीयूष वर्षा होती है ।

धरती के घोर यथार्थ पर कवि दृष्टि डालते हैं । धरा के मनो के इस तमस क्षेत्र में आज जीवन तृष्णा, प्राण क्षुधा और मनोदाह से क्षुब्ध, दग्ध और जर्जर कोटि-कोटि जनता चीत्कार कर रही है । अज्ञान के अंध कूप में रहे ये निरीह प्राणी घृणा, द्वेष और स्पर्धा से पीड़ित जंगली जानवर जैसे रहते हैं ।

भौतिकता में जकड कर, विज्ञान की अपरिमेय शक्ति में भ्रमित होकर, आत्मज्ञान को खोकर अंतःचक्षु विहीन मानव जाति अपने उदर की देवी गुणों के वैभव से अनभिज्ञ रहती है। मानव आज आत्मघाती बन गया है। नाना प्रकार के रासायनिक चमत्कारों से वह मनुष्य वर्ग की हत्या का षड्यंत्र रच रहा है। बुद्धि एवं तर्क से नियंत्रित यांत्रिकता के पीछे लगकर मानव के आन्तरिक जगत् के अतीन्द्रिय संगठन का नाश हो गया है। आज सत्य, श्रद्धा, विश्वास प्रेम संयम आदि मानवीय आदर्शों का लोप हो गया है। ऐसी स्थिति में मरणोन्मुख विश्व का त्राण गुरुदेव टैगोर ही कर सकते हैं। इस मलिन वातावरण से मानवराशि का उद्धार करने के लिए, उन्हें जीने की प्रेरणा प्रदान करने के लिए उनमें शांति और तृप्ति भरने के लिए, संसार को सच्चा नेतृत्व प्रदान करने के लिए भारत सुयोग्य हो जाने के लिए हे गुरुदेव आप आशीर्वाद दे दें।[1]"

शोक का व्यापक प्रसार

पंतजी की यह श्रद्धांजलि परक शोकगीत आद्यन्त विचार-प्रधान है। भारत के भूत भविष्य और वर्तमान पर कवि गंभीर चिंतन करते हैं। गांधीजी, अरविन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे महापुरुषों के प्रति पंतजी के मन में अतीव श्रद्धा और भक्ति थीं। प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से उनका प्रभाव पंत जी पर पड़ा है। टैगोर को वे अपने गुरु मानते थे। कवीन्द्र रवीन्द्र के सौन्दर्य

---

1. कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति - स्वर्णिम रथ-चक्र - सुमित्रानंदन पंत, पृ.160-168

दर्शन ने ही कवि को अत्यन्त आकर्षित किया था कवि इनके प्रति ऋणी हैं। रवीन्द्र बाबू के प्रति आपने लिखा है "डा॰टैगोर के जीवन-मान भारतीय दर्शन के साथ ही मानव-शास्त्र (एंथ्रोपालजी) विश्ववाद और अन्तर्राष्ट्रीयता के सिद्धांतों से प्रभावित हुए हैं। उनके युग का प्रयत्न भिन्न-भिन्न देशों और जातियों की संस्कृतियों के मौलिक सार-भाग से मानव जाति के लिए विश्व-संस्कृति का पुनर्निर्माण करने की ओर रहा है।[1]"

गुण-स्तवन

टैगोर जैसे महान्पुरुष समाज की एवं समस्त विश्व की पूंजी है; पंत जी की राय में टैगोर के जन्म का उद्देश्य ही भारत एवं अन्य देशों को नव-जीवन प्रदान करना था। कवि की निम्नलिखित पंक्तियां इस प्रस्ताव का समर्थन करते हैं -

"आए थे भू रोदन को संगीत बनाने
श्लक्ष्ण मधुर-स्वर श्रुतियों के शत आवर्तों से
भावों के छाया पुलिनों को स्वप्न ध्वनित कर।
आए थे तुम जीवन शोभा के शिल्पी बन,
मानव उर की आशाओं, अभिलाषाओं को
सूक्ष्म स्वरों में पुनः उर्ध्वमुख झंकृत करने।[2]"

---

1. आधुनिक कवि - पर्यालोचन, पृ॰20
2. स्वर्णिम रथचक्र - कविन्द्र रवीन्द्र के प्रति - सुमित्रानंदन पंत, पृ॰165

ऐसे प्रत्याशा-प्रदायक कवि का चिरवियोग देश की बड़ी क्षति एवं हानि है। वाग्देवी के उस वरद्-पुत्र को, इस धरती की मृत्यु को अपने अमर स्वरों में जगा कर विश्व की मृत प्राय चेतना में नया चैतन्य भरने के लिए और एक बार यहाँ आने का निमंत्रण कवि देते हैं -

एक बार फिर आओ, कवि इस विधुर देश को
अपनी अमर गिरा से नव आश्वासन देने।
आज और भी लोक प्रतीक्षा यहाँ आप की
वाणी के वर पुत्र, धरा की महा मृत्यु को
अमर स्वरों से जगा, विश्व को दो जीवन-वर।[1]

भारत के महिमामय अतीत के, उस सुवर्ण काल के नष्ट पर कवि दुखी है। हमारे पूर्वजों की वीरता की पुलकोद्गमकारी कहानियों का आवर्तन नहीं होता। उनके बल एवं तेज वर्तमान पीढ़ी में लुप्तप्राय है। बदले में आज सांप्रदायिकता क्रूरता एवं स्वार्थता ने अपना घर कर लिया है।

देश की शोचनीय स्थिति कवि से सही नहीं जाती। देश का उद्धार तभी संभव है जब गुरुदेव दुबारा यहाँ आवेंगे। जहाँ ऋषि-मुनियों का तपोवन तथा उनकी परम पवित्र कुटी रहती थी, वहाँ आज सांप्रदायिकता के दंगों से लहू की नदियाँ बहती हैं। यह तो कर्मभूमि एवं त्यागभूमि मानी जाती थी।

---

1. स्वर्णिम रथचक्र - कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति - सुमित्रानंदन पंत, पृ. 166

वहाँ भूमि अब स्वार्थ मोह से भर-पूर हो कर निर्जीव निस्तेज, दुर्बल और बेचैन पड़ी है । मानव होने का वह गौरव भाव जनता के मुख पर नहीं झलकता है यही नहीं,

"रुद्ध हृदय है उनका, मन स्वार्थों में सीमित;
आत्म त्याग से हीन, अभी वे नहीं बन सके
महाराष्ट्र के उपादान-गंभीर, धीर, दृढ,
युग प्रबुद्ध, निर्भीक वज्र संयुक्त परस्पर ।"[1]

इस शापित-तापित स्थिति मे मानव-राशि का उद्धार-तभी संभव है कि कवीन्द्र जीवन वसंत के अभिनव पिक बन कर यहाँ शांति का संदेश दे देंगे ।

अन्य शोक-काव्यों की भांति पंत जी तत्वचिंतन का सहारा लेकर अपने शोक को कम करने का प्रयास नहीं करते हैं । इसका एक कारण यह है कि वैयक्तिक मैत्री की अपेक्षा विश्व-कवि एवं राष्ट्र के महान् विभूति के रूप में ही टैगोर से कवि नाता जोड़ते हैं । "पारस्परिक संबंध व्यक्ति की सीमा से विस्तृत होकर जितने व्यापक और समाजगत होते-जाते हैं, उतनी ही उनमें ममत्व और अन्तरंग भाव की न्यूनता होती जाती है । इनमें जो व्यक्ति आत्मीय मित्रों की परिधि में आते भी थे, उनका सामाजिक महत्व असंदिग्ध था, अत: कवि ने व्यक्तिगत शोक संताप का विस्तार समाज तक कर लिया है, परिणामत: वह उनके महत्वपूर्ण कार्यों का वर्णन कर श्रद्धार्पण करने लगा है[2] ।"

1· स्वर्णिम रथ-चक्र - पंत, पृ·162

2· आधुनिक हिन्दी काव्य रूप और संरचना - निर्मला जैन, पृ·462

कवि-भावना भूलोक और देवलोक में विचरण करती हुई दिवंगत आत्मा के चारों ओर मंडराती रहती है। अंत में कवि उनसे भारत की भलाई का अनुग्रह मांगते हैं। युग-प्रबुद्ध वह धीर, गंभीर, दृढ, निर्भीक, उन्मेषदायिनी वाणी विश्वभर में प्रतिध्वनित होती रहती है। उस विश्व कवि एवं विश्वमानव की स्मृति पर कवि अपनी श्रद्धांजलि अर्पण कर देते हैं।

निष्कर्ष

प्रत्यक्ष या परोक्षरूप में टैगोर जैसे महापुरुषों से कवि पंतजी प्रभावित हुए है। कवींद्र रवींद्र के प्रति आपका आभार अपरिमित है। टैगोर के निधन से उत्पन्न देश गत हानि पर उद्गत हो कर उनकी अनन्य, आश्चर्य जनक प्रतिभा की स्तुति कर राज्य की संस्कृति उन्नति के लिए टैगोर का यहां दुबारा जन्म लेना अति आवश्यक मानते हुए उसकी पुण्य स्मृति पर श्रद्धांजलि अर्पण कर देते हैं।

****

चौथा अध्याय

मलयालम शोककाव्य   एक सर्वेक्षण

चौथा अध्याय

मलयालम शोक काव्य एक सर्वेक्षण

आधुनिक मलयालम काव्य की सबसे बड़ी उपलब्धि स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा है । 20 वीं सदी के आरंभ में अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध शोकगीतों का अनुकरण करके मलयालम में अनेक शोककाव्यों की रचना हुई । लेकिन उसके पहले भी प्राचीन कृतियों में अनेक करुणाकलित और आत्माभिव्यक्तिपरक उक्तियाँ दिखाई पड़ती है । इसका श्री· गणेश प्राचीन पाट्टुसाहित्य तथा लोकगीतों में हुआ है । पुरातन पाट्टुकृति "रामचरितम्" में ताराविलाप, मंदोदरी विलाप, सीताविरही राम का विलाप जैसे यथेष्ट शोकप्रसंग मिलते हैं । लोकगीतों में "वटक्कनपाट्टु" और "तेक्कनपाट्टु" दोनों में इरविक्कुट्टिपिल्ले, आरोमल चेकर जैसे वीरनायकों की मृत्यु पर पाठकों की हृत्तंत्रियों में कंपन पैदा करनेवाले शोकगीत गाये गये । एषुत्तच्चन के "आध्यात्मरामायणम्" और "महाभारतम्" तथा निरणम् कवि के "कण्णशरामायणम्" आदि में करुण प्रसंग देखे जाते हैं । "महाभारतम्" के गान्धारी विलाप, उत्तरविलाप आदि मशहूर हैं । रामायण के सीता-राम-लक्ष्मण के वनवास गमन सीताहरण के बाद राम के करुण उद्गार आदि शोकात्मक एवं करुण प्रसंग है ।

प्रारंभिक स्वच्छन्दतावादी शोककाव्यकार

शोककाव्य परंपरा का प्रथम अंकुर महाकवि के·सी· केशवपिल्लै (1895) के "आसन्नमरण चिन्ताशतकम्" के साथ दृष्टिगोचर होता है । समाज के एक सम्पन्न नेता जो पति एवं पिता भी हैं, मृत्युशय्या पर पडे अपनी अंतिम घडियाँ गिनते वक्त उनके मन में होने वाले संघर्षपूर्ण विचारविमर्श का मार्मिक चित्रण इसमें हुआ है । "आत्मालाप की रुख के कारण स्वच्छन्दतावादी काव्य की गीतात्मकता तथा आर्द्रता इस कृति में पायी जाती है ।[1]" इसके बाद मलयालम में शोककाव्यों की एक बाढ ही आयी । परवर्ती युग में संख्या में कम होते हुए भी परंपरा से अविच्छिन्न होकर शोककाव्यों की रचना होती रही ।

शोककाव्य-लक्षणों के मापदंड पर मापें तो मालूम हो जाएगा कि श्री·सी·एस· सुब्रह्मण्यन् पोट्टी का "ओरुविलापम्" एक सफल शोककाव्य है । अपनी नन्हीं बच्ची के अप्रत्याशित निधन पर रचित इस शोक काव्य में कवि के आहत वात्सल्य की करुण पुकार सुनाई पड़ती है । प्राय: बच्चों की तन्दुरुस्ती के बिगड जाने पर माता-पिता बेचैन हो जाते हैं, सो भी इकलौती संतान हो तो उनकी उत्कंठा की सीमा नहीं होती ।

1· मलयालम कविता साहित्य चरित्र - डॉ·एम्· लीलावती, पृ·212

उस पर ढलती उम्र में प्राप्त बच्ची पर माता-पिताओं की मन:पीड़ा की अभिव्यक्ति के लिए शब्द असमर्थ हो जाते हैं। एक भुक्तभोगी ही इसका अनुमान कर सकता है। बेटी की स्मृति उसकी तोतली बोली, खेल आदि सभी करतूतें पिता के व्यथित चित्त को हर निमिष सताती रहती हैं। दु:ख के हलाहल पीते भग्न-हृदय उस वत्सल पिता के स्मरणपथ से गुज़रते लाडली बेटी का जो चित्र स्थापित होता है वह 170 श्लोकों में प्रस्तुत कर देते हैं। स्मृति कथन, तत्वचिंतन, शांतिपूर्ण, समाप्ति आदि अंग्रेज़ी शोककाव्यों की विशेषतायें है। पोट्टी के "ओरुविलापम्" में भी यह खूबी पायी जाती है।

वी.सी. बालकृष्ण पणिक्कर का "ओरुविलापम्" §1908§ स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा की अमूल्य देन है। निबिड अंधकार पूर्ण निशा, घनघोर वर्षा, कुत्ते, उल्लू आदि के कर्ण कठोर आवाज़ से युक्त डरावना वातावरण चारों ओर प्लेग के तांडव नृत्य से लोग मृत्युगर्त में गिर रहे हैं। उस भीदित वातावरण में विषूचिका ग्रस्त प्रेयसी के मृतशरीर को गोद में लिटा कर अर्धरात्रि से लेकर अरुणोदय तक कवि का हृदयद्रावक विलाप ही इस शोक-काव्य का विषय है। भावावेग की तेज़-स्वच्छन्द धारा के साथ तत्वचिंतन के आश्वासन का तट दिखाई पड़ता है; किन्तु उनको भी झकझोर कर शोक की प्रबल धारा आगे बढ़ती है। अन्त तक आते ही अपनी प्रिया स्वर्गकुमारियों के साथ स्वर्ग के नन्दनवन में सानन्द विचरण करने की कल्पना कर कवि एक निमिष आश्वासन का निश्वास छोड़ते हैं। अवश्य ही यह मलयालम शोक काव्य का अभूतपूर्व स्वर था। मानव के जीवन की अन्तरतम गहराइयों में

पैठ कर उसकी सूक्ष्मतम अनुभूतियों की अभिव्यक्ति करने की दृष्टि से यह श्रेष्ठतम रचना है अतः मलयालम के प्रसिद्ध आलोचक उल्लूर एस. परमेश्वर अय्यर का मत यहाँ उल्लेखनीय है "कवि के शोकोद्गार में शब्द-सौंदर्य, अर्थ-समृद्धि, तत्वचिंतन की गहनता, भाव गांभीर्य के समन्वय के कारण विश्व-साहित्य की कोटि में इसका स्थान प्राप्त होता है[1] ।"

युगप्रवर्तक तीन कवि सम्राट

"युगत्रयी" नाम से मशहूर यशस्वी कवि है - कुमारनाशान्, वल्लत्तोल नारायणमेनोन् और उल्लूर परमेश्वर अय्यर । भावगीतों के साथ-साथ तीनों कवियों ने बडे सुन्दर शोककाव्यों की रचना भी की है । मलयालम काव्य-क्षेत्र के वैभव की श्रीवृद्धि के लिए इन्होंने सफल साधना की है ।

कुमारनाशान् का "वीणपूवु" (झडा फूल) (1907) और "प्ररोदनम्" (1919) शोक काव्य धारा के दो मील के पत्थर है । मलयालम के स्वच्छन्दतावादी काव्य को सुप्रतिष्ठित करने का महत्वपूर्ण कार्य इन से संपन्न हुआ ।

---

1. केरल साहित्य चरित्र - उल्लूर एस. परमेश्वर अय्यर, भाग - 5, पृ.165

"वीणपूवु" में अपने डंठल से टूट नीचे गिरे एक कमनीय कुसुम को देख कवि अत्यन्त खिन्न हो उठते हैं। अपने और फूल के बीच भ्रातृभाव जोड कर[1] फूल के पतन पर आशान् अपना तीव्र शोक प्रकट करते हैं। मुकुल से फूल के क्रमिक विकास तथा सद्यविकसित उस कुसुम के पतन का उल्लेख करते हुए ऐहिक जीवन की क्षणिकता पर कवि गंभीर चिंतन करते हैं।

"प्ररोदनम्" अन्य शोककाव्य की अपेक्षा सर्वोच्च स्थान पर ठहरता है। मलयालम साहित्य के परम आचार्य, "केरलपाणिनी" नाम से विख्यात श्री·ए· आर· राजराजवर्मा के अप्रत्याशित देहवियोग पर लिखे गये इस शोक काव्य में आशान् की हृदयव्यथा की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। तप्‌रान् के पांडित्य एवं व्यक्तित्व का इसमें सम्यक् प्रतिपादन किया गया है।

उस "दिग्गज" पंडित को राख में बदलते देख आशान का भावुक चित्त जीवन की क्षणिकता तथा मृत्यु की अजेयता पर गंभीर विचार करते हैं। लेकिन नीरस दार्शनिकता में काव्य शुष्क नहीं हुई। परंतु शोकाभिव्यक्ति इतनी अलंकृत शैली में है कि साधारण पाठक आसानी से यह समझ नहीं सकता। "अन्य कवितायें जहाँ साधारण श्रेणी के पाठकों को भी समझ में आती है, वहाँ "प्ररोदनम्" पंडितों के रसास्वादन के ही अधिक योग्य है[2]।"

1· "हे फूल हम एक हैं; एक ही हाथ ने हमारी सृष्टि की है।"
वीणपूवु - आशान, श्लोक 22

2· आधुनिक हिन्दी काव्य तथा मलयालम काव्य -
- डॉ·एन·ई· विश्वनाथ अय्यर, पृ·200

वल्लत्तोल नारायण मेनोन् का "बधिर विलाप" (1911) प्रसिद्ध शोकगीत है जिसमें कवि की बधिरता से उद्भूत दुःख की अभिव्यक्ति हुई है । सन् 1920 में उनकी श्रवणशक्ति धीरे-धीरे घटने लगी और फिर पूर्णरूप से वे बधिर हो गये । निराशा ने उन्हें आ घेरा और जीने की आशा भी मिट गयी । अपने बढ़ते बहरेपन से कवि के शोकाकुल मन में यह सोचकर दुर्दांत वेदना जाग उठती है कि संसार से वे एकदम बहिष्कृत हो जायें। अपनी बधिरता दूर करने के लिए प्रणवमयी जगज्जननी से वे प्रार्थना करते हैं । उन्होंने अपने को सब तरह के दुर्गुणों का भंडार माना है । फिर कमलासन की अलंघनीय आज्ञा को सिर झुकाये स्वीकार कर लेते हैं । वल्लत्तोल ने अपने जीवन के इस दुखद प्रसंग का प्रभावशाली चित्र प्रस्तुत किया है ।

"बापूजी" शीर्षक शोककाव्य भी उन्होंने लिखा जिसमें राष्ट्रपिता की हत्या पर अपने अगाध व्यथा को प्रकट किया है । गांधीजी के प्रति उनके हृदय में आदर की भावना भी थी । उसके पहले ही बापू जी के आदर्शों से प्रभावित होकर उनके निर्माणात्मक कार्यों से आकृष्ट हो कर उन्हें अपने गुरु मानकर "एन्टे गुरुनाथन् (मेरे गुरुनाथ) शीर्षक कविता उन्होंने रची थी । वल्लत्तोल के कतिपय शोकगीतों का संकलन उन्होंने परलोक (1945) में प्रकाशित किया है ।

मलयालम, तमिल, संस्कृत और अंग्रेज़ी आदि भाषाओं के पण्डित श्री उल्लूर एस॰ परमेश्वर अय्यर ने तीस वर्ष की लम्बी अवधि तक साहित्य सपर्या में लगे रह कर साहित्य के विभिन्न

क्षेत्रों को अपनी तूलिका से संपन्न किया । ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया "उमाकेरलम्" नामक महाकाव्य आपकी ख्याति-प्राप्त रचना है । इसकी नायिका उमयम्मा रानी के पाँच बच्चों को शत्रुओं ने तालाब में डुबा कर मार दिया । फूल से कोमल बच्चों की लाशों को देखने पर एकदम उनकी बुद्धि भ्रमित हो उठी । शोकावेग पूर्ण उनके उद्‌गारें मर्मस्पर्शी है । संपूर्ण अष्टम सर्ग में रानी का मर्मभेदी विलाप है । वे पूछती है "क्या, ब्रह्मा के नेत्र भी ऐसे दृष्टि-हीन हुए ? शय्या पर पडे फूल से भी इनके मृदुल शरीर पर खरोंच लग जाएगी । ऐसे इन कोमल बालकों के शरीर को मैं कैसे चिता पर रख दूं ? रोने के लिए नेत्र नहीं बहाने के लिए आँसू नहीं, कोसने के लिए स्वर नहीं, अहो कष्ट ! इस संसार में मेरे लिए कोई आसरा ही नहीं[1] ।"

इनके "कल्पशाखी" नामक काव्यसंकलन का बाष्पांजलि शीर्षक प्रसिद्ध शोकगीत मलयालम के मशहूर साहित्यकार श्री· अप्पनतम्पुरान् के निधन पर लिखा गया है दिवंगत तंपुरान् के गुण-स्तवन करके मृत्युपरान्त स्थिति पर कवि गंभीर चिंतन करते हैं । मरण के बाद की सभी बातें अनुमान पर आधारित है । निजस्थिति जानने का कोई उपाय नहीं । इत:पर्यंत वहाँ से कोई इधर नहीं आया है । फिर भी इसमें ज़रा भी संदेह नहीं है कि किसी महाशक्ति के अधीन यह ब्रह्मांड सुरक्षित रहता है[2] । वेदप्रोक्त शक्तियों पर कवि आश्वस्त नहीं होते ।

1· उमाकेरलम् - उल्लूर एस·परमेश्वर अय्यर, पृ·8-129-30

2· कल्पशाखी - बाष्पांजलि - उल्लूरिन्टे पद्यकृतिकल, भाग 2, पृ·562,63

तंपुरान् के वियोग से उद्भूत शोकभार को हल्का करने के लिए चिंतन की शरण लेते हैं।[1] आपके "महासमाधि" शीर्षक काव्य भी इसमें संगृहीत है, जिसमें गांधीजी की हत्या से देशगत हानि का उल्लेख करके देश के महान् नेता की स्मृति पर कवि की श्रद्धांजलि अर्पित की गयी है।

सन् 1912 में कोटुंगल्लूर कोच्चुण्णि तंपुरान का "मकच्चरमम्" और कुट्टिप्पुरत्तु किट्टुण्णि नायर का "चरमविलाप" ये दोनों शोककाव्य प्रकाशित हुए। इनमें यथाक्रम अपने बन्धु कुंञुण्णित्तंपुरान के स्वर्गवास और दिवंगत पिता की स्मृति को विषय बनाकर शोकनिर्भर श्रद्धांजलि अर्पित की गयी है।

वल्लत्तोल गोपाल मेनोन् ने अपनी वत्सल माता की स्मृति को चिरप्रतिष्ठा दी। अपनी प्रिय माता के चिरवियोग से उत्पन्न मानसिक पीडा को वाणी देने के लिए "ओरुविलापम्" (1913) की रचना की गयी है। मलयालम के उल्लेखनीय शोकगीतों में इसकी गिनती होती है। इन्होंने अपनी पत्नी के निधन पर भी एक शोककाव्य लिखा है। "एन्टे पोयपोय प्राणन्" "निर्गत-प्राण" (1921) नामक यह विधुर विलाप काव्य आपके मधुमंजरि शीर्षक काव्यग्रंथ में संकलित है।

सबेरे स्नान करने गयी पत्नी के जल में डूब मरने से लेकर अन्तिम संस्कार तक की बातें वियोगिनी छंद के आठ खंडों में

---

1. कल्पशाखी - बाष्पांजलि - उल्लूरिन्टे पद्यकृतिकल, भाग II, पृ. 565

66 श्लोकों द्वारा बतायी गयी है । अपने जीवन सर्वस्व को निष्ठुर विधि ने छीन लिया । बच्चे प्रभात में जाग कर माता की तलाश में उसे पुकारते समय उस विधुर पिता का दुःख का संयम की बांध तोड तेज़ बहने लगता है । सामने पत्नी का जड ही पडा है, यह भूल कर उससे जाग उठने को कहते हैं । लेकिन फौतु प्रेयसी, सखी, पत्नी, अपने बच्चों की माता आदि विभिन्न रूप में उनके साथ रहनेवाली उस साध्वी का आकस्मिक निधन का कटु सत्य उन्हें स्वीकार करना पडता है। उनका जीवन रेगिस्थान सा नीरस हो गया । उनका स्वर्ग सर्वस्व नाष्ट हुआ । यह सब भाग्य का विपर्यय नहीं तो और क्या है ? वे अपने अभिशाप्त भाग्य को धिक्कारते हुए अपनी नन्हीं बच्चियों समेत भरी आँखों से, परलोक में रहनेवाली पत्नी की शुभकामना करते हैं । इसमें अभिव्यक्त कवि की स्वानुभूत पीडा सहृदयों को रुलानेलायक है ।

अन्य प्रौढ कवि - शोककाव्यकार

कवि एवं दार्शनिक श्री नालप्पाट्टु नारायण मेनोन की "कण्णुनीर्तुल्लि" §आँसू की बूँदें§ §1923§सर्वोत्तम कृति मानी जाती है । अपनी पत्नी के आकस्मिक निधन की वेदना से विदीर्ण अन्तरंग की तीव्र व्यथा का कलात्मक रूप है यह विधुर विलाप काव्य ।

यथार्थ जीवन की कटुतापूर्ण घटना ने वातावरण को अत्यन्त गंभीर बना दिया है । यह रचना अत्यन्त-मर्मस्पर्शी

होने से पाठक के हृदय को भी करुणा में डुबो देती है । चिरकाल की प्रतीक्षा के बाद ही कवि का प्रेम सफल हुआ । करीब दस महीने की छोटी अवधि के अन्दर उनकी सारी स्वर्गिम अनुभूतियाँ उनको छोड गयी और अन्त में उसका विलयन हुआ । पति दुःख के अंध सागर में फेंका गया । कवि उस अनन्त से आश्वासन की प्रतीक्षा करता है । शोक की इस वेला में संयम-पालन की चेष्टा करने पर भी कवि उसके लिए असमर्थ निकलता है । वेदना असहनीय है, लेकिन कवि अपना संयम छोडता नहीं । लोक-गोल के भ्रमण-पथ के एक कोने में बैठनेवाला मानव क्या जानता है[1] । कवि की यह दार्शनिक आदर्शोन्मुखता गंभीर अवश्य है । श्री·ए·पी·पी· नम्पूतिरि की राय में "कवि तत्वचिंतन के शस्त्रालय में शस्त्र ढूंढता है[2] ।" स्वयं कवि अपने वैयक्तिक दुःख को छिपाकर संसार के नानातर दुःखों पर परितप्त होते हैं । उनका कथन है "सभी ज़िन्दगी का परिणाम समान होता है । अतः अपनी जीवनी पर दृष्टिपात करते समय सबों का जीवन में पहचान सकता हूं । अपने जीवन से यही सबक मैं ने सीखी है[3] ।"

शोकगीति धारा की और एक लोकप्रिय रचना है "तिलोदकम्" । यह श्री·एम·आर· नायर का एक अपूर्व विधुर विलाप काव्य है । श्री· माणिक्कोत्तु रामुण्णि नायर कवि,

---

1· कण्णीर्त्तुल्लि - नालप्पाट्टुनारायण मेनोन, पृ·4

2· नीरुरक्कल् - ए·पी·पी· नम्पूतिरि, पृ·123

3· जीवितम् एन्टे नोट्टत्तिल - नालप्पाटन्टे पद्यकृतिकल, पृ·326

आलोचक, तत्वचिंतक तथा हास्यव्यंग्यकार के रूप में ख्यातिप्राप्त है। साहित्य जगत् में संजय नाम से ये जाने जाते थे।

बचपन से ही विदयनियति की निष्ठुरता के वे शिकार बने। 7 वीं अवस्था में पिता दिवंगत हुए। विवाह के बाद तीन वर्ष नहीं हुए कि पत्नी चल बसी। इकलौता बेटा भी काल का ग्रास बन गया। बाद में भाई भी गोलोकवासी हुए। इस प्रकार एक के बाद एक कर विधि की सारी प्रताडनाओं को बेहिचके वे सहे। एक कदम आगे बढ कर इन लहू के फूलों को हृदय में छिपाकर अपनी हास्यपूर्ण रसीली उक्तियों से सहृदयों को हंसाते रहे। स्वयं अपने हलाहल पीकर व्यंग्य बाणों से समाजगत बुराइयों के निर्मार्जन के लिए लड़ते रहे। ऐसे धीरोदात्त उस नायक के नेत्र एक बार सजल हुए, अपनी पत्नी के निधन पर। उस समय बहाए उनके आँसू का कलात्मक रूप है "तिलोदकम्" नामक शोककाव्य।[1] एक आहत पति के पत्नी प्रेम की मार्मिक अभिव्यक्ति इसमें हुई है। कवि अपने दु:ख के सागर में उतरते डूबते रोदन करते रहते हैं। उनके विचार अतीत की स्मृतियों के भँवर में फंस जाते हैं। इस दीन-स्थिति में उन्हें दिलासा देनेवाले सामने खडे मित्र एवं बन्धुजनों से आपकी यह विनती है "तुम सब लौट जाओ, मेरे मित्रो! जीवनरूपी समर में अब मैं भाग न ले सकता।" भय एवं आशंका से आसमान की ओर देखनेवाले पंख कटे पक्षी जैसे ज़िन्दगी कवि के लिए दुर्वह लगती है। इस दुस्थिति में पडे निराश एवं हताश कवि को ऐसा लगता है कि शोक सागर में डूबे मानव ज़िन्दगी से आस्था नहीं

---

1. तिलोदकम् - एम.आर.नायर

रहेगा, वैसे ही टूटी तंत्रियों की वीणा में फिर मधुर नाद नहीं सुनाई पड़ता । अपनी गोद में एक नन्हे बच्चे को लिटा कर प्राणाधिक प्रिया न जाने कहाँ चली गयी । कवि को तसल्ली देने के लिए तत्वचिंतन असफल रहता है । घात-प्रतिघात विचारों एवं भावों में फँस निस्सहाय होकर रोनेवाले कवि की स्थिति देख सहृदय पाठक के नेत्र सजल हो जाते हैं ।

केकराजा नाम से मशहूर के.के. राजा का बहुश्रुत शोक गीत है "बाष्पांजलि" । §1931§ यह एक सुहृद्विलाप काव्य है । प्रगल्भ आयुर्वेद भिषग्वर तथा कवि के आत्म मित्र पण्णेल्लिप्पुरत्तु श्री. उण्णिमूस के असामयिक निधन ही इस शोक-काव्य का सृजन हेतु था । इस शोक-काव्य का विभाजन "बिन्दु" नाम से अलग-अलग खण्डों में किया गया है । जैसे मरण बिन्दु, मैत्री बिन्दु, स्वभाव बिन्दु, तत्वबिंदु, बाषबिन्दु, विलापबिन्दु आदि । इसके काव्यगत महत्त्व पर दृष्टि डाल कर श्री. एम.के. सानु का कथन है "इसकी संयमित अभिव्यक्ति कुशलता के कारण आँसू का गीलापन पाठक अनुभव नहीं करता, किन्तु उसके पीछे लगनेवाली अवाच्य अनुभूति उसको अवश्य मिलती है ।"[1]

अपनी वैयक्तिक हानि से उत्पन्न दुःखद स्मृति के बीच कवि का ध्यान परिवर्तन शील जगत की क्षणिकता की ओर जाता है । कोई यह नहीं जान पाता कि भविष्य के गर्भ में क्या-क्या

---

1. मिट्टी को मिट्टी की गंध - एम.के. सानु, पृ.68

निगूढताएँ छिपी रहती हैं । अतीव खुश होकर गर्वोन्नत भाव से अपने डंठल पर प्रशोभित फूल हवा के धक्के से धराशायी हो जाता है । आसमान से तारे अचानक छूट पड़ते हैं । वैसे ही अपने अंतरंग मित्र के प्राण से एक अप्रत्याशित निमिष में उड़ गये । इस अप्रत्याशित आघात पर कवि-चित्त दुःख तथा निराशा में डूब जाता है । मित्र के साथ वे भी क्यों न मरे यही उनका विचार है । अपने घनिष्ठ मित्र को खो बैठ फिर वे क्यों किस के लिए जिए ? अतः भूमाता से उनकी यही प्रार्थना है कि हे वसुन्धरे ! इस घोर पापी को तू अपनी छाती पर वहन न कर ।"[1] दुःख की पराकाष्ठा में निराशा के गर्त में पड़ने वाले कवि की रक्षा के लिए उनकी आस्तिकता सहायक बनती है । वह उन्हें आशा की ओर ले जाती है, साथ ही अपने मित्र की आत्मा परलोक में सुख-शांति से जीने की कल्पना भी करा देती है । इस काव्य की आलोचना के परिप्रेक्ष्य में मलयालम साहित्य के इतिहासकार श्री·पी·के· परमेश्वरन् नायर का यह कथन उल्लेखनीय है - "राजा विचारक कवि है । विचारात्मकता से नियंत्रित संयम आपकी कविता में प्रायः देखा जाता है । आपके व्यक्तित्त्व की झलक आपकी कृतियों में दृष्टिगोचर होता है[2] ।"

ह्रस्वकालीन अवधि में एक विशाल काव्य-संपत्ति से मलयालम काव्य को संपन्न करनेवाले केरल के प्यारे, लोकप्रिय कवि थे श्री चंगम्पुषा कृष्णपिल्ले । आपका रमणन् मलयालम का

1· बाष्पांजलि - के·के· राजा, पृ·36

2· मलयालम साहित्य चरित्रम् - पी·के· परमेश्वरन नायर, पृ·230

एकमात्र आरण्यक शोक काव्य (Pastoral elegy) है ।
इसका रूप एवं शैली अँग्रेज़ी कवि स्पेनसर के "शेफर्ड्स कैलेंडर
(और मिल्टन के लिसिडस (Lycidas) से मिलती
जुलती है । किंतु स्वर और विधा की दृष्टि में मलयालम की
पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर इसकी रचना हुई है ।

आपके घनिष्ठ मित्र कवि एवं नियमशोली श्री·इटप्पल्लि राघवन पिल्लै
की आत्महत्या ही काव्य की सृजन प्रेरणा थी । अपने मित्र
की आत्महत्या से कवि का कोमल हृदय पीड़ित हुआ ।
उस विकीर्ण सुहृद-हृदय से निस्सृत काव्यमय परिदेवन का अनुरणन,
उसकी अभिव्यक्ति ने मित्र की स्मृति को चिरस्थायी बनाया ।

काव्य का नायक रमणन् को एक बडे घर की बेटी चन्द्रिका
प्यार करती है । रमणन पहले दोनों का सामाजिक तथा
आर्थिक अन्तर दिखाकर अपनी प्रेमिका को इस प्रेम-सम्बन्ध से
विरत करने का आग्रह प्रकट करता है । किन्तु चन्द्रिका अपने
निर्णय पर अटल रह कर रमणन को आगे आने की प्रेरणा देती है ।
यह प्रणय सबन्ध रमणन् अपने अन्तरंग मित्र मदन (चंगम्पुषा) से कह
देता है । एक अहीर संघ पृष्ठभूमि में इन्हें चेतावनी देता
रहता है; किन्तु चन्द्रिका की आत्मसखी भानुमति इस प्रेम सम्बन्ध
को सुदृढ बनाने में चन्द्रिका की सहायता करती है । प्रेमी
युगल की प्रेम-लता खूब पनपने लगी तो दुर्दैव ने चन्द्रिका का
दूसरी जगह विवाह निश्चित कर इस प्रेम जोडी को अलग कर दिया ।

घरवालों का निर्णय यह कहकर वह स्वीकार कर लेती है कि "चाहे कुछ भी हो जाय, जीवन का मधु रस मैं पीकर रहूंगी ।"[1] यह जानकर रमणन् का दिल टूट जाता है और अपनी प्रेमिका के विवाह के दिन रात को प्रेमजन्य नैराश्य से आत्म हनन करता है और असीम शांति पाता है । शरदभ्रवीथि पर चमकनेवाले एक तारे का धरती के एक लघु तृण से प्यार होताहै, यह अनमेल सम्बन्ध टूट जाता है । तृण का संपूर्ण नाश होता है । वह नक्षत्र चन्द्रिका है, तृण रमणन है । संक्षेप में यही इसकी मूल कथा है । इस प्रेमकथा की व्यापकता कवि अपनी स्निग्ध कोमल और सहज सुन्दर शैली में अभिव्यक्त करते हैं । इस काव्य के भाव, भाषा एवं संगीतात्मकता ने युव-जन चित्त को ज्यादा उद्वेलित किया है । अपने मित्र की आत्महत्या से विदीर्ण कवि चित्त से निसृत वैखरी को पढ़ने-पढते सहृदय पाठक अपने को खो बैठता है । इस शोककाव्य की आलोचना करते हुए सुकुमार अषीकोड लिखते हैं - "जैसे ओस की बूंद में विशाल संपूर्ण कानन झलक उठता है वैसे चंगम्पुषा के काव्य की व्यापकता तथा उसके संपूर्ण आयाम रमणन में झलक उठता है[2] ।"

कवित्रयी के बाद स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा के प्रमुख कवि है श्री·जी· शंकरकुरुप । इनके आदर्श कवि, विश्वकवि टैगोर थे । अपनी रचनाओं पर टैगोर के प्रभाव के बारे में स्वयं कवि के ये शब्द है - टैगोर के जैसे मेरी भावना के चक्रवाल को तथा

1· रमणन - चंगम्पुषा, पृ·48

2· रमणनुम मलयाल कवितयुम् - सुकुमार अषीक्कोड, पृ·8

आदर्शबोध को विकसित करनेवाले दूसरे कवि है ही नहीं[1]।"
पाश्चात्य कवियों में शेली (Shelly) से ये काफी प्रभावित हुए थे। इनका विशाल काव्य जगत् प्रकृति प्रेम, आस्तिकता पर अधिष्ठित तत्वचिंतन आदि से भरपूर है। विश्व की अमेयता पर विस्मय, अज्ञेय विश्वशक्ति के प्रति आराधना भाव जीवन को आर्द्र एवं सुरभिल बनानेवाला प्रेम वात्सल्य स्वतंत्रता का मोह त्याग का आदर, संसार संसार की क्षणिकता पर दुःख इत्यादि भाव असंख्य भाव आपके काव्य प्रपंच में बिखरे पड़े हैं।

"चितालेखम्" आपका एक शोकगीत है। इसमें चंगम्पुषा कृष्ण पिल्ले के असामयिक निधन से उत्पन्न शोक की अभिव्यक्ति हुई है। चंगम्पुषा के अकाल निधन से केवल मलयालम की ही हानि नहीं अपने आत्मीय मित्र की भी हानि हुई है। इस पर कवि की मानसिकपीड़ा का मूर्तरूप "चितालेखम्" में पाया जाता है, वे कहते हैं, उस युवा की चिता पर मेरे दुःख के बादलों से आँसू की वर्षा होती है। मेरे स्नेह पूर्ण चित्त से निसृत आँसू की निर्मलता एवं शीतलता आपकी आत्मा पहचान सकती है। आप मेरे प्राणोपम मित्र थे। आपके "चितालेख" लिखने को मेरी तूलिका असमर्थ है। हृदय की गहराई से उद्भूत आँसू में डुबो कर फूलों का चुम्बन कर खिलानेवाली सुवर्ण किरणों में एक तूलिका बन कर अपने हाथ लगे तो सागर की गंभीरता से आनेवाले रागार्द्र संगीत मेरी भावना को मिले तो मेरे लाडले मित्र! मैं आपका चितालेख लिख पाता[2]।"

---

1. मलयाल साहित्य चरित्रम - पी.के. परमेश्वरन नायर, पृ.233
2. पाथेयम - चितालेखम् - जी.शंकरकुरुप, पृ.207-208

चुने हुए अन्य शोकगीतकार

"पितृविलापम्" (1937) वी॰के॰के॰ गुरुक्कल की बडी मर्मस्पर्शी रचना है । योग्य पति से मिलनेवाली अपनी इकलौती बेटी 17 वीं अवस्था में चल बसी । इस अप्रत्याशित आघात से पिता के आहत वात्सल्य का करुण रुदन हृदय द्रावक है । इस शोककाव्य के आमुख में श्री॰के॰टी॰ चन्तुनंप्यार लिखते हैं, "इसे पढते समय शोकावेग से आँखें भर आती है और दृष्टि ओझल हो जाती है । उन अश्रुकणों को धोकर मन में उभर आनेवाले क्षोभ को संभाल कर साहित्य के आस्वादन को चित्त एवं बुद्धि को सज्जित करने की क्षमता जो प्राप्त करतेहैं वे ही इस शोक काव्य का अध्ययन कर सकते हैं[1] । अंग्रेज़ी शोककाव्यों का अनुकरण होने पर भी करुणार्द्रता में यह अन्य शोकगीतों को मात कर देता है ।

इडमन एन्॰वासुदेवन नंपूतिरि का अन्धविलाप (1942) अन्य शोकगीतों से एकदम भिन्न है । कवि अपनी अन्धता पर रोते हैं । नवीं अवस्था में रुग्ण होकर कवि अन्ध बने । तब से अपना छोटा भाई उनकी अन्धता की छडी बना था । दिन रात साथ रहकर वह बडे भाई की सेवा-शुश्रूषा करता रहा । किन्तु एक दुर्दिन में वह भी चल बसा । इस आघात पर स्वत: दुखी कवि का दिल टूट जाता है । अपने अंधत्व पर विलाप करने के साथ दिवंगत भाई की स्नेहोष्मल स्मृति की याद भी कवि को अधिक दुखी बनाती है । इस पर "आत्मविलाप" (1943) नामक शोकगीत भी इन्होंने लिखा ।

---

1. पितृविलापम् - वी॰के॰ गुरुक्कल, आमुख के॰टी॰चन्तुनंपियार, पृ॰2

महाकवि पुत्तनकावु मात्तन तरकन् की "बाष्पधारा" अपने छोटे भाई बेबि के अप्रत्याशित वियोग पर लिखा गया शोककाव्य है । श्री·मात्तन तरकन् ने भ्रातृवियोग की व्यथा को बाष्पधारा में अभिव्यक्त किया है । अपनी लाडली बेटी की चिरवियोग व्यथा की तप्तस्मृति "कुट्कण्णीर" स्थायित करने की प्रेरणा टी·आर·नायर को मिली । मलयालम को गीतकुमार श्री चंडम्पुष़ा की मृत्यु पर पी·भास्करन की लिखी हृदयस्पर्शी रचना है "पाटुन्न मण्तरिकल" ।

त्रिशूर बिशप रेट·रव·डॉ·फ्रान्सीस के आकस्मिक देहवियोग को लेकर उनकी पुण्यस्मृति को बनाये रखने के लिए एस·तेरमठम् ने "अन्त्यहारम" §1943§ की रचना की । उदारता की मूर्ति बिशप फ्रांसीस का गुण-स्तवन हुआ । वह गुणी किंतु अल्पायु बिशप के चिरवियोग पर एक यादगार भी है ।

श्री·एम·वी·पोल का "विलापम्" §1943§ और श्री·सी·ए· जोसफ की "मातृस्मरणा" उन दोनों की वत्सल माताओं के देहवियोग से उत्पन्न गहन व्यथा की अभिव्यक्ति है ।

श्रीमती मुतुकुलम पार्वतियम्मा ने अपनी स्नेहमयी माता के निधन पर "मातृवियोग" शीर्षक पर एक शोक काव्य की रचना की । "कुट्कण्णीर" के अलावा टी·आर· नायर ने "हृदयरोदनम्" नामक दूसरे शोक काव्य की रचना की जिसकी प्रेरणा ममतामयी अपनी माता का स्वर्गवास है । इन सभी काव्यों में

मातृवियोग से उत्पन्न वेदना की प्रखरता मूर्तिमान हो उठी है । गर्भ-भार और प्रसव पीडा के बाद संतान के शैशव की अरिष्टताओं सहनेवाली माता लाड-प्यार से उसका लालन-पालन करती है । ऐसी ममतामयी माता की अंतिम घडी में एक बूंद पानी भी उसके मुंह में डाल न सकनेवाले आभागे पुत्र की चित्तावस्था एवं व्यथा एक भुक्तभोगी ही जान सकता है । अपनी इस दुर्विधि पर हताश पुत्र के भग्न-हृदय की कसक एवं उसकी अन्तरात्मा की वास्तविक एवं निगूढ वेदना टी॰आर॰ नायर के "हृदयरोदनम्" में साकार हुई है । मातृ-शोक को लेकर लिखे उपर्युक्त सभी शोकगीतों में मातृ-पुत्र संबन्ध की ममता एवं गरिमा का गायन हुआ है । स्वार्थमोह रहित एक मात्र सम्बन्ध माता-पुत्र के बीच का है । माता-सम माता ही होती है । उसके जोड का कोई सम्बन्ध नहीं । उससे होड भी कोई नहीं कर सकता ।

ईसा मसीह की माता मिरियम अपने पुत्र पर किए दारुण अत्याचार देख कर दुखातिरेक मे नम्र हो जाती है । घनीभूत दुख की मूर्ति-सी बैठ कर, अपने मृत पुत्र को गोदी में लिटाकर वह दुःख का जो मौनालाप करती है, वह विश्व साहित्य की महत्वपूर्ण घटना है । इसको लेकर मलयालम में भी थोडी-बहुत रचनाएं हुई हैं । अर्णोस पादिरि का "पुत्तनपाना" ऐसी एक रचना है, जिसे ईसाई लोग "गुड फ्रैडे" में पढ़ा जाते हैं । "मेरीविलापम्" शीर्षक पर अन्यान्य कवियों ने इसी विषय पर काव्य रचे हैं ।

मलयालम की लोकप्रिया गरिमामयी कवयित्री है श्रीमती बालामणि अम्मा । आपके मामा एवं प्रशस्त कवि श्री·नालप्पाट्ट नारायणमेनोन के स्वर्गवास को विषय बनाकर "लोकान्तरंडलिल" शीर्षक पर उन्होंने एक शोककाव्य लिखा । लोकान्तरस्थ मेनोन की आत्मा प्रपंच में भटकती रहती है, साथ ही कवि की कल्पना भी । बिना रोए और रुलाए स्वयं चिंतन कर और दूसरों को चिंतन कराके आर्षज्ञान में अभिरुचि रखनेवालों तथा मृत्युपरान्त जीवन की तलाश करनेवालों को समान रूप से यह काव्य लाभदायक होगा । "मरणोपरान्त जीवन में जो विश्वास रखते हैं, विश्वास करने के लिए जो तैयार हो जाते हैं उनके विश्वास को दृढ बनाने के लिए यह शोककाव्य सहायक बनता है । जीवन का आवरण एक एक करके उत्तर जाने की बात का वर्णन हमारे आस्तिकता के ज्ञान को तृप्त कर देगा[1] ।" काव्य के अंतिम चार पंक्तियां संयम और बुद्धि की सीमा पार हमारे हृदय को छू लेती है, हमारे अन्तर शोक भाव भर देती है[2] ।"

"दाम्पत्य-जीवन का सबसे बडा अभिशाप संतान हीनता है । इस अनपत्य दुःख के आंसू का घनीभूत रूप है श्री·पांडिनाट्टिल पि·आर·गोपाल वार्यर का "वन्ध्यविलापम्" (1961) गार्हस्थ्य जीवन में आच्छन्न दुःख की इस कालिमा की पृष्ठभूमि में बैठ आंसू बहानेवाले उन दंपतियों का करुण चित्र पाठकों के स्मरण में रह-रह कर आ जाता है ।

1· लोकान्तरंडलिल - बालामणियम्मा - आमुख

2· वही, पृ·24

मलयालम की लोकप्रिय कवियित्री श्रीमती सुगतकुमारी ने दूसरी साहित्यिक राजलक्ष्मी की आत्महत्या को प्रमेय बनाकर एक शोकगीत की रचना "राजलक्ष्योट्" (राजलक्ष्मी से) शीर्षक पर की है। अलावा इसके महाकवि शंकरकुरूप की स्मृति पर भी "मेरे गुरुनाथ शोकगीत इन्होंने लिखा। प्रो॰जी॰कुमारपिल्ले ने अपने प्रिय छात्र जोसफ की अप्रत्याशित निधन पर "जोण जोसफ की मृत्यु" शीर्षक पर एक शोककाव्य लिखा जो अत्यंत मार्मिक बन पड़ा है। प्रसिद्ध कवि एवं सिनेमागान रचयिता वयलार रामवर्मा ने अपने पिता के देहवियोग को लेकर "आत्माविल ओरु चिता" शीर्षक शोकगीत रचा है। ये सभी रचनाएं बहुत चुभनेवाली हैं।

मलयालम के प्रसिद्ध कवि की मृत्यु कुमारनाशान् पल्लना में एक बोट दुर्घटना के कारण हुई थी। इसे विषय बनाकर आशान् की स्मृति पर अनेक श्रद्धांजलि परक शोकगीत लिखे गये। श्री॰एन॰ कुंञुकृष्ण गुरुक्कल का "आशान अथवा ओरु अनुतापम्" (1924) मुतुकुलम पार्वतियम्मा का "ओरुविलापम्" (1924) श्री॰मयुन्नादट् सी॰पी॰ केशवन वैद्यर का "महाकवि कुमारनाशान् अथवा विलापगानम्" (1924) ईरिक्कल जी॰के॰ पिल्ले का "बाष्पार्णवम्" (1968) आदि उनमें प्रमुख हैं। आशान की मृत्यु ने व्यक्तिगत हानि की अपेक्षा मलयालम साहित्य की हानि पर ये कवि ज्यादा दुखी होते हैं।

गांधीजी, सुभाषचन्द्रबोस, नेहरूजी, इन्दिरा गांधी, टैगोर जैसे देश के महान् विभूतियों के निधन पर भी अनेक "भारतविलाप" हुए हैं, सबों में देशगत हानि पर ज़ोर दिया गया है।

मलयालम में शोककाव्यों की संख्या काफी बडी है। शोकगीत तथा व्यक्तिपरक गीतों को मिलाकर कुल नौ सौ से अधिक रचनाएं उपलब्ध है।

आज भी इस धारा में विपुल मात्रा में गीत न रचे जाने पर भी यह धारा अग्रसर होती रहती है।

****

पाँचवाँ अध्याय

मलयालम के प्रमुख शोककाव्य

एक विवेचनात्मक अध्ययन

पाँचवाँ अध्याय

मलयालम के प्रमुख शोककाव्य - एक विवेचनात्मक अध्ययन

ओरु विलापम् (एक विलाप)

आधुनिक मलयालम साहित्य के आरंभ काल के कवि और आलोचक के रूप में विख्यात श्री॰ स्री एम. सुब्रह्मण्यन पोटी का लिखा हुआ शोककाव्य है "ओरु विलापम्" । इसमें अपनी शिशु के असामयिक, आकस्मिक निधन पर पिता के शोक, पुत्री के प्रति स्नेह और उसकी स्मृति का मार्मिक वर्णन हुआ है । यह आधुनिक मलयालम साहित्य की एक अमूल्य कृति है ।

प्रतिपाद्य

काव्य के आरंभ में इस क्षणिक जीवन की विभिन्न स्थितियों पर मनुष्य की लाचारी का चित्र कवि प्रस्तुत करते हैं । मनुष्य अपने भविष्य के संबन्ध में कोई निर्णय लेने में असमर्थ है, क्योंकि इस प्रपंच और इसकी सृष्टि के नियन्ता विधाता है । मानव अपने अभीष्ट की प्राप्ति में अतीव आनन्दित होता है लेकिन विधि की यह विडम्बना है कि कोई भी प्रिय वस्तु उसके इच्छुक के पास स्थायी रूप से रहने नहीं देती । मनुष्य जो हमेशा केलिए चाहता है वह अपनाने के बीच में ही शायद खो जाता है ।

किसी वस्तु के प्रति सब का समान दृष्टिकोण नहीं होता। यह प्रपंच अत्यधिक विस्मयपूर्वक एवं रहस्यमय होता है। मानव जीवन हमेशा अपूर्ण रहता आया है। जीवन में पूर्णतः स्थिरता नहीं पायी जाती है।

कर्मों का नियोजन है। जड-चेतन से भरे इस जगत् के प्रत्येक प्राणी के जीवन का अपना कुछ उद्देश्य होता है। ईश्वर की सृष्टि में जो कुछ है उनमें मनुष्य सर्वाधिक बुद्धिमान है, शक्ति-संपन्न है। अन्य जीवियों की तुलना में इस प्रकार मानव का अलग कर्तव्य है। मानव की इच्छायें अनंत हैं। लेकिन उन सब की पूर्ति उसके वश की बात नहीं है। कोई दूसरे पर अपना अधिकार चाहता है, कोई अपनी ही उन्नति केलिए प्रयत्न करता है। लेकिन, ये लालसायें हमेशा सफल नहीं होती, अधिकांश क्षण में चौपट हो जाती है। लता जो फलने फूलने लगी तो कीट बाधा से नष्ट हो जाती है। कवि यह कहना चाहते हैं कि विधि को कोई रोक नहीं सकता। उसके अधीन रहना है। मानव की शान्ति का मार्ग है।

ज़िन्दगी की अस्थिरता तथा भविष्य की अज्ञेयता पर ध्यान देते हुए कवि का कथन है कि माता-पिता पुत्र की बाट जोहते समय अचानक उसकी मृत्यु का समाचार मिलता है। पत्नी अच्छी तरह आज श्रृंगार करके पति की प्रतीक्षा में रहती है तो उसे दुःख के अगाध गर्त में डालते हुए उसे पति की लाश ही मिलती है। मनुज कितना निसहाय है। हाथी जैसे बलवान जंगली जानवरों को भी वश में करनेवाला मनुष्य विपत्ति के

सामने घुटने टेकता है । जिसका ईश्वर पर विश्वास है उसका मन सुख दुःख में समभाव ग्रहण करता है । यह जानते हुए भी मानव अपने तीव्र दुःख का कारण ढूंढता है । उस आलोकमय अतीत की स्मृतियाँ उनके मानस पट पर एक के बाद एक होकर अंकित होती रही । अपनी उस लाडली लड़की का जीवित रहते जितना सुख पहुँचाता था अब वह दुःखदायक बन गया । अपनी बच्ची का आँगन में चलना दौडना, शय्या पर लेट जाना, तोतली बोली में बोलते-बोलते हँसना और रोना उसका खेल-कूद आदि उस आनंदमय अतीत की सुधियाँ उस पिता के मानस-पट पर एक के बाद एक हो कर रहती हैं । उस वत्सल पिता ने अपने दिल में बेटी के प्रति कितने सपने सजोये थे । उन्हें ढलती उम्र में मिली उस सोने-सी बच्ची को देख वे अत्यधिक खुश हुए । बच्ची का हर चाल-चलन उन दंपतियों को स्वर्गीय सुख प्रदान करता था । हर क्षण उनका मन उसी पर केंद्रित रहा । उसके भविष्य को लेकर तरह-तरह के सुनहले स्वप्न-पट वे बुनते रहते थे । शैशव के बाद कौमार, फिर यौवनावस्था, शिक्षा-दीक्षा के बाद सुयोग्य वर की खोज और परिणय - इत्यादि मानवसहज आशाएं अभिलाषाएं उन्हें आ घेरने लगीं । देर से प्राप्त बच्ची उन्हें अकिंचन की आकस्मिक धन प्राप्ति सी लगी । वह वत्सल पिता कभी उसको रोने तक नहीं देते थे । उसके आँसू देखने में वे असमर्थ थे ।

एक दिन अचानक बच्ची बीमार पडी । बुखार चढता ही गया । माँ-बाप बहुत परेशान हुए । दवा देने पर भी, दिन रात खाना-पीना छोड कर जागते रहकर उसकी सेवा शुश्रूषा करने पर भी कोई फायदा नहीं हुआ । बच्ची की स्थिति दिन ब दिन बुरी हो जाने से वे माँ बाप घबरा उठे । आखिर जो होना था

हो ही गया । उनके कलेजे की टुकडी चल बसी । कवि के दुःख की तेज़ धारा बाँध तोड़कर प्रवाहित होने लगी । बेटी के चिर वियोग पर सोच सोच कवि की बुद्धि निकल होने की स्थिति आ गयी । जैसे तैसे दिन बीतते गये, कवि का मन क्रमशः ईश्वर की इच्छा स्वीकार करने के लिए तैयार हो गया । प्रपंच की सुगम गति जारी रखने के लिए ईश्वर ने अनेक नियम रच रखे है । सच्चे दिल से खुशी से उसे स्वीकार करने के लिए भगवान के सामने सिर झुकाए खड़ा होना मानव का कर्तव्य है; भले ही मानव अपने मन में अनेक आशा अभिलाषाएं रख भविष्य के बारे में सुन्दर-सुन्दर सपना देखे तो भी अगले पल में सारी आशाएं मिट्टी में मिल जाती है । अब कवि का ध्यान अन्य दुखियों की ओर जाता है तो अपने दुःख की मात्रा कम प्रतीत होती है ।

उदात्त वात्सल्य विच्छित्ति की करुण अभिव्यक्ति

दीर्घकाल की तपश्चर्या पूजा प्रार्थना आदि के बाद ही कवि की दांपत्य जीवन-वल्लरी पुष्पित हुई । देने के बाद उस लाडली को भगवान ने वापस बुलाया । अपत्यहीनता से उत्पन्न दुःख से ज्यादा मर्मान्तिक व्यथा इससे कवि अनुभव करते हैं । वे निरालंब पिता होने के अलावा और क्या कर सकता है ? बच्चों की तरह वे रो उठते हैं -

---

1· ओरुविलापम् - सी·एस· पोटी, श्लो·170

"बेटी, मेरी बच्ची ! मनोहरी ! मेरे सर्व सुखों के आधार ! मुझे छोड कर तू कहाँ चली गयी ? हे भगवान् ! कृपानिधे ! दिन-रात के भेद-भाव के बिना मैं घोर अन्धकार में तड़प रहा हूँ ।"[1] चौबीसों घंटे बेटी की स्मृति में वे डूब रहते हैं । अपनी इकलौती प्राण प्यारी बच्ची का देहांत उन्हें ऐसा लगा कि छुरी से कोई उनके हृदय को रगड कर काट रहा हो अथवा भट्टी में खडे होने-से अथवा सुई को आग में तपाने के बाद उनके शरीर पर कोई धीस रखा हो । दुःख से ही कवि प्रश्न करते हैं कि इस प्रकार मुझे तपाने से तुझे क्या लाभ मिलेगा ? कृपया मुझ पर दया दिखा दे । किसी कठोर पदार्थ को यत्न करने पर पिघला सकते हैं, किन्तु दुःख की निष्ठुरता कभी मृदुल न हो पायगी ।[2]"

बेटी की चिर-वियोग से कवि को ऐसा लगा कि वे घने जंगल में फंस गये । दुःख के महासागर के तट पर खडे होकर प्रकृति का निरीक्षण करनेवाले कवि चिंतन करते हैं कि जैसे धरती की तीन इकाई जल से छिपी हुई है वैसे मानव जीवन में दुःख ही ज्यादा है ।

जब बेटी जिन्दा थी तब जो वस्तुएं प्रिय लगी थी अब वे ही चीजें उन्हें सताने लगती हैं । उनका घर तो बिना बेटी के मरघट सा लगा । बच्चे की तोतली बोली और किलकारियाँ सदा के लिए बन्द होने से वह पिता ही नहीं तरु-लताएं खग-मृग तृण जाल सब आँसू बहाते हैं । जिन जिन वस्तुओं से उनके

---

1. ओरु विलापम् - सी.सुब्रह्मण्यन् पोटी, श्लोक.143,144
2. वही, श्लोक 149

ममता थी, वे सारी की सारी वस्तुएं अब उनके मन को दुखाती रहती है । शोकावेग उन्हें सनकी बना देता है । अभागे वे पागल सा बनकर ज़ोर ज़ोर से बेटी को पुकार कर कान लगा कर आशा में रहने लगे कि उस के पुकार का बेटी उत्तर दें । कोई उत्तर नहीं मिलने से उस निराश पिता की पीडा मर्मभेदी हो जाती है । स्मृतिकथन ! बेटी के साथ बिताये सुखानुभूति की स्मृतियां उन्हें विवश बनाने लगीं, खासकर बेटी की मृत्यु का दिन । पिता बेटी की पसंद चीज़ें लेकर आये । वे यह सोचते आये कि इन चीज़ों को पाते ही वह बडी खुशी से उन्हें चूम लेगी तब उस दूधमुंह पर एक चुम्बन वापस दे दें । लेकिन सारी कल्पनाएं विफल हुईं । बच्ची के हिम से ठंडे मुख पर भग्न हृदय से अंतिम चुम्बन ही वे दे सके । बेटी के लिए लाई चीज़ों को दूर फेंक कर वे ज़ोर विलाप करने लगे । फिर भी उनका मन इस सत्य को स्वीकार नकर सका । बेटी जहाँ जहाँ घूमती थी खेलती थी ठहरती थी उन स्थानों पर कम से कम एक बार भी उसके दर्शन के लिए वे घूमते रहे । बेटी कमलाक्षी पुकारते हुए घर में घूमनेवाले उस पिता की पुकार निरुत्तर होकर उस एकान्त वातावरण में प्रतिध्वनित हुई ।[1] उसके दर्शन के लिए तरस कर वे घूमते रहे । उसे कहीं न मिलने से उनका दिल बैठ गया । वे थक गए । गुम सुम बैठ कर बच्ची की हर करतूतों को याद में वे खो गये ।

एक दिन जब बेटी दूध पी रही थी कि तब पिता वहाँ आए । बेटी ने दूध पीने के लिए पिता से उसकी तोतली बोली में कहा । माँ-बाप दोनों हँस पडे । और एक दिन अपने नन्हे हाथों से थोडा भोजन लेकर उनके मुँह में उसने बहुत प्यार से डाल दिया । कोई उन्हें दिखा कर बच्ची से कहे कि यह मेरे पिता है" तब वह दौड आकर पिता को दृढ आलिंगन में

---

1. ओरुविलापम - श्लो 155-156

बाँध कर बार-बार कहेगी कि "ये मेरे बाप है । यह सुन वह स्नेह निधि अपनी प्यारी को उठा कर गोद में रखेगी । इस प्रकार न जाने कितनी स्मृतियाँ एक साथ उनके हृदय को झकझोरने लगती है ।

बच्ची के जीवन काल की सारी बातें सोच सोच कर उनके पंचेन्द्रियों भी शक्तिहीन हो गयी । नयन देखता नहीं कान सुनता नहीं, जीभ को रुचि नष्ट हुई, नाक ने घ्राण शक्ति छोड दी, सारा शरीर सन्न होने से संज्ञा शून्य बन गया । मन तो पत्थर की तरह निर्विकार हो गया । एक प्रकार सनकी से वे रह गये । न जाने इस प्रकार कितने दिन और रात ढल गये ।

तत्वचिंतन

बीते हुए दिनों की स्मृतियों में उनका मन उलझ कर चिंतनग्रस्त होने लगे । कवि इस परिवर्तनशील विश्व के बारे में चिंतन करने लगे । प्रकृति की ओर उन्होंने दृष्टि डाली । वे इस सत्य से अवगत हुए कि प्रपंच की सारी चीज़ें परिवर्तन एवं नाश के अधीन हैं । आसमान पर चमकनेवाले सूर्य का भी उत्थान पतन होता है । चन्द्रमा भी वृद्धि क्षय का पात्र बनता है । आकाश पर झिलमिलाते नक्षत्र भी छूट जाते हैं । जन्म लेनेवाला मनुष्य भी मर जाता है । विश्व की यह परिवर्तनशीलता उसके संचालन का अनिवार्य अंग है । विधाता के नियमों का पालन सब कोई करता है । सब का अपना अलग नियोग है,

एक छोटा तृण भी अपना कर्तव्य निभाता है । सृष्टि का मुकुट माननेवाला मानव इस पर गर्व करता है कि सारी सृष्टि पर उसने अधिकार जमाया है,[1] किन्तु अपनी सारी काबिलियत् के बावजूद वह निर्बल रहता है । मृत्यु से उसे छुटकारा नहीं मिलता है । भविष्य के प्रति वह सुवर्ण पट बुनते समय नियति नटी पल भर में उसे चीरफाड कर लेती है । भाग्य के इस खेल से मानव-जीवन करुणा मिश्रित रहता है । सुख-दुःख संकलित जीवन में निश्चिंत होकर भगवान का आश्रय लेना ही बुद्धिमानी है । आखिर सुख-दुःख भी मन का भ्रम मात्र है[2] । भले ही अल्प-काल के लिए ही सही बेटी मिली । भगवान की इच्छा पर मिली, उन्हीं की इच्छा से वह वापस बुलाई गयी । सब उनकी इच्छा पर निर्भर है, हमारा वश नहीं चलता । इस प्रकार सोच-सोच वे अपनी कुंठित शक्ति को पुनः वापस लेने की कोशिश करते हैं । दुःख की चिलचिलाती धूप में शांति की शीतलता प्रदान करनेवाले भगवान के शरण में आकर बेटी की आत्मा की मुक्ति की प्रार्थना करते हैं ।

इस शोककाव्य की सब से बड़ी विशेषता इसकी अन्यतम सादगी है । वे मन से निसृत उद्गारें बिना किसी छिपाव दुराव से, बिना किसी अलंकार से सज-धज कर अभिव्यक्त कर देते हैं । अतः उस वत्सल पिता के सरल चित्त से निसृत आहत वात्सल्य की कराह से पाठक-चित्त भी बेचैन हो उठता है ।

---

1. ओरुविलापम् - श्लोक 13
2. वही, श्लोक 180

इस काव्य की आलोचना करते हुए मलयालम के साहित्यकार अप्पन तंपुरान का यह कथन है - रुकता, भँवर, मोटे मोटे पत्थर आदि के बिना निर्बाध एवं स्वच्छन्द बहनेवाली एक नौका-सी मेरा मन इस सरस रचना में निर्बाध बह जाता है।[1]"

दूसरी विशेषता कवि की अन्यतम आस्तिकता है। उनके अनुसार जो कुछ भगवान हमारे ऊपर लाद देते हैं, खुशी से ढोना हमारा कर्तव्य है। इसी में हमारी भलाई है। निरुद्देश्य वे कुछ नहीं करते। भक्त जो है सुख दुःख से सम भाव रखता है।

अकृत्रिमता इसकी और एक विशेषता है। स्वानुभूत बातों की अभिव्यक्ति होने से काव्य में कृत्रिमता के लिए कोई स्थान नहीं मिला। मलयालम के प्रथम लक्षण युक्त शोक काव्य होने का श्रेय भी इसको मिला है।

निष्कर्ष

अभिशप्त अनपत्य दुःख भोगने के बाद ढलती उम्र में कवि को वरदान स्वरूप बच्ची मिली। उसके आकस्मिक निधन से कवि चित्त आहत हुआ। उस दुःख और वात्सल्य का वर्णन इस शोक काव्य में हुआ है। यद्यपि तत्वचिंतन से कवि आश्वस्त नहीं हो जाते तथापि उनकी अचंचल भक्ति उस तीव्र दुःख को सहने की शक्ति उन्हें प्रदान करती है। निष्कर्षत: कवि यह मानते हैं कि सुख-दुख संकलित विश्व में दोनों को समान रूप से स्वीकार कर नियति-नियोग को स्वीकार करना मानव का कर्तव्य है।

---0---

---

1. ओरुविलापम - सी.एस.पोटी, आमुख, पृ.4

चुटु कण्णीर [तप्त-अश्रु]

श्री॰ टी॰आर॰ नायर का लिखा हुआ यह शोकगीत अकाल में मृतअपनी बेटी की स्मृति पर कवि की करुणामय वेदना की अभिव्यक्ति है ।

विषय वस्तु

यह शोक काव्य चार भागों में विभक्त है । "प्रथम बिन्दु" में आसन्न विपत्ति का आभास प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में कवि पाते हैं । प्रकृति का मनोनुकूल चित्रण इस भाग में प्रस्तुत किया गया है । चिड़ियों के असाधारण चहल पहल के दीन-रोदन से उस दिन का उदय हुआ । ओस-बूंदों के मिस सुमन जाल भी किसी दुर्घटना की सूचना देते हुए आँसू बहाने लगा । मेरे दिल के धड़कन सुनकर, पूर्वी दिशा की रक्तिम वर्ण देखकर आसमान से इन्दु ओझल हो गया । धरती के लोगों के जीवनरूपी नाटक देखकर आकाश देश में खड़े होकर तारकगण हँसने लगा ।[1]"

1· चुटुकण्णीर - टी॰आर॰ नायर, पृ॰2

दूसरे भाग में चिरकाल की प्रतीक्षा के बाद जन्मी बच्ची को देखने के लिए वत्सल पिता दौड आते हैं । उनका शरीर पसीने से तर हो जाता था । अब उनके घर के समीप का पहाड ओसकणों के रूप में रोता है । घर के आंगन में खडे आम का पेड पत्तों को झुका कर आँसू बहाने लगा । घर की गाय भी अपने कान को सीधा करके एक अघटन घटना पर शंकित हो कर खडी हो गयी । घर पहुँचने के पहले ही कवि के मामा ने उन्हें यह समाचार सुनाया कि बेटी का बुखार बढ आया है । यह सुनते ही उनका कलेजा बैठ गया । फिर भी लाडली को देखने की इच्छा से बेटी की तोतली बोली तथा तरह-तरह की लीलाओं को याद कर किसी भाँति घर पहुँच गये । वहाँ एक साल-भंजिका की भाँति बैठने वाली पत्नी दिखाई पडी ।

तृतीय बिंदु में बेटी की मृत्यु की दुखद घटना का वर्णन है । चोर की भाति चुप छिप आनेवाली मृत्यु बेटी के प्राण का हरण कर चली गई । बेटी की किलकारियों से मुखरित घर अब श्मशान सा सूना बन गया । दिन-रात ढलती रहीं । बाह्य संसार से अपना सारा नाता तोड कवि अपने कमरे में पडे रहे । अपने कलेजे के टुकडे को खो जाने की मर्महत पीडा से उनकी अन्तरात्मा की कराह ज़ोर पकडने लगी ।

चतुर्थ सर्ग में कवि दांपत्यजीवन की परिपूर्णता तथा सफलता के लिए संतान प्राप्ति के सौभाग्य की प्रशंसा करते हैं । वह असुलभ भाग्य इन दंपतियों को प्राप्त हुआ था; किन्तु एक दुर्दिन की अभिशप्त घडी में वह लाडली संतान सदा के लिए चल बसी । बच्ची अब केवल स्मृति में बसी हुई है । लेकिन जबतक

यह प्रापंचिक सृष्टि शून्यता में विलीन हो जाएगी, तब तक इस मायिक दुनिया में जीकर नन्हीं बेटी के बारे में सोच कर रो-रोकर मृत्यु की घड़ियाँ वे गिनते रहेंगे ।

पीड़ा की अभिव्यक्ति

दांपत्य जीवन में निस्सन्तान रहना बहुत बड़ा अभिशाप है । उससे भी बड़ा अभिशाप है कुसंतान की लब्धि । अतः इस प्रकार के अभिशाप से मुक्त रहने के लिए दंपति लोग सत्सन्तान के लिए भगवान से प्रार्थना करते हैं । अच्छी सन्तान के लिए पति-पत्नी जो यज्ञ, जप, तप आदि भगवान को प्रसन्न करने के लिए करते हैं उसका शुभ परिणाम ही है, सुसन्तान-सौभाग्य । कवि एवं पत्नी इस भाग्य से अनुगृहीत हुए । करुणामय भगवान की स्तुति कर लाड़ली बेटी के प्यार में तल्लीन होकर उसके लालन-पालन में वे दंपति मग्न रहे । बच्ची की मृदुमुस्कान, उसकी तोतली बोली, हाथ-पैर हिलाकर खेलना इत्यादि सभी क्रियाकलापों को देखकर वे स्वर्गीय आनन्द अनुभव कर रहे थे । लेकिन अब उस सन्तान के मर जाने से उनके नष्ट-स्वर्ग की याद रह-रह कर उन्हें सताने लगी । बच्ची अपने नन्हें हाथों से आलिंगन कर उन्हें चूम लेने की आनंदानुभूति अब आँसू बहाने का हेतु बन गया । अब तो मरण-पर्यंत रो-रो कर सुखना पड़ता है । हृदय को लगी चोट हमेशा हरी-भरी रहेगी । अपने माता-पिता को छोड़ कर बच्ची कहाँ जा सकती है ? पक्षि शावक उड़ने के लिए प्राप्त हो सकने समय तक अपने रक्षकों को छोड़ कहीं नहीं जाता । वैसे बच्ची भी माता-पिता को छोड़ कहीं न जा सकती । किन्तु एक अज्ञात निमिष में अप्रत्याशित रूप से बच्ची काल के कराल हाथों में फँस गयी । बच्ची कवि के बहिश्चर-प्राण थी ।

वह प्राण पखेरू शरीर रूपी घोंसले को छोड उड गयी । उसकी माता को कौन कैसे सान्त्वना दे सकता है ? उन दंपतियों का जीवन-पथ सदा के लिए अन्धकार से आच्छन्न हो गया । मृत्यु रूपी विष-वायु लगने से वे पति-पत्नी बेसुध हो गये । दुःख की चिलचिलाती धूप में वे सूख गये । पिता यों पुकार उठे - "मेरी लाडली बेटी, एक बार तेरे पिता से मिल जा ! आँसू को रोकने का प्रयास करने पर भी रोक न पाये । आँसू की अजस्र धारा प्रवहित होने लगी, जैसे आयी, वैसे ही मेरी प्राणों की प्राण बेटी चल बसी[1] ।"

कवि की पत्नी शोकावेग से निर्जीव बन कर पडी रहती है । सगे-संबंधियाँ उसका परिचरण करते थे । किन्तु उनके उपचार और सान्त्वना से वह कैसे आश्वस्त हो सकती है ? मातृ-हृदय की वह वेदना माता ही समझ सकती है । आगे उन दंपतियों के जीवन पथ में केवल दुःख का अन्धकार एवं विषाद के काँटे शेष रहते हैं । अन्तः ताप की शरशय्या पर बेसुध पीडा से बेचैन होकर वे जागते रहेंगे । आजीवन आहत वात्सल्य के करुण पुकार से वे दुखी रहेंगे । निर्दय नियति ने अपने विषैले दाँतों से उस हत भाग्य पिता के प्राणों को डस लिया । वे तिल मिला उठे, समान दुखिनी धर्मपत्नी से दुःख बाँटने की कोशिश करके कहने लगे "प्रिये हम क्या करें ? बेटी के बिना हम कैसे जिए ? वेदना की अग्नि में हम जल जायेंगे । क्या हमारे आकुल अंतर की करुण पुकार भगवान सुनते हैं ? हमारे नेत्रों को शोक से अंधा करने केलिए ही उन्होंने सोने-सी पुण्य कलिका जैसी बेटी को हमें दिया था[2] ।" कवि की सान्त्वनोक्ति पत्नी की

---

1. चुटुकण्णीर, टी॰आर॰नायर, पृ॰10
2. वही, पृ॰11-12

दुःखाग्नि को प्रोज्ज्वलित करने की घी बन गयी । उसका आतुर उर कैसे चैन पा सकेगा ? बच्ची की स्मृति तलस्पर्शी वेदना जगाती रहती है । उस अभागिन माता का अब तक का अस्तित्व ही पुत्री पर निर्भर था । अब वह न रही, उसकी आसरा छूट गयी । वह निरुपाय, निसहाय जड़वत् रहती है । रह-रह कर दुर्भाग्य की शिकार उस माता की अन्तरात्मा से एक दीन-रोदन बाहर आती है, उसे सुनने में वह स्नेह धनी पति अशक्त हो जाता है । उस कृशांगी का मर्मस्पर्शी भाव एवं रूप देख पति का हिम्मत टूट जाता है । वे स्वयं तत्तुल्य या तदुपरि दुखी हैं; वे भी फूल सी कोमल-सुन्दर बच्ची के नष्ट पर शोक-सन्तप्त रहते हैं । अतः पत्नी को मनाने की शक्ति वे खो बैठते हैं । जीवन क्षणिक है, सब नश्वर है, जो जन्म लेता है, वह मर जाता है आदि तत्वचिंतन से समझौता करने के लिए कवि का आहत मन तैयार नहीं होता । उस वत्सल पिता के अन्तरतल में मृत बेटी का अनूठा स्मृति-चित्र साकार होकर उन्हें व्याकुल बना देता है । वे मूककंठ होकर सोचते हैं कि पत्नी की गोद शून्य है उसके हाथ रिक्त है, वह तीव्र व्यथा से आक्रांत है; उस व्याकुल-माता को आश्वासन के दो शब्द देने की बात तो दूर, उस विषाद की मूर्ति को देखने केलिए भी वे अशक्त है ।

तत्वचिंतन

वेदान्तविद् जनि-मृति पर निश्चिन्त रहते हैं । उनका यह सिद्धांत है कि जैसे जीर्ण वस्त्र को छोड़ हम नया वस्त्र स्वीकार कर लेते हैं वैसे जीवात्मा भी अपना जर्जर शरीर-रूपी कवच छोड़कर नया शरीर स्वीकार कर लेती है । इस तत्व को स्वीकार करें तो

मृत्यु को लेकर हमारे जो आशंका, भय एवं दुःख है वह निर्मूल है। लेकिन एक की कमी को पूर्ति दूसरा नहीं कर न पाती। इसलिए अपनी बेटी की जो हानि है उसकी पूर्ति कोई नहीं कर पाता, तत्वचिंतन के जर्जर हाथ कवि के आँसू पोंछने के लिए असमर्थ हो जाते हैं। गुलाब-सी कोमल बेटी को लेकर उसके भविष्य के प्रति जो सुनहली रेशमी आशाओं का पट वे बुनते रहते थे वह विफल हुआ। सन्तान सुख स्वर्गीय सुख को लात मारनेवाला होता है। वैवाहिक जीवन की सफलता अपत्यलब्धि में कवि सौभाग्यशाली थे। किंतु जैसे साँझ और सबेरा एक साथ आते हैं वैसे यह लेन-देन भी एक साथ हो गया। सभी संतानवियुक्त माता-पिताओं का भगवान से एक ही प्रश्न है कि अगर लेना है तो क्यों दिया ? ईश्वर से उनकी दीनता पर फरियाद करने पर भी उनकी आस्तिकता में कोई क्षति नहीं पहुँचती है। हे पावनात्मन्, हे करुणानिलय ! आपने ऐसी दयनीय स्थिति में हमें डाल क्यों दिया ? जब तक शून्यता में सबका लय होता है तब तक इस संसार में पुत्री-वियोग की मर्म-भेदक व्यथा सह कर हमें जीना पड़ता है। उनकी आस्तिकता उन्हें आत्माहुति करने नहीं देती। आज जो है, कल नहीं होता। "सर्वजन्मस्थितिलय" के कारणभूत सर्वशक्त की इच्छा से वशीभूत होकर रहना ही हमारा कर्तव्य है।

फिर भी कवि की स्मृति में विगलित हृदयोद्गार यों प्रकट हो जाता है। न जाने बेटी किस दुनिया में कैसी रहती है। किंतु मेरे हृदय रूपी आसमान पर इन्द्रधनुष की शोभा से युक्त लाडली बच्ची का मुख चन्द्र आमरण भासित रहेगा।[1]

---

1. चुटु कण्णीर, पृ. 16

इस शोककाव्य में अनुभूति तीव्रता उच्च कोटी में पहुँच चुकी है । बेटी के निधन से जो करुण उद्गार शब्दातीरित हुआ है, उस में उस चिरवियोग की व्यथा तथा विकलता बहुत गंभीर रूप में पायी जाती है । भाषा अत्यन्त सरल है । अनुभूत बात की अभिव्यक्ति होने से हृदय से निकले मर्मस्पर्शी शब्द पाठक के हृदय को चुभाते है, और कवि के साथ पाठकों के नेत्र भी गीले हो जाते हैं । इसलिए इस काव्य की मर्मस्पर्शिता पर प्रशस्त साहित्यिक श्री पुत्तेषत्तु रामनमेनोन ने कहा है "टी·आर· नायर का चुटुकण्णीर केवल आँसू की बूँद नहीं, बल्कि आसू की नदी ही है । अग्निपर्वत फूट कर जो लावा बह निकलती है, वैसे आपके पास के पहाडी रास्ते से आपके ये गरम आँसू की नदी बह आयी है । बेटी के निधन के दिन उषा उच्च स्वर में रोयी, उसके साथ मुझे भी रुआँ-सी आती है[1] ।" इस कृति को पढकर महाकवि वल्लत्तोल ने भी इसकी मार्मिकता की प्रशंसा की है । "एक लाडली बेटी के आकस्मिक वियोग से टी·आर· नायर के चित्त से जो आँसू बह निकले वह एक असुलभ तीर्थजल के समान पाठक अपने हृदय में इसे रख लेगा[2] ।"

निष्कर्ष

इस शोक काव्य में अपनी स्वर्गीय पुत्री के वियोग पर कवि के आहत वात्सल्य की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति हुई है ।

1· अभिनंदन - पुत्तेषत्तु राम मेनोन - चुटुकण्णीर,पृ·2

2· अभिनंदन - वल्लत्तोल - चुटुकण्णीर, पृ·1

संतान-वियोग से संतप्त पिता के चित्त का कोई भी कोना इसमें ओझल नहीं रहा है। श्री·टी·आर· नायर ने अपने तीव्र दु:ख की हार्दिक अभिव्यक्ति की है। समुद्र गर्भ से मोती जैसे उनको संतान प्राप्ति हुई। लेकिन जैसे वह आयी वैसे चली गयी। यह तो संसार की सहज गति है। कवि, तत्वचिंतन का सहारा दु:ख शमन के लिए नहीं लेते, आजीवन बेटी उनके हृदय में रहती है, उनमें जीती है।

xxxxxxxxxx

कण्णुनीर्त्तुल्लि {अश्रुकण}

उच्चकोटि के सहृदय कवि एवं दार्शनिक श्री·नालप्पाट्ट् नारायणमेनोन के व्यक्तिगत जीवन की एक दु:खपूर्ण घटना के आधार पर लिखा गया शोककाव्य है कण्णुनीर्त्तुल्लि {अश्रुकण} । मलयालम के विधुर विलाप काव्यों में यह सर्वश्रेष्ठ है ।

काव्य का प्रमेय

बारह खण्डों के इस काव्य में प्रथम छ: खंडों में दुनिया की नश्वरता पर प्रकाश डाला गया है । इनमें कवि तत्वचिंतन का पल्ला पकड़कर अपने तीव्र दु:ख का शमनोपाय ढूंढते हैं । सातवें खण्ड में कवि अपने अतीत अनुभवों का स्मरण करते हैं । अपने बाल्यकाल की सखी के साथ एक ही माँ के बच्चे जैसे बिताये उन स्वर्णिम दिनों की मधुमय स्मृतियाँ कवि के मन में उभर आती है । "अन्य बाल सखाओं को छोड कर अपनी इस सहेली के

साथ एक ही खिलौने से एक ही खेल समान भावभरे दिल से खेला करते थे। यों एक दूसरे के पूरक के रूप में हम दोनों रहें।"[1] बाद जब दोनों कौमारावस्था में पहुँचे, तब दोनों के दिल में विवेक का उदय हो गया, उस दीपक के प्रकाश में दोनों अलग हो गये। यही नहीं, उन दोनों के बीच सामाजिक रीति-मर्यादाओं की एक ऊँची लम्बी दीवार खड़ी की गयी। "अभिजनसंकट देशचर्य" के डर से उन्हें उस दीवार को मानना पड़ा। उसके दोनों तरफ बैठ कर ये दो प्रेमीजन आंसू बहाते रहे। इस समय अतीव प्रत्याशा से कवि अपने मन को समझाते रहे कि "पानी जितनी गहराई से निकलता है, जंगलों में किन-किन अज्ञात जगहों से होकर वह बह निकलता है, कितने प्रतिबन्धों को झेलकर दुर्गम स्थानों से होकर सपाट धरती पर आकर अपनी स्वच्छता और शीतलता हमें प्रदान करता है। वैसे सच्चा अनुराग भी दुःख ताप से परिपक्व होने के बाद ही प्रेम की सफलता हमें प्राप्त होता है। प्रेम-रूपी नदी के लिए रुकावट या विघ्न अनिवार्य होता है। आखिर सूर्य ताप में जलकर ही नन्हें पौधे की कोंपलें उग आती हैं।[2]

घरवालों के सैकड़ों विद्वेष-विरोध का सामना करने के पश्चात् उनका प्रेमतरु पनपने लगा। दोनों की शादी हो गयी तो सारी प्रकृति में नव्य-दीप्ति भर आई। इस अवसर का कवि अपना मनोनुकूल चित्रण करते हैं। प्रकृति की सब चीज़ें, प्रत्येक स्पन्दन स्नेहमय तथा सुन्दर लगता है। "विवाह-वेष में

---

1. कण्णुनीर्त्तुल्लि - नालप्पाट्टु नारायण मेनोन, पृ.23
7, 3-4

2. वही, पृ.28, 3-5

बडे-बडे वृक्ष, पत्तों से मर्मरगीति सुनाते रहे । अपनी टहनियों द्वारा नाना प्रकार के नृत्य करते रहे । बीते दिनों में जो दुःख सन्ताप झेलना पडा वह अब आह्लाद एवं उल्लास में बदल गया ।[1] दिन-रात, उनके लिए रवे जैसे दीख पडे, तृणगण भी इस अपूर्व सुन्दर दांपत्य को देखते रह गये और दंपतियों का इशारा कर स्वयं अपना चेहरा झुकाने लगे । यों अपार गर्व से दिल ने जो फूला न समया था, आज कवि उसे बेवकूफी मानते हैं[2]।

नवें खण्ड में कवि अपनी जीवन संगिनी के रूप-गुणों की याद करते हैं । दिल की गहराई के आँसू की कणिकाओं को मधुर चुम्बन से पोंछ डालनेवाले वे पेलव अधरोष्ठ, तीव्र व्यथा में भी अपनी मृदुमुस्कान से चन्दन की शीतलता प्रदान करनेवाला वह मुखचन्द्र, वह निबिड केश-जाल, कोमल-मृदुल भुजाएं, अपथ-संचरण से सुरक्षा करनेवाला वह कटाक्ष-पाश-सर्वोपरि उसका प्रणय प्रभाव - सब अनुभवैकवेद्यमात्र है । अपनी अल्पायु के दांपत्य से कवि ने समझ लिया कि यद्यपि इस संसृति में नाना प्रकार के सुख के साधन सुलभ है तो भी धर्म-पत्नी का मृदुस्मेर ही वह एकमात्र वस्तु है जो नरक में भी स्वर्ग का निर्माण करने की क्षमता रखता है । जब तक वह ज़िन्दा थी, तब तक उसके गुण-गणों के प्रति सोचने का अवसर तक न मिला था । यही तो मानव का सहज स्वभाव है ।

---

1. कण्णुनीर्त्तुल्लि, पृ.29-7,9,
2. वही, पृ.32

जब कवि ने जाना कि उनकी दाम्पत्य वल्लरी पुष्पित हो चुकी है और वे दोनों माँ-बाप बननेवाले हैं, उनकी खुशी की सीमा नहीं । प्रियतमा में विजयभाव देख कवि अपने भाग्य पर अतीव प्रसन्न हुए । कवि के मन में यह शंका होती है कि यह विजय तथा चरितार्थ भाव ही शायद दुर्गति का कारण बन पड़ा हो ।

वे अनागत बच्चे के आगमन की प्रतीक्षा में रहे । कल्पना में उसके दर्शन कर आनन्दातिरेक से वे पुलकित हो उठे । किन्तु "अन्यथा चिन्तितं कार्यं दैवमन्यत्र चिन्तयेत्" की उक्ति को चरितार्थ करने के लिए उन पर दुर्भाग्य की बिजली टूट पड़ी । दस महीनों में दस जन्मों का सुख भोग कर उस दाम्पत्य जीवन पर विरामचिह्न डाला गया । कवि एकाकी हुए । उस विधुर के सन्तप्त चित्त में जितनी यादें उभर आती हैं उतनी तीव्र शोक की धारा भी उमड़ आती है । फिर भी कवि यह सोच कर अपने आँसुओं को रोकने की चेष्टा करते हैं कि अपनी प्रियतमा की परलोक-यात्रा का पथ उनसे दुस्तर न हो जाय ।

शोकाभिव्यक्ति

दीर्घकाल प्रेमी-प्रेमिका के रूप में विरह दुःख भोगने के बाद ही प्रेमीयुगल का विवाह संपन्न हुआ था । दस महीने की छोटी अवधि में नियति-नियोग से वह संबंध समाप्त हुआ । प्रेम की संयोग दशा में वे कितने खुश थे । इस नित्य वियोग जन्य अपार दुःख से उद्भूत दावाग्नि की धधकती ज्वाला उस

विधुर के लिए असह्य हो गयी । चिर वियोग के बाद का मिलन सुख जितना अवाच्य था, उस नष्ट स्वर्ग की याद से उत्पन्न कवि की कराह मर्मभेदी है । इसे संयमित करने की जितनी चेष्टा वे करते हैं उतनी उनकी हृदय की चोट कसती जाती और लहू बहने लगता है । यह देख कर श्री· मारार ने कहा कि "कवि तत्व चिंतन के श्रृंग पर बैठ कर अपने हृदय की चोट पर पट्ठी बाँधता है, लेकिन जैसे वह लपेटता जाता है, वैसे खून का प्रवाह ज्यादा हो जाता है[1] ।

विवाह के पूर्व प्रेमी युगल से बहाए गए आँसू उनके प्रेम के पवित्र भाव एवं शोकनिश्वासों में घोल कर दांपत्य रूपी किले का निर्माण बडे यत्न से किया, किन्तु निर्माण के बाद उसकी पूर्ति पर खुश होने लगे कि किसी अज्ञात हाथ ने उसे तोड डाला[2] ।

नियति ने कवि की प्रिया का हरण बडी चतुराई से किया । उस अभिशप्त दिन में साधारण से सूर्योदय हुआ । अंतरिक्ष में किसी अनहोनी घटना घटना का चिह्न भी न दिखाई पडा । उस दुर्दिन का संबोधन कवि करते हैं - हे दिन ! किसने जाना कि तू मेरे जीवन के सौभाग्य का हरण करेगा । विधि ने मेरे सिर पर जो धक्का दिया उसे देख तू भी संतप्त हुआ, किन्तु मेरा सिर यह दुर्वह दुःख भार ढोने के लिए अब भी यथास्थान रहता है[3] ।

1· कण्णुनीर्त्तुल्लि - नालप्पाट्ट् नारायण मेनोन, भूमिका कुट्टिकृष्णमारार, पृ·7-8

2· वही, पृ·1 - 1

3· वही, पृ·7-3,4

पत्नी के निधन का समाचार पाते ही कवि बच्चे की भाँति रो उठे।[1] और कुछ कहते रहे और सोचने लगे। न जाने क्या क्या मैं बकता था। किन्तु मेरा दुःख देखने के लिए कोई नहीं। संसार किसी पर विशेष ध्यान नहीं रखता, व्यस्त जीवन में कोई किसी का दुखड़ा नहीं सुनता। फिर भी कवि का दुःख तीव्र होता है और वेदना का आधिक्य उन्हें सनकी सा बना देता है। इस निष्ठुर संसार से अपना नाता तोड़ने को वे उद्यत हुए। दुखातिरेक से पत्थर बना मेरा हृदय निर्मम होकर जीवन का अन्त करना चाहता था कि अगले क्षण में किसी अज्ञात शक्ति ने मुझे उससे विरत कर दिया।[2] बाहर से कवि शांत रहे, किन्तु मन की पीड़ा बहुत गहरी हो रही थी। "अपने पूर्वजन्मकृत पुण्य-परिपाक से बड़े यत्न से अर्जित पूँजी (प्रियतमा) छः फुट धरती में विलीन हो गयी। प्रभात होते-होते प्रदोष आ गया। अपनी भावना से संगठित मेरे भविष्य रूपी रथ को किसी ने चकनाचूर कर दिया।[3] जगत् शून्य-सा लगा,

---

1. कवि के तीव्र दुःख का स्मरण करते हुए उनकी भागिनी बालामणियम्मा का कथन है "उनका दांपत्य अनोखा था। ऐसा लगा कि घर के वातावरण से अलग सुदूर अपने अलग स्वर्ग में वे रहते थे। कण्णुनीर्त्तुल्लि में इस दांपत्य जीवन सुख की छायामात्र है पत्नी की मृत्यु के बाद मामा जल्दी दौड़ आये और कुर्सी में गिर कर ज़ोर से रोने लगे। मामा का रोदन सुन मैं परिभ्रांत हुई। तभी मैं ने जाना कि पुरुष भी रोएगा। मेरा यह विचार था कि किसी भी परिस्थिति में पुरुषवर्ग रोएगा नहीं।" नालप्पाटन्टे पद्यकृतिकल, पृ.32
2. कण्णुनीर्त्तुल्लि, पृ.10-5
3. वही, 11 श्लो 1-2

वह निर्दय शैतान सा दाँत दिखाता रहा । इस शून्यवातावरण में पत्ता भी नहीं हिलता । वृक्षलतादि और सारी प्रकृति पहले सुख प्रदान करती थी तो अब वे सब नग्न सी होकर हृदयहीन दिखाई पड़ी । वे जलते अंगारे पर बैठते थे, एकाकी बनकर दीन भाव से चारों तरफ आश्वासन के लिए दृष्टि डाली तो गुफा सी लगी, बेचैन हो कर ऊपर देखे तो अनन्त आकाश ही सुदूर देख सके । इस परिस्थिति में अपने भविष्य पर सोच शंकाकुल होने लगे । रात के अंधकार में घंटों आसमान की ओर देखते रहे, । अल्प समय के पहले जिस जगह को स्वर्ग समझते थे, अब वहीं स्थान नरक प्रतीत हुआ । जो दुनियाँ एक फुलवारी-सी लग रही थी । वृक्षलतादि आनंद से नृत्य कर रही थी, वह अब श्मशान सी शून्य तथा भीतिद लगने लगी । अपने तीव्र दुःख से मुक्त होने की इच्छा से कवि चिंतन का सहारा लेना चाहते हैं । उसके शुष्क हाथों से कवि अपने आँसू पोंछने को कहते हैं । गंभीर तत्वचिंतन पर प्रापंचिक गति विगति का वे मंथन करने लगे ।

तत्वचिंतन

अपनी जीवन संगिनी के चिरवियोग से उद्भूत दुःख के असह्य बोझ को हल्का करने के लिए दार्शनिक कवि प्रपंच की ओर दृष्टि डालते हैं । हृदय की अनुत्तरित पुकार का उत्तर प्रापंचिक सत्य में वे ढूंढने लगे । कवि जगत् के चिरन्तन स्वभाव का निरीक्षण करते हैं ।

---

1. कण्णुनीर्त्तुल्लि, पृ. 12-13, श्लोक 3-7

"इस गोलाकार विश्व की घुमाव-फिराव का मार्ग अनन्त, अज्ञात और अवर्णनीय है । इसके एक कोने में बैठकर मानव क्या देखता है और क्या समझता है[1] ।" प्रेम भरे मानव हृदय रूपी सोने को न जाने किसलिए विधाता आँसू में तपाकर, गलाकर और डुबाकर उज्वल बनाते हैं[2] । प्रत्येक व्यक्ति अपनी वैयक्तिक पीडा को हृदय में छिपा रखता है । यही नहीं, अचेतन हो, चेतन हो सभी सुख पर ही दृष्टि डालते हैं । अगर प्रसंगवश दुःख देखने पर भी अनदेखे रहते हैं । कवि दुःख सह कर उसका सामना करने का धैर्य पा लेता है । इसलिए जितना चाहे विपत्ति का बोझ उनके सिर पर डालने के लिए दुर्विधि को चुनौती देता है । उसे मंगलमय विश्व काकोल सा प्रतीत होता है इसलिए कि रंगीन अनंत आकाश में पंख फैलाकर उडने जा रहे थे कि पंख कट गये । लोकविरक्ति की भावना ज़ोर पकडने लगी । जीवन के मधु चषक में हलाहल भर गया । अतः जीवन एवं प्रपंच के कटु सत्य से समझौता करने का आग्रह जाग उठा । पल भर में सब चौपट हो गये इसलिए वे सोचते हैं । नश्वर वस्तुओं को मिलाकर जिसका सृजन होता है वह शाश्वत नहीं । इसलिए मन में यह शंका होती है कि जो कुछ इस अनन्त ब्रह्माण्ड में देखे जाते हैं - वे सब मूल्यहीन हैं क्या ? अलौकिक वैकुंठ सुख भी नित्य नहीं ? विधि ने शाश्वत विरह प्रदान किया । फिर भी मन से वे जन्म-जन्मान्तर में भी दंपति हैं । मृत्यु उनको अलग नहीं कर पाती । अपनी आत्मपीडा का शमन तत्वचिंतन में ढूँढने से श्री·ए·पी·पी· नम्पूतिरि ने कहा है कि कवि तत्वचिंतन के शास्त्रालय में उचित शस्त्र ढूँढता है[3] ।"

1· कण्णुनीर्त्तुल्लि, पृ·4 श्लोक 7

2· वही, पृ·8-4 6

3· वही, पृ·123

तीव्र जलधारा को सेतु बाँधकर रोकने का जो प्रयास है, वही प्रयास काव्य में देखा जाता है, एक ओर कवि के प्रेमिल मन से दुःख की तीव्र धारा प्रवहित होती है, दूसरी ओर कवि का दार्शनिक मन उसे रोकने के लिए चिंतन का बाँध करना चाहता है। बाँध की एक छोर ठीक हो जाते ही दूसरी ओर तेज़ धारा में टूट जाती है। बालू तट पर खेलते बच्चे की भाँति कवि भी अपने दुःखों की ढेर एक ओर बाँध रखते हैं तो बनते ही वह बिगड जाता है। श्री• कुट्टिकृष्ण मारार का कथन इस संदर्भ में ध्यातव्य है। "यह शोककाव्य चिरंतन तत्वज्ञान की ओर घूर कर दृष्टि नहीं डालता, उल्टे उस पर देखने के बाद की प्रतिक्रिया मात्र है[1]।

गुणस्तवन

दांपत्यजीवन की गंभीरता एवं दंपतियों के संबंध की घनिष्ठता पर भारतीय जीवन में बडी मान्यता है। जब पारिवारिक जीवन-संगीत में स्वर-भंग होता है, वैयक्तिक जीवन में भी बाधा उपस्थित होती है। कण्णुनीर्त्तुल्लि में वह मधुमय संगीत कवि की आत्म सखी के आकस्मिक निधन से सदा के लिए रुक जाता है। अपने शून्य, शुष्क एकांत जीवन के पतझड में बैठ कर कवि भूतकाल में डुबकियाँ मार कर वहाँ से मोती चुन लेता है। उसे देखते देखते उनके मन की कसक बढ जाती है। फिर भी उसे देखे बिना नहीं रह सकते।

1• कण्णुनीर्त्तुल्लि भूमिका, पृ•7

बचपन की सहेली कौमारावस्था तक पहुँचते ही कवि की प्रेमिका बनने लगी थी । सामाजिक मर्यादा के बंधन में वे जकड गये । उस परम अनुराग की सफलता के लिए वे अपनी प्रेमलता को अपने नयन नीर से सींच-सींच, दुःखातप से उड फैला आखिर दांपत्य से खिला भी दिया । तब गार्हस्थ्य जीवन के व्यापक भाव के बदले कवि अपनी जीवन संगिनी के साथ अपना एक अलग, छोटे संसार की सृष्टि कर लेता है, जहाँ वे है, उनकी प्रियतमा है, आसक्ति बच्चा है । धर्म-पत्नी के रूप-गुण से वे इतने प्रभावित हुए कि स्वर्गीय सुख भी इसके सामने तुच्छ है । दस महीने से दस जन्म का जीवन जिए । पत्नी का पैर जब भारी हुआ तो विजय गर्व उसके मुख पर भी झलकने लगा[1] । अनुराग के दिनों की कष्टताएँ वे भूल गये, यही नहीं वे सब पुलकदायक थीं । गर्भस्थ शिशु के सुमन-स्निग्ध कपोलों पर मनोमुख से चुम्बन करनेवाले जननी-जनक का वात्सल्य वर्णन की चीज़ नहीं, अनुभव जन्य है । दिवा-रात्रि की भांति करवट ले उठनेवाली असंख्य आशायें अभिलाषाएँ निर्दय विधि की उँगली के इशारे निर्मूल हो गयीं । सौभाग्य के गाढालिंगन से वे एक दम हटा दिए गए । बाँध तोड कर बह निकले शोक धारा में कवि बह गये, फिर मुश्किल से बच निकल आये । पैर फिसल कर वे नीचे गिरने लगे थे कि तत्वचिंतन के सहारे उठ खडे हो गये । किंतु दुःख का शमन असाध्य हो गया । इसलिए डॉ॰ लीलावती कहती है कि "कण्णुनीर्त्तुल्लि दुःख की भट्टी है, अनर्गल धारा नहीं । यह शोक काव्य बाहर से अतीव शांत दिखाई देने वाली धरती के गलते हृदय की याद दिलाती है[2] ।

1· कण्णुनीर्त्तुल्लि, पृ॰37-6

2· कण्णीरुं मषविल्लुम - डॉ॰एम॰लीलावती, पृ॰79

दु:खाग्नि में तप कर कवि दु:ख का साधारणीकरण कर देते हैं । उनका कथन है कि "ज़िन्दगी पर दृष्टिपात करते समय मुझे ऐसा लगता है कि सभी ज़िन्दगी का यही परिणाम है । उसने मुझे यही पाठ पढाया ।"[1]

काव्य आद्यन्त इतना प्रभावात्मक है कि पाठक उनकी स्तुति करके कहेगा कि सखा हो तो कवि जैसा, प्रेमी हो तो कवि जैसा, पति हो तो सो भी उसके समान, विधुर हो तो वह भी उसके समान होना चाहिए । क्योंकि दु:ख की चिलचिलाती धूप को सह कर, विषाद का कड़ुआ पेय पीकर, मन में भभकती ज्वालामुखी को दबाकर अपने मन मन्दिर में प्राणप्रिया की मूर्ति की प्रतिष्ठा करनेवाले वे सच्चे प्रेम धनी है ।

निष्कर्ष

नालप्पाट्ट् नारायण मेनोन उच्चकोटि के सहृदय कवि है । उनके विलापकाव्य कण्णुनीर्त्तुल्लि का मलयालम के शोककाव्यों में महत्त्वपूर्ण स्थान है । उनका दांपत्यजीवन अनोखा था । उनका यह विधुर विलाप पाठकों को करुणा में डुबो देता है । सुकुमार पदावली की मोहक योजना काव्य को प्रभावी बना देती है ।

---0---

1. ज़िन्दगी मेरी दृष्टि में - नालप्पाट् की पद्यकृतियाँ, पृ.326

ओरु विलापम् (एक विलाप)

मलयालम की शोकगीत धारा के आदिकालीन काव्यों में उल्लेखनीय कृति है, वी॰सी॰ बालकृष्ण पणिक्कर का "ओरु विलापम्" । इसके पहले भी प्रिय जन वियोग पर वैयक्तिक वेदना को संवलित करनेवाली रचनाएं हुई हैं, किन्तु अंग्रेज़ी एलिजी के समकक्ष ठहरनेवाले शोककाव्य का श्रेय "ओरु विलापम्" को ही प्राप्त हुआ है ।

विषूचिका के आक्रमण से अपनी प्रेयसी के आकस्मिक निधन से उद्भूत कवि के तीव्र दुःख के उद्गारों की यह मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति है । इसमें प्रिया की मृत्यु के बाद आधी रात से होकर प्रभात तक की घटनाओं का प्रभावशाली वर्णन किया गया है ।

विषयवस्तु संग्रह

आधी रात का समय है । अमावस्या के घने अंधकार में समस्त प्रकृति डूब गई है । मूसलधार वर्षा हो रही है । कुत्तों का भौंकना, लोमड़ी का भूंकना उल्लू की चीख, झिल्ली की कर्णकठोर झंकार आदि से वातावरण अत्यन्त भयानक लगता है । लेकिन इस भीतिद अंतरिक्ष-अप्रभावित होकर एक 19 वर्षीय युवक अपनी प्रिया के मृतशरीर को गोद में लिटा कर एक टिमटिमाते दीपक के सामने मग्न-सा बैठा है । बीच-बीच में उसके मुख पर प्रेम, विभ्रान्ति, सन्ताप, भय, निराशा आदि भाव झलक उठते हैं ।

घण्टों निश्चेष्ट, निस्तब्ध बैठने के बाद वह किंचित् सजग हुआ । प्रेयसी के मृतदेह को छाती से कसकर पकड़ते हुए वह गद्गद् कंठ से कुछ बड़बड़ाने लगा । दान, दयादि शीलगुण संपन्न, प्रेम की मूर्ति, मेरी जीवनाधार ! तेरा परलोक-पथ शुभ और शांतिपूर्ण हो जाय । इस धरती पर तेरा पावन गुण तथा तेरी विमल स्मृति ही अमर रहे । तू वहाँ स्वर्ग के नंदनवन में सम्मानपूर्वक परियों के साथ कल्पवृक्ष की सघन-शीतल छाया में बैठ कर सुगन्धी हवा खाकर, मन्द्र मधुर संगीत सुनकर सन्तुष्ट हो जाय । तुझे खुश करने और मेरी इच्छा से प्रेरित होकर मैं कुछ बताता हूं, किन्तु मरणोपरान्त की स्थिति ठीक-ठीक कोई नहीं जानता । उसकी स्वर्णिम कल्पना ऊहा के बल पर लोग करते हैं । धर्म के आचारों और मान्यताओं के बल पर

निर्णय लेना भी कठिन है, क्योंकि विभिन्न धर्म के विभिन्न विचार एवं तत्व बनाये रखते हैं । अथवा अगर धरती पर ही स्वर्ग की कल्पना करें तो सही, हम बड भागी हुए । स्वर्गतुल्य आमोद-प्रमोद में हम रहे । स्वर्गीय आनंद हम इस छोटी अवधि में ही भोग चुके । अगर पुनर्जन्म संबन्धी मान्यताएं सच निकलें तो अगले जन्म में इसी प्रकार हम-तुम मिल कर रहे, तब पूर्वोपरि आनंद क्रीडाओं में लगे रहकर खुशी मनावें चाहे वह अवधि ह्रस्व क्यों न हो । हम दोनों अपनी अलग दुनिया में मोद से रहे । तू ने अपने रूप सौभाग्य या जवानी से या अपने भावविभोर गानों से युवजन मन को भावविह्वल करने का यत्न नहीं किया । इसलिए भले ही दुनिया तेरी प्रशंसा नहीं करती, संसार में तू अज्ञात रही, फिर भी तू ने प्रेम की जो सीख दी, वह चिर नूतन रहेगी ।

आगे प्रेयसी में छिपी महिमा की तुलना कवि ने समुद्र गर्भ में छिपे रहे रत्नराशियों से तथा वनान्तर में अनजाने खिले और झडे अनाघ्रात कुसुमों की व्यर्थ होनेवाली मधु मरन्द तथा सुगन्धी से की है[1] ।

प्रेयसी के महान् गुणों पर कवि पुलकित हो जाते हैं । उसकी शालीनता, उसके कुलीन प्रेमिल एवं स्त्रियोचित व्यवहार, उसके मुग्ध सौंदर्य आदि की रोमांचकारी स्मृतियों में वह खोया से बैठ जाता है । कवि कहते हैं कि शायद तुझ में राणी पद्मावती की प्रेम-स्थिरता, रानी लक्ष्मीभाई की वीरता तथा सरलादेवी का वाग्विलास विद्यमान है । किन्तु फरक इतना है कि प्रेमिका के

---

1. ओरु विलापम् - वी.सी.बालकृष्ण पणिक्कर, वी.सी.कृतिकल, पृ.7।

गुणों का पता दर्शन मात्र से नहीं मिलेगा । उसके साथ होनेवाले व्यवहार से ही पाना जा सकता है । "निष्ठुर काल ने कठोर आघात से तुम्हें निस्पन्द बना दिया जिससे तुम्हारी आँखों की छवि निस्तेज हो गयी । प्रेयसी काल कवलित हो गई[1] । जनि-मृति पर सोचकर परेशान हो कर कवि को ऐसा लगता है कि प्रापंचिक रहस्यों की खोज कर उसका उद्घाटन करना कठिन अवश्य है । "संसार रूपी रंगमंच तथा "नररूपी नट" क्या स्थिति होती है ? रक्त-मांस-मज्जास्थि निर्मित यह मृण्मय शरीर कहाँ है ? इसकी क्या स्थिति होगी ? क्या यह मर्त्यजन्म उतना उत्कृष्ट है जितनी इसकी प्रशंसा हम करते हैं[2] ?"

कवि मृत्यु की अजेयता पर आगे चिंतन करते हैं । सेनापति की अमोघ तलवार, चक्रवर्ती का राजदंड इन दोनों के सामने मृत्यु की शक्ति अपराजेय रहती है । इस प्रपंच की गति-विधि कोई रोक नहीं पाता । सब प्रकार की लौकिक महिमा युवत्व कवित्व, धन-संपत्ति कीर्ति विद्वत्ता स्थान-मान सामर्थ्य प्रताप-इत्यादि सब कुछ अन्त में मिट्टी में मिल जाते हैं ।

कवि की दृष्टि एक साधारण फूल पर पड़ती है । सूर्य की उष्मल किरणों का स्पर्श पाकर अपने क्षणिक जीवन पर सोचे बिना आनन्दविभोर होकर डंठल पर इतरा कर सुशोभित सद्यविकसित गुलाब का फूल अपने आगे की शोचनीय स्थिति पर सोचता नहीं । चन्द्रिका चर्चित रातों में उल्लास में झूमनेवाले

---

1. ओरु विलापम् - वी.सी.कृतिकल - वी.सी.बालकृष्ण पणिक्कर, पृ.72

2. वही, पृ.73

चमेली का फूल दोपहर में सूख कर झड जाता है । अपनी सुगंधी मधु, राग-रंग सब कुछ संसार को समर्पित करके वह सूख जाता है । लेकिन इन पर कौन आँसू बहाता है ? केवल, प्रकृति माता ही अपनी संतान के नष्ट पर ओस बूँद के मिस आँसू बहाती है । ऐसे दार्शनिक विचारों से कवि आश्वस्त नहीं होते । अगर कांताविरह में क्लांत मेरा तत्वचिंतन का ज्ञान-प्रकाश विरह रूपी स्याही लग कर तेजहीन हो जाय तो शास्त्रार्थ के लिए योगदंड धारण करने वाले तथाकथित योगियों का काषायवस्त्र उग्रवासना रूपी अग्निज्वालाओं को छिपाने में कहाँ तक समर्थ रहेगा ?

पातिव्रत्य की मूर्ति कवि की प्रिया का शरीर आगे हिलेगा ही नहीं । इस सच्चाई से सामंजस्य पाने की चेष्टा करनेवाला कवि का मन संसार रूपी सागर में डूबता-उतरता है । कवि की ज़िन्दगी के आगे का रास्ता बन्द हो गया । कवि का हृदय सागर भावों की आँधी उड चलने से ज्यादा प्रक्षुब्ध है । वह तन-मन से चकनाचूर हो जाता है ।

प्रेमिका अत्यन्त ललित जीवन बिताती थी । वह मनस्विनी सद्गुणों से सम्पन्ना थी । अकृत्रिम सुन्दरता से उसका रूप बडा मोहक लगता था । आत्मा का तेज मुखमंडल को प्रभापूर्ण बना देता था । यह अपूर्व शोभा ही उसका आभूषण थी । सोने में सुगन्धी-सी ममता की वह मूर्ति सब प्रकार अनोखी थी । यह सब पुन: पुन: सोच प्रेमी कवि अपना दु:ख सह नहीं सकता । उसकी अब की स्थिति ऐसी है - "आँखों में आँसू भर आने से कुछ भी दिखाई नहीं पडता । दीर्घनिश्वास की गर्मी लगकर

अधर सूख गये हैं। मृगनयनी ! कांटों से भरा मेरा रास्ता बहुत दुर्गम लगता है। दिन टूट जाने पर कैसे ज़िन्दगी काट सकूं।"

अपने शून्य एकाकी जीवन की कल्पना करते हुए कवि का कथन है कि कल सुबह होते ही प्रेयसी की मृत्यु का समाचार घंटा नद्दस्वर सुदूर फैल जायगा तब मैं एकाकी होकर एक प्रेतात्मा की तरह आंगन में खड़ा रहूंगा। प्रेयसी की करुणा सारी प्रकृति पर बरस पड़ती है। उसकी करुणा हवा बन कर कैथ के फूल का आश्लेषण करती है, किंतु यह देख कवि को ऐसा लगता है कि वह फूल कवि का उपहास कर रहा हो।

अपनी प्रियतमा का शरीर जब राख बन जिस श्मशान में रहे, वहाँ प्रवेश करते समय सूर्य की किरणें भी अपने को धन्य मानेंगी कि ऐसी करुणामयी के राख का स्पर्श करने का सौभाग्य उन्हें मिला है।

अंत में कवि यह सोचकर आश्वस्त होते हैं कि प्रभात होते-होते पक्षि-गण अपने चहल पहल द्वारा भगवान की महिमा का गान करें तो वह शोरगुल खिड़कियों द्वारा प्रेयसी के कमरे तक पहुँचे तो प्रेयसी की नींद न खुलेगी। उदय सूर्य की किरणें खिड़की से होकर उसके मुख पर पड़े तो भी उसकी निद्रा का भंग न होगा, क्योंकि नियति के नियोग से उसकी आँखें सदा के लिए बंद हुई है।

---

1. ओरुविलापम् - वी.सी.कृतिकल - वी.वी.बालकृष्णपणिक्कर, पृ.76-77

वैयक्तिक जीवन का आत्मव्यंजक संस्पर्श ने इस शोक काव्य को आद्यन्त सुन्दर बना दिया है । कवि के एकाकी, उदास, विषण्ण, विवश और संघर्षमय दिल की झलक प्रति पंक्ति में मिलती है ।

हृदय की अतल गहराई से आनेवाली करुण पुकार

अर्धरात्रि के डरावने वातावरण में अपनी प्रेयसी के चेतनहीन शरीर को गोद में लिटा कर बैठनेवाले कवि की निस्सहाय एवं निराशाजनक विलाप शिला को भी पिघलानेलायक होता है । घनीभूत पीडा उसके तन, मन, बुद्धि, हृदय एवं आत्मा को शकलीकृत करती है । मृतिहीन स्मृति अपने तीक्ष्ण दंशन से उसे सता रही है । उस बेचारे विधुर की ऐसी स्थिति है कि मस्तिष्क में स्मृतियों का घना बादल छा जाता है, जिससे सोच-विचार की उसकी क्षमता नष्ट हुई । नसों में बिजली का संचार होने-सा लगता है । तप्तनिश्वासों के साथ आंखों से आंसू झर-झर आते हैं । हे मधुवाणी ! तेरी विरह-व्यथा से मेरा हृदय अत्यन्त क्षुब्ध हो रहा है । इस वियोग व्यथा रूपी आंधी के बह निकलने के कारण कवि का हृदय एक दम टूट गया है ।[1]"

प्रेयसी के निश्चेष्ट शरीर को कसकर पकड कर अर्धरात्रि की एकांत वातावरण में विषूचिका ग्रस्त उस गांव के एक घर में अकेला वह बैठता है । वह विधुर के मन में प्रियतम के साथ मर जाने की इच्छा प्रबल होती है । "उसका आग्रह भवरूपी

---

1. ओकविलापम् - वी·सी·कृतिकल - वी·सी·बालकृष्णपणिक्कर, पृ·76

जंजीर में जकड कर यमलोक के दरवाज़े तक जाकर वापस आता है । किन्तु प्रिया के बिना उसका जीवन भी अत्यन्त दुर्वह होता है[1] ।" प्रिया की यादें उसके मन मे हरी-भरी रहती हैं । फिर भी अपनी अर्धांगिनी के वियोग से वह शोक की अग्नि में प्रतिपल गलता रहता है । शरीर सूख जाता है । रो-रोकर आँखों का प्रकाश फीका पडा । शरीर दुबला-पतला हो गया । मृत्यु पर्यंत जीविका चलाने के लिए कठिन यत्न भी करना पड़ता है[2] ।"

गुणकथन

कवि की प्रेयसी उसकी "प्राणनाडी" थी । उसमें स्त्रियोचित सभी गुण मौजूद थे । वह मानिनी थी, सादगी, सत्य, दया, अहिंसा, प्रेम, दानशीलता आदि समस्त गुणों से विभूषित थी । उसके शील के अनुरूप था उसका सौंदर्य भी । चंपा के फूल-सा उसका मनोज्ञ रंग था । कवि की दृष्टि में वह पातिव्रत्य रूपी पताका का धागा थी । दुर्विधि की शक्तिशाली हवा में वह धागा टूट गया । आभूषणों से रहित केवल चंदन का तिलक मात्र लगाकर सुशोभित वह उज्ज्वल मुख-मंडल अब स्मरण मात्र बन गया । "प्रियविरह रूपी सागर की लहरें इतनी प्रचंडता से लहरें मारती हैं, जिनके आघात लगने से

---

1. औरुविलापम् - वी.सी.कृतिकल - वी.सी.बालकृष्णपणिक्कर, पृ.75

2. वही, पृ.77

कवि का चित्त चूर-चूर हो गया है।[1]" कवि ने अपने हृदय की संचित व्यथा उड़ेल कर रख दी है। भले ही वह चल बसीं किन्तु उसके सारे गुण अमर रहेंगे। उसकी करुणा केवल जीव-जन्तुओं तक सीमित नहीं थी; सारी प्रकृति पर बरसती थी। एक बार, वह याद करता है, बगीचे के केले के पौधों को झंझावात ने कंपाया था तो प्रियतमा खुद उन्हें अपने हाथों से सहला कर पानी चढा कर शोकनिवारण करती थी। उस करुणामयी का शरीर राख बन कर जहाँ वर्तमान है उस स्थान में आकर चन्द्रकिरणें भी स्वयं अपने को धन्य मानेंगी[2]।"

प्रभात होते ही एक प्रेतात्मा जैसे बाहर आनेवाले नायक का रूप सहृदय पाठक कभी भूल नहीं सकता। एकाकीपन के दारुण कष्ट की झलक उसके इस उद्गार में पाता है "मेरे वियोग व्यथा से उनींद रह पीले पड़े, विवर्ण होकर आँगन में अकेले खड़े होनेवाले मेरे मुख का अपने रंग से सादृश्य देखकर सेंघ का फूल व्यंग्य की हंसी हँसेगा। एकाकी मेरा भविष्य अन्धकारपूर्ण रहेगा। शेष जीवन में मैं अकेला रह गया[3]।"

कवि रह-रह कर उसके एकनिष्ठ प्यार की याद करता है। जब वह जीती रही तब उसने अपने हाव-भावों से दूसरों को अपनी ओर आकृष्ट करने का यत्न कभी न किया। वह अज्ञात रहना चाहती थी। कवि सोचते हैं कि अपनी प्रियतमा जैसे कितने

---

1. ओरुविलापम् - वी.सी.कृतिकल - वी.सी.बालकृष्णपणिक्कर, पृ.76

2. वही, पृ.78

3. वही, पृ.77

गुणी लोग इस दुनिया में अज्ञात, अप्रसिद्ध रहते हैं । उदाहरण स्वरूप वे कहते हैं - "सागर की अतल गहराई में अमूल्य रत्नराशि भरी पडी है । घोर वन के अंदर हवा के झोंके लगकर कितने सुगंधी फूलों के मधु और मकरन्द विफल हो जाते हैं ।"[1] निष्ठुर काल ने अपने निर्दय हाथों से प्रियतमा का भी हरण किया ।

तत्वचिंतन

इस शोककाव्य में भी कवि तत्वचिंतन का सहारा लेता है, दु:खमोचन या दु:ख शमन का उपाय स्वरूप नहीं, "कवि के गरम आँसुओं से तथा तप्तनिश्वासों से तत्वचिंतन का "हिम" पिघलकर उसके दु:ख सागर में जल ज्यादा बढ आता है ।"[2]

मृत्यु की अजेयता पर यह कवि भी गंभीर चिंतन करता है । उसकी राय में सेनापति की अचूक तलवार तथा सम्राट का राजदंड मृत्यु के अधृष्य प्रभाव के सामने निष्प्रभ हो जाते हैं । प्रपंच की गतिविधि को रोकने का सामर्थ्य किसी में नहीं । संसार रूपी रंगमंच पर नर रूपी नट धन, स्थान, मान आदि के लिए प्रयत्न करता है । इन सबके पाने पर भी अन्त में सब विश्व प्रकृति में विलीन हो जाते हैं । अपने डंठल पर हवा के परिरंभण में, दल संपुट में निश्चिंत रहनेवाला फूल अपने दारुण पतन पर सोचता नहीं । प्रेयसी के साथ सुख भोग में लगे रहते समय कवि का ध्यान ऐसे दारुण वियोग की ओर नहीं जाता था । कवि का कथन है कि

---

1. ओरुविलापम - वी.सी.कृतिकल - वी.सी.बालकृष्णपणिक्कर, पृ.71

2. विद्याभिवर्धिनी - ऐ.एस.मेनोन, लेख - ओरुविलापम्, पृ.60-61

"वियोग दुःख से प्रताड़ित उसे देख प्रभात में हवा के आश्लेषण में मग्न रहनेवाला केथका फूल भी उसका उपहास करेगा।[1]" किंतु प्रियतमा स्वर्गकुमारियों के साथ स्वर्ग के नन्दनवन में बैठ हवा खा कर संगीत सुनकर खुशी मनायगी। प्रियतमा परलोक में सुख से जीने की कल्पना उन्हें तुष्ट बना देती है। वह इस में भी संतुष्ट है कि चाहे स्वर्ग या नरक है या नहीं, इस दुनिया में चाहे हृस्वकाल के लिए ही हो वे स्वर्गीयानन्द अनुभव कर रहे थे। उन अपूर्व अमर क्षणों में वह जीता रहता है। अब प्रियतमा को कोई भी बात अस्वस्थ नहीं बना देगी कि उसकी आँखें नियति नियोग से चिर मुद्रित हैं

इस शोककाव्य की भावतीव्रता पर दृष्टि डालकर मलयालम के प्रसिद्ध आलोचकों ने इसकी बड़ी प्रशंसा की है। इसकी अनुभूति तीव्रता पर दृष्टि डालकर डॉ॰लीलावती का कथन है - "एक मन्द्रगंभीर घण्टानाद की तरह अनुरणन करनेवाली उसकी अनुभूति की मंद्रध्वनि अब तक मलयालम कविता में सुनी गयी अन्य ध्वनियों से सर्वथा भिन्न है[2]।"

इस शोककाव्य की मार्मिकता के बारे में श्री॰पी॰ के॰ परमेश्वरन् की राय भी इस संदर्भ में ध्यातव्य है। "कवि के जीवन से इसका क्या संबन्ध है, इसके बारे में निश्चयपूर्वक कुछ कहना कठिन है, तो भी वी॰सी॰का ओरुविलापम जैसा

1· ओरुविलापम् - वी॰सी॰कृतिकल - वी॰सी॰बालकृष्णपणिक्कर, पृ॰77

2· कण्णीरुम् मषविल्लुम - डॉ॰एम॰लीलावती
एलिजी और वी॰सी॰का विलाप, पृ॰46

आत्मनिष्ठ एवं भावपूर्ण एक शोककाव्य की रचना इसके पहले किसी ने नहीं की है ।[1]"

प्रियतमा के निधन के बाद उसके निश्चेष्ट शरीर को गोद में लिटा कर रात बिता देने का वर्णन संक्षिप्त रूप में 27 श्लोकों में किया गया है । यह काव्य जितना संक्षिप्त है उतना भावविभोर बन गया है । जैसे एक छोटी तंग नली से जल का प्रवाह बहुत तेज़ हो जाता है वैसे ही यह शोककाव्य जितना संक्षिप्त है उतना भावतीव्र बन पडा है । इस पर ज़ोर देते हुए प्रशस्त आलोचक कुट्टिकृष्ण मारार कहते हैं कि "दिवंगत आत्मा के प्रति प्रिय के मन में यही भाव निर्भर होता है कि "मेरे जीवन में तुम जिओ । तुम्हारी आशायें, अभिलाषायें आगे मेरे हृदय से होकर मांग लो, मेरे हृदय की अतल गहराइयों में अतीव निगूढ रूप में मैं ऐसा विश्वास करता हूं कि तुम आज मुझमें, मैं बन गये हो । अतः मेरी जिन्दगी द्वारा तुम जिओ[2] ।"

तत्वचिंतन से यह शोककाव्य ज्यादा भावगंभीर बन गया है । दुःख का साधारणीकरण करने के बदले इसका दुःख ज्यादा वैयक्तिक है । वैयक्तिकता की तुला पर सौ फी सदी तोलने के कारण पूर्णतः यह एक विधुर का विलाप है ।

1· मलयालसाहित्य चरित्रम् - पी·के· परमेश्वरन्, पृ·187

2· राजांकणम् - हमारे विधुर विलाप काव्य - कुट्टिकृष्ण मारार, पृ·124

मलयालम साहित्य के श्रेष्ठ इतिहासकार श्री·उल्लूर एस·परमेश्वरय्यर ने दिल खोलकर इसकी प्रशंसा यों की है - "विश्वसाहित्य के किसी भी खण्डकाव्य के समकक्ष इसे रखा जा सकता है। शब्द सौंदर्य, अर्थसमृद्धि, तत्वचिंतन की गंभीरता, भावतीव्रता, रसनिर्भरता इत्यादि एक सरस काव्य के लिए उपयुक्त सभी गुण इसमें है। ऐसा एक वाङ्मय मलयालम में विरले ही मिलता है। ऐसा लगता है कि श्री·पण्णिक्कर इसकी रचना करने बैठते समय वाग्देवी उनपर अनुग्रह वर्षा करती रहीं[1]।"

निष्कर्ष

वी·सी· बालकृष्ण पण्णिक्कर का एक विलाप नवयुग का उद्घाटन करता है। इस काव्य का विषय प्रियतमा का आकस्मिक निधन है। मलयालम की सुन्दर और मर्मस्पर्शी शोककाव्यों में इसकी गणना की जा सकती है।

****

1· केरल साहित्य चरित्रम् - भाग 5 - उल्लूर एस·परमेश्वर अय्यर, पृ·165

वीणपूवु (झडा फूल)

मलयालम की स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा की प्रारंभकालीन कृतियों में सुविख्यात "वीणपूवु" काव्य विषय की दृष्टि से उत्कृष्ट शोकगीत है । इसके रचयिता ख्यातिप्राप्त कवि कुमारनाशान् है । एक झडे हुए फूल की दीनावस्था के दर्शन से अपनी भावात्मक प्रतिक्रिया को ही इस काव्य में अभिव्यक्ति मिली है । इस प्रतिस्पन्दन में फूल के झडने का दुःख, पार्थिव जीवन का क्षणिकताबोध और उससे प्रेरित जीवन और अस्तित्व संबंधी तत्वचिंतन आदि अभिव्यजित है । इस तत्वविचार में फूल की अस्तित्वहीनता से उत्पन्न वैयक्तिक दुःख का सामान्यीकरण करके कवि उसे उन्नत दार्शनिक स्तर पर ले जाते हैं और अपनी आस्तिक-आध्यात्मिक चित्तावस्था के अनुकूल शान्तिस्थ हो जाते हैं ।

वर्ण्य विषय

वीणपूवु का वर्ण्यविषय, जैसे शीर्षक से ही स्पष्ट है, एक झडा हुआ फूल है । "पुष्प के मुर्झाकर झड जाने पर उसके प्रति संवेदनशील कवि के भावुक हृदय में तरंगित करुणापूर्ण

भावनाओं की अनुभूत्यात्मक अभिव्यंजना ही यह काव्य है[1]। पुष्प की पतितावस्था के दृश्य ने न जाने कवि के अंतरंग को कितनी गहराइयों में उथल-पुथल कर डाला ? मुर्झाए हुए फूल की वर्तमान अनाकर्षक सूरत और मूरत के गर्हणीय दर्शन पर उसके पूर्व वैभव के "अधिक तुंग पद" का स्मरण किए बिना कवि रह न सके । इन दोनों अवस्थाओं का वैरुध्य और उनके बीच की अवधि की ह्रस्वता दोनों कवि के लिए इतने दृढ सत्य बन जाते हैं कि पुष्प ने अपने छोटे जीवन काल में जो प्यार, दुलार, संतोष, सौंदर्योत्कर्ष, आकर्षण एवं चैतन्य प्राप्त किए थे, सब कवि के स्मृतिपटल पर सजीव उपस्थित हो जाते हैं ।

प्रकृति का दुलारा फूल

प्रकृति माता का लाडला बन कर जन्मे फूल के शैशव, बचपन व यौवन के दिन कितने आनन्दमय रहे ! कवि याद करते हैं - "लता ने उसने कोंपल में रख कर कितने ही प्यार से उसकी देख-रेख की । कितनी बार डाली के पालने में लिटा कर हवा ने मर्मर की लोरियां गा-गाकर सुलाया था । रात ने ओसरूपी मोतियों से उसे अलंकृत किया । उपवन में झुला कर नित नव अठखेलियां करके दिनों को काटने में कितना मज़ा आता था । दुग्ध-धवल, स्निग्ध शीतल चन्द्रिका में स्नान और हल्की धूप में अन्य कलियों के साथ खिलवाड - सब फूल के बचपन के आनंद थे[2]।

1· उल्लूर एस· परमेश्वरय्यर - केरल साहित्य चरित्र, भाग - 5 पृ·321

2· वीणपूवु - श्लोक 3 - कुमारनाशान्टे पद्यकृतिकल, भाग - 1, पृ·205

फूल का दीप्तिमान स्वरूप

प्रकृति का हर चराचर उसकी सखी सहेली बना। पक्षियों ने उसे गाना सिखाया, नक्षत्रों से लोक-तत्व ग्रहण कर लिया। उभरते यौवन की सुषमा में झूम उठा। प्रेम की नवल भावनाओं ने उसे आंतरिक दीप्ति, शारीरिक कांति एवं हृदय-तारल्य से मंडित किया[1]।

रूप रंग में आए परिवर्तन ने उसके मुख को अपूर्व शोभा प्रदान की। उसकी अनुपम सुषमा हर किसी के हृदय को हरा लेने में समर्थ थी - चाहे वह वैरागी पुरोहित हो, चाहे शत्रु से डर कर भागनेवाला कायर हो। अपने सामने परिलक्षित इस अनुपम लावण्ययुक्त पुष्प की ओर देखते ही रह जाएगा[2]

कामुकवृन्दों से परिवेष्टित रहने से आत्म गौरव से उसका मन भर गया था। कितने ही भ्रमर उसके पीछे पड़े पुष्प की गिरी हुई अवस्था के साक्षात्कार से प्रेरित यादों में पुष्प के शैशव, यौवन आदि अवस्थाओं की खूबियों का वर्णन काव्य के पूर्वार्द्ध में मिलता है। उस सौंदर्यपूर्ण अस्तित्व की इस परिणति के तीव्राघात द्वारा उद्रिक्त उद्गारों से "वीणपूवु" का उत्तरार्द्ध मुखरित हो उठता है।

---

1. वीणपूवु - श्लोक 6, कुमारनाशान्टे पद्यकृतिकल भाग पृ.205

2. वही, श्लोक 7, पृ.205

प्रिय-विरह के दु:ख की कल्पना

गिरे हुए फूल के चारों ओर मंडरा कर भ्रमर उच्च स्वर में रोता है । फिर वह आसमान की ओर उड़ता है । कवि यह देख कल्पना करते हैं कि मानो उस फूल की चेतना की तलाश वह कर रहा हो[1]

मृत्यु जीव जन्तुओं की अनिवार्य स्थिति है । वह सब पर अपना हाथ रखते है । आखेटक यह नहीं देखता कि उसका शिकार कपोत है या गिद्ध[2] ।" अत: कालरूपी आखेटक ने अपने कराल हाथ इस नन्हे से फूल पर भी रख दिए । उन हाथों में पड कर भग्नग्रस्त फूल विवर्ण-सा कांतिहीन हो, रंग एवं रंगरेलियाँ छोड कर मूर्छित हो गया । उस सुकुमार मृदुल कोमल पुष्प-शरीर को नीचे आते देख स्वयं धरती अधीर-सी हो उठती है[3] । तृणांकुरों के बहाने उसके रोंगटे उठ खडे हुए[4] । मोती के पक जाने पर सीपी जिस प्रकार शून्य एवं उपेक्षित हो जाती है, उसी प्रकार पुष्प का निस्तेज शरीर ज़मीन पर पडा रहता है । फिर भी वह एक असीम आभा के प्रभावलय से परिवेष्टित दीखता है । छोटे लूता [मकडी] गणों ने उसकेलिए कफन बना दिया । उषा ने "नीहार शीकर मनोहरमन्त्यहार" पहना दिया । तारा गणों का दु:ख ओस बिन्दुओं के रूप में

1· वीणपूवु - कुमारनाशान्टे पद्यकृतिकल, भाग-1, पृ·207, श्लोक 20
2· वही, श्लोक 21, पृ·207
3, वही, श्लोक 24, पृ·207
4· वही, श्लोक 24, पृ·207

टपकता रहा । छोटे छबील पक्षी उसके पास बैठे रोते रहे । सर्वगुणान्वित पुष्प के निधन पर सब को दुःख हुआ ।[1]

पुष्प-वियोग के दुःख में उत्तप्त कवि चित्त में स्वाभाविक रूप में दुःख के परिणाम स्वरूप उद्रिक्त होनेवाले तत्वावबोध के रूप में आध्यात्मिकता से समर्थित तात्विक विचार उठने लगते हैं । दुःख जनित मनोविस्तार की अवस्था में अनुभूत एकात्मकता को व्यंजित करते हुए कवि अपने सहजीव पुष्प के प्रति शुभचिंतन ही प्रकट करते हैं जिसके द्वारा आत्म दुःख को शमित करने की चेष्टा करते हैं । वे कहते हैं "हम भाई-भाई है, एक ही हाथ ने हम दोनों की सृष्टि की । आज तुम्हारी यह स्थिति हो तो कल हमारी बारी आएगी । संसार की हर चीज़ की यही स्थिति है, गति है । जो पैदा हुआ हो उसकेलिए मृत्यु भी अनिवार्य है । इस प्रपंच रहस्य के सामने सब असहाय है, असहायता की इस अवस्था में भी कवि के आस्थापूर्ण चित्त में आशा की किरणें फूट पड़ती है । उनका विचार है कि रोना बेकार है, कभी-कभी दुःखानुभव एवं कष्ट-सहन हितकारी हो सकते हैं । प्रपंचस्रष्टा चाहे तो जड चेतन का संयोग फिर से हो सकता है । अतः यहाँ तिरोभूत होकर यह पुष्प सुरलोक में कल्पतरु की डाली पर फिर से विकसित हो सकता है[2] । तब यह कभी सुरबाला का केशालंकार बनेगा, कभी देवर्षियों का पूजापुष्प बन कर चरितार्थ हो सकेगा[3] ।

---

1. वीणपूवु - श्लोक 33 - कुमारनाशान्टे पद्यकृतिकल, भाग-1, पृ.208

2. वही, श्लोक 37, पृ.209

3. वही, श्लोक 38, पृ.209

आत्मतत्व की इस अव्ययता एवं उत्कर्षशीलता को समझे बिना शरीर नाश पर शोकमग्न होना और चिल्लाना अज्ञता का परिचायक है । इस प्रकार दुःखमोचन की चेष्टा करते हुए दुःख को दबाये रखकर स्वयं आश्वस्त होते हुए कवि काव्य को समाप्त करते हैं । कवि स्वयं कहते हैं - "हे नयन ! लौटो, चन्द मिनट में यह फूल मिट्टी में मिल जाएगा, सब की यही स्थिति होती है । रोने से क्या फायदा है ? चिंतन करने पर समझा जाएगा कि प्रापंचिक जीवन स्वप्नतुल्य है ।"

मानवीकरण

स्थूल दृष्टि से देखने पर लगेगा कि "वीणपूवु" एक पुष्प पर लिखी गई एक मामूली कविता है । स्वयं प्रकृति-प्रेमी होने के कारण पुष्प के पतन पर कवि का भावुक चित्त आहत हुआ । किंतु वास्तव में आशान् ने उस पुष्प में चाहे वह चैतन्ययुक्त हो या मूर्छा कर जड़वत् हो गया हो, किसी प्रेमल तत्व को स्वीकार करते हैं । अर्थात् कवि के लिए किसी भी अवस्था में एक सत्ता है, अस्तित्व है, वह चैतन्ययुक्त है, व्यक्तित्व से अन्वित है । उसका अपना अलग व्यक्तित्व होता है । प्रकृति की हर वस्तु में इस प्रकार के व्यक्तित्व को स्वीकार करके, उन पर मानवोचित व्यापारों व गुणों का आरोप करके आशान अपनी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति को और प्रकाशित करते हैं । उसी समय उसके द्वारा उन प्रापंचिक वस्तुओं के साथ कवि का गहरा राग-संबंध भी स्थापित होता है । यही समष्टि-प्रेम है ।

---

1. वीणपूवु - श्लोक 41 - कुमारनाशान्टे पद्यकृतिकल, भाग - 1, पृ. 209

तब वीणपूवु में आशान पतित पुष्प की हीन स्थिति पर विलाप करते हुए यही प्रकट करते हैं कि उस फूल की जिन्दगी के साथ उनका भावात्मक वैकारिक संबन्ध कितना घनिष्ठ था।[1] व्यावहारिक जगत् के उसके नाश की असहनीयता तथा पीडा को महसूस करते हैं । "पुष्प वस्तुत: एक व्यक्ति ही है; कवि के लिए प्रिय व्यक्ति । यह व्यक्ति संसार का कोई भी हो सकता है, क्योंकि कवि-चित्त सर्वात्मभाव से ओत-प्रोत है[2] ।" अत: वह कवि की कोई प्रेमिका भी हो सकता है या उनका सम्मान भाजन कोई महापुरुष[3] ।" जो भी हो इसमें कोई फरक नहीं पड़ता । ध्यान देने योग्य बात यह है कि फूल के अस्तित्व की अस्थिरता ने उसके गतकाल वैभव की सार्थकता पर चिंतित होने को बाध्य किया । यह चिंतन समूचे पार्थिव जीवन की क्षणभंगुरता पर तात्विक दृष्टि से विचार करने को प्रेरित किया । और "मरणं प्रकृति शरीरिणाम्"[4] को स्वीकार करके प्रिय वियोग-जन्य पीडा से मुक्त होने और अपने दग्ध हृदय को आश्वस्त करने को वे विवश हो गए । इस पर डॉ॰ लीलावती का कथन है "जीवन की नश्वरता, निरर्थकता, शून्यता, स्वप्नात्मकता - सब वीणपूवु के विलाप के विषय बन गए हैं[5] । ऐसे विशिष्ट धर्मों के युक्त सामान्य जीवन, उसके

1· चुने हुए प्रबन्ध - एस॰ गुप्तन नायर, पृ॰93

2· आशान कविता का आमुख - एन॰ कृष्ण पिल्ले, कुमारनाशान्टे पद्यकृतिकल्, भाग - 1, पृ॰35

3· जनश्रुति है कि आशान का कवित्व उसकी चरम सीमा पर पहुँचने की प्रथम सीढ़ी श्री नारायण गुरु थे । उनकी रुग्णावस्था पर खिन्न होकर आशान "वीणपूवु" की रचना की । विश्वविज्ञानकोश, भाग 4, पृ॰346

4· भगवद्गीता ।

5· मलयालम काव्य साहित्य चरित्र - डॉ॰एम॰लीलावती, पृ॰224

साथ ही साथ एक जीवन-विशेष दोनों के लिए पुष्प प्रतीक बन पडा है । न जाने कितने ही शलभ भ्रमर आदि प्राणी उसके पीछे प्रेमभिक्षु बन पडे । पुष्कल यौवन की अनवद्यसुषमा से परिशोभित और इतराते इठलाते रहते समय भी इन कामार्थियों में से केवल एक ही भ्रमर को चुन कर पुष्प ने अपनी चारित्रिक विशुद्धि को प्रमाणित किया नहीं तो क्यों वह भ्रमर भूलुंठित तेरे चारों तरफ से रो कर मंडराता रहा ? निश्चय ही वह विधुर भ्रमर तुम्हारी अकलंकित भावशुद्धि के सौरभ से युक्त आत्मा का अनुगमन करके ही ऊपर उड रहा है ।[1]" भ्रमर के विलाप में मुखरित करुणोद्गार और "उन्होंने मुझे धोखा दिया" इस विचार से उत्पन्न अन्त:क्षोभ ने ही तेरा सर्वनाश किया ।" कवि के इन वचनों में स्फुटित सहानुभूति "वीणपूवु" को एक पुष्प के साधारण स्तर से अलग कर विशिष्ट व्यक्तित्व से युक्त मानवीय जीव के रूप में सामने लाती है । यही कारण है कि एन. कृष्णपिल्लै ने कहा है कि "पुष्प की दयनीयावस्था का वर्णन करते समय, एक ऐसी युवती का दृष्टान्त ही पाठक के विचार पर ज़ोर लग जाता है जो प्रेम में परास्त हो गई है[2] । कवि की यह मानवीकरण प्रवृत्ति-पुष्प में व्यक्तित्वारोप का प्रयास - जैसे पहले कहा जा चुका है, उनकी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का परिचायक है । साथ ही काव्य की दार्शनिक गंभीरता, पीडा की सघनता निरर्थकता के एहसास की सख्ती, प्रतीकगत उल्लेख-भंगिमा विशिष्ट के सामाजीकरण द्वारा संप्राप्त अनुभूतिमूलक उत्कर्ष, विलाप द्वारा व्यंजित शोक की सार्वलौकिकता,

---

1. वीणपूवु श्लोक 20, कुमारनाशान्टे पद्यकृतिकळ्. भाग - 1, पृ.207

2. वीणपूवु आमुख एन. कृष्णपिल्लै, पृ.36

सर्वग्राहकता एवं संप्रेषणीयता भी बढ़ाने में सहायक हुई है । पुष्प पर व्यक्तित्वारोप शोकात्मकता में गहनता कांति के साथ-साथ आरोपित सद्गुणसंपन्नता, कलंकराहित्य, पर-सेवा रतत्व आदि के द्वारा उसके व्यक्तित्व की महिमा और वरेण्यता स्पष्ट करके उसके विनाश पर प्रकटित शोक की गंभीरता को पाठक के मनमें अनुभूयमान बना दिया है । पुष्प के प्रभावशाली व्यक्तित्व की इस असाधारणता और औन्नत्य को उसके पतन पर "अधीर हो उठनेवाली पृथ्वी" और सद्य: स्फुट पुलकितांगवाले उद्भिन्न तृणांकुर" उसे नीहार-शीकर मनोहर अन्यहार" को पहनानेवाली उषा, उस पर हिमकणों से अश्रु बहानेवाले तारे आदि का वर्णन - यहाँ तक कि कालिमा व्याप्त फीके पडे दिङ्मुख, उदयगिरि तट पर विवर्ण खडे सूर्य, दीर्घनिश्वास छोडने वाले पवन के व्यापारों में व्यंजित श्रद्धा भाव समुपेत शोकातिरेक में देख सकते हैं । गुणवत्ता से चैतन्य शून्य कुसुम की आंतरिकता और उससे महत्वीकृत अस्तित्व जीवनके साथ कवि के अन्त:करण की समष्टि चेतना के संबन्ध को समझने के द्वारा ही इसमें मुखरित शोकाकुलता की मंझधार को हम पकड ले सकते हैं । तभी तो कवि के नष्ट-बोध को प्रस्पष्ट करनेवाली "काहे के लिए विधि ने इस गुणधोरणी को नष्ट कर दिया" वाली उक्ति में संगुम्फित गहराई सामने आती है ।

वैयक्तिक दुख की व्यापकता

भौतिक ऐश्वर्य की अस्थिरता का यह बोध फूल, जो कवि का राग-तत्व है, उसके भग्न होने से अनुभूत वैकारिकता की सघनता से उद्भूत है । पुष्प का जीवन जो कवि के लिए प्यारा था,

उनके सम्मुख पुन: प्रस्तुत हो कर उनकी पीडा को दु:ख को प्रवृद्ध करती है । तब वर्तमान "यहाँ इस प्रकार तुम्हारा पडा रहना कहाँ" के सम्मुख "कहा तुम्हारी वह विभूति" रख कर दोनों अवस्थाओं की विषमता दर्शा कर कवि हृदय पर लगे तीव्राघात पाठक को अनुभूयमान हो जाता है । अर्थात् उनकी तीक्ष्णता एवं पुष्प की शोच्यावस्था की दयनीयता को पूर्णत: संवेद्य बनाने में बनाने में उनकी इन दोनों दशाओं को एक पद्य में आमने सामने रख कर प्रस्तुत करने में कवि सफल हुए हैं । उस दु:खानुभव से उदित विवेक का प्रकाशन ही उसमें आई तात्त्विक उक्ति "श्री भूविलस्थिर अनेशयम्" ठहरती है ।

वेदान्त-ज्ञान-संपन्न वैचारिक स्तर से भावनात्म संबंधों की गुत्थियाँ को सुलझाना मुश्किल है । अत: भौतिका-स्तित्व व वैभव की क्षणभंगुरता का दार्शनिक समाधान से परितृप्त न होनेवाले दिल के विच्छिन्न राग-तंतु टीस का स्वर निकालते ही रहे । फूल की गत वैभव की स्मृतियाँ वेदना सिक्त होकर व्यंजित हुए बिना रह नहीं सकती है । अत: कवि फूल के भूतकाल की स्थिति-कली की अवस्था से लेकर फुल्लावस्था तक के वर्णन में लग जाते हैं ।

यहाँ कवि के विलाप की एक अन्य विशेषता पर हम पहुँचते हैं । हमने देखा कि कवि ने पुष्प के पतन से उत्पन्न वैयक्तिक दु:ख को प्रकट करने के तुरंत बाद श्री भूविलस्थिर है ।" कह कर यह सूचित करते है कि ऐसा दु:ख प्रत्येक प्राणी के जीवन में स्वाभाविक है, संभव है । यह एक प्रकार से व्यक्तिगत दु:ख का

सामाजीकरण है । पुष्प के पतन को दृष्टांत बनाकर सांसारिक जीवन की अस्थिरता के बारे में ही आशान बिलखाते हैं[1] । इनका वैयक्तिक दुःख आत्मापकर्ष के हीन रूप को छोड़कर सत्यान्वेषण का महान् साधन बन जाता है । आशान दुःख के इस गंभीर पहलू से अवगत भी थे । अपनी काव्य यात्रा के कई स्थानों में दुःख के इस महत्व का उल्लेख भी उन्होंने किया है[2] ।

सत्यान्वेषण का साधन

इस प्रकार दुःख को सत्यान्वेषण साधन के रूप में स्वीकार करने से काव्य के उत्तरार्द्ध में प्रतिपादित तात्विक चिंतन भी काव्य कलेवर का अभिन्न अंग रह सका है । कवि की काव्यनिपुणता का यह समर्थक भी है । सामान्यीकृत दुःख से उत्प्रेरित तत्वोद्गारों के रूप में काव्य की रसपुष्टि में वह सहायक ही सिद्ध हुआ है ।

यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि पुष्प के महिमामय जीवन के अंत में अनुभूत तीव्रवेदना का उद्गार कवि की सहज दार्शनिक रस के साथ इस सामाजीकृत दुःखात्मकता से नियंत्रित है । फलस्वरूप उनका विलाप उनकी शोकाभिव्यंजना मामूली सांसारिक जीवन की तड़प और छटपटाहट की आधारहीन

---

1. जिसकी उत्पत्ति हुई है, उसका नाश भी अवश्यंभावी है, अणु रहे । देही कायम रहेगी । जनिमृति का आवर्तन कर्म गति के अनुसार ही होगा ।"

   वीणपूवु - श्लोक 35, कुमारनाशान्टे पद्यकृतिकळ्, भाग - 1, पृ.209

2. शोकत्तालिह "योग" स्मृति - वही, भाग-2, पृ.515

स्थिति को छोड एक स्थितप्रज्ञ के संयमित एवं स्थिरता प्राप्त चित्तावस्था को प्रकट करता है । यहीं आशान की "वीणपूवु" मलयालम के अन्य विलाप काव्यों से अलग रहती है ।

दार्शनिक दृष्टि

सामान्यीकृत दु:ख की परिणति आशान ने अपने दु:खानुभव को सांस्कृतिक साधना से गंभीरताप्राप्त अंतकरण के कोने-कोने में अनुभव तो किया । लेकिन यह दु:ख उन्हें भावावेग की चपल व्यापारों की अस्थिर मनोभूमि में न ले जाता । उसने कवि की समझदारी को उत्तेजित किया और विवेक से परिचालित एवं नियंत्रित वैचारिक स्थिरता को प्रश्रय दिया । आशान के जागृत अन्त:करण के व्यापार पर उनके विवेक की चालक शक्ति पर भारतीय जीवन दृष्टि का दुर्निवार प्रभाव पडा था । श्री· नारायण गुरु देव, विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि के संपर्क से इसकी श्रीवृद्धि हुई । उसका परिणाम यह निकला था कि नश्वर सांसारिक जीवन में आत्मतत्व की अनश्वरता पर अखंड विश्वास, संसार के अस्तित्व के मूल में प्रेमतत्व की स्वीकृति जीवन की दु:खात्मक अवस्थिति का एहसास सब उनमें प्रबल रहे । इस कारण दु:खानुभवों को सहानुभूति अर्जित करने के साधन-रूप में वे देख नहीं सके । दु:खानुभवों को उनके तीव्र आघात को सहते समय भी, उससे विक्षुब्ध एवं हतप्रज्ञ होके, दिशाहीन एवं व्याकुल हो जाने के बदले अपनी अन्त:सत्ता की गहनता एवं स्थिरता को प्रस्पष्ट करनेवाली उन्नतान्तकरण से प्रस्तुत होनेवाली जीवन-तत्वान्वेषण वृत्ति को उत्प्रेरित करनेवाले तत्व में विशदीभूत कर लेते हैं । तभी तो वे यह कह कर आश्वस्त हो पाए "गुणी यहाँ दीर्घायु न हो पाते"[1] । यहाँ से

1· वीणपूवु श्लोक 34, कुमारनाशान्टे पद्यकृतिकळ्, भाग-1, पृ·208

उनका शोकोद्गार तत्वोद्गारों में बदलते है । दुःख के सहज परिणाम के रूप में स्वाभाविक रूप में । "एक ही हाथ ने हम सब की सृष्टि की" में अनुरणित समष्टि भावना से उत्प्रेरित विश्वबंधुत्व, जो दुःख की सर्वग्राहक शक्ति से निष्पन्न है, मुरझाये फूल के प्रति लगातार कवि को शोकातुर रखता है । फिर भी उसे अनियंत्रित भावावेग एवं चित्त की चंचलता से बचाए रखने वाला तत्व उनमें यथासमय जागरित होनेवाला विवेक ही है । यह विवेक, अस्तित्व के नष्ट को शरीर नाश मात्र और आत्म चैतन्य की चिरन्तनता में विश्वास करनेवाली भारतीय आध्यात्मिक जीवन दृष्टि की आस्थावादितापूर्ण ईश्वरोन्मुखता की नींव पर विकसित है । उसी ईश्वर के वैभव से पंचभूतात्मक प्रापंचिक तत्वों से चिरंतन आत्मचैतन्य के मिल जाने से फिर से अस्तित्व प्राप्ति की आशा कवि में बंध जाती है । कवि की इस आत्मसान्त्वनापरक उक्ति में परिस्फुरित औपनिषदिक आध्यात्मिक तत्व जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु भी निश्चित है" यह स्पष्ट है ।[1]

इस आशा पर झडे हुए पुष्प के पतन में उसकी आत्मसत्ता की कामना करके कवि अपने क्लेश को हल्का बनाने में सफल हुए है । जैसे पश्चिम समुद्र में डूबनेवाला सूर्य प्रभात में फिर उदयाचल पर देदीप्यमान हो जाता है वैसे वह सुन्दर फूल भी इस धरती से ओझल हो जाने के बाद देवलोक के नन्दनोद्यान के कल्पतरु पर खिलेगा[2] ।

---=

1· वीणपूव् श्लोक 37, कुमारनाशान्टे पद्यकृतिकळ्· भाग-1, पृ·209

2· वही, श्लोक 37, पृ·209

यहाँ एक विषादात्मक कवि के बदले प्रापंचिक सत्य को दिखाकर पाठकों को अभिज्ञ बनाने की क्षमता रखनेवाले एक दार्शनिक कवि को आशान में हम देखते हैं । कवि यह दिखाते हैं कि कविता किस प्रकार जीवन की आलोचना एवं व्याख्या बन जाती है । "इस में तत्वचिंतन ज्यादा होने पर भी काव्य की सुन्दरता की हानि नहीं हुई है । यह काव्य समान रूप से विचारात्मक एवं अनुभूति मधुर बन पडा है[1] ।"

इस काव्य में दुःख का सामान्यवत्करण किया गया है । वीणपूवु से अंग्रेज़ी के कवि ग्रे के शोककाव्य[2] से तुलना करते हुए डॉ. लीलावती का कथन है कि "ग्रे के काव्य के समान आशान ने भी दुःख का सामाजीकरण किया है । प्रत्येक कब्र में चिरविश्राम लेनेवाले महान लोगों को जब वे जिन्दा रहते थे, जिन कठिन परिस्थितियों का उन्हें सामना करना पडते थे, उन परीक्षा की घडियाँ "ग्रे" के मन में घनीभूत पीडा बन कर उपस्थित हुई । उसी प्रकार आशान के मन में भी गिरे हुए पुष्प के प्रति शोक तथा सांसारिक नीति के प्रति शोक तथा रोष उत्पन्न हुए । जीवन की असमता सोच थॉमस ग्रे रोते हैं, आशान तो जीवन की क्षणभंगुरता के प्रति दुःखी होते हैं[3] ।

मलयालम साहित्य का इतिहासकार पी.के. परमेश्वरन नायर भी "वीणपूवु" का अध्ययन करके कहते हैं कि "शेल्ली, कीट्स आदि आंग्ल कवियों के शोकगीत के स्वर और भाव वीणपूवु में स्पष्ट दिखाई पडते हैं । लेकिन भारतीय दर्शन का

---

1. विलापकाव्यप्रस्थानम् - एषुमट्टूर राजराजवर्मा, पृ.74
2.
3. कण्णीरुं मष्विल्लुम - डॉ.लीलावती, पृ.56

अधिक प्रभाव इस पर पड़ा है[1]।"

शोककाव्य का धर्म दुःखानुभव की पीड़ा को नाना प्रकारेण अभिव्यंजित करके अन्त में किसी दार्शनिक तत्व पर कवि के पीड़ा मुक्त होने या दुःख शमन को स्थापित करना नहीं है। आशान को भली-भाँति यह मालूम था। उद्बुद्ध चेता होने के कारण वे अनुभूत शोक से व्याकुल तो हैं, फिर भी स्थिरमनस्क रहते हैं। लेकिन इस स्थिर चित्तता का अर्थ यह नहीं कि उनके हृदय का शोक पूर्णतः दूर हो गया है या वे एकदम शोकमुक्त हो गए हों। केवल इतना ही सही है कि पीड़ा को वे अन्तर्मन में अनुभव करते ही रहते हैं, फिर भी उनके लिए आश्वस्त होने का कोई ठोस आधार है, आश्रय है। वही तो उनका आस्तिक्यबोध है, लेकिन उस विवेकोदित दार्शनिक चिंतन के नियंत्रण से खिसखिसा कर दुःख बहिस्फुरित होता ही रहेगा। "वीणपूवु" के अन्तिम श्लोक में यही हम देखते हैं। फलतः समस्त काव्य में करुणा का वातावरण परिव्याप्त रहता है। प्रथम श्लोक में आरंभ होनेवाला शोक, काव्य के अन्त तक बना रह सका है। इस से कविता एक जैविक इकाई बन पाई है।

निष्कर्ष

"वीणपूव" में एक गिरे हुए फूल के द्वारा आशान् ने मानव जीवन की नश्वरता, व्यर्थता, शून्यता एवं स्वप्नात्मकता पर गंभीर चिंतन किया है। उस फूल के साथ अपनी आत्मीयता स्थापित करके[2] उन्होंने व्यक्तिगत शोक को प्रपंच तक फैलाया है। संपूर्ण काव्य में आद्यन्त शोकात्मक वातावरण की सृष्टि की गयी है।

---

1 मलयालम साहित्य का इतिहास - पी॰के॰ परमेश्वरन, पृ॰194
2॰ "एक ही हाथ ने हमारी सृष्टि की।"
- वीणपूवु, श्लोक 32

बाष्पांजलि

अपने स्वर्गीय मित्र के प्रति के.के. राजा के हृदय में प्रोज्वलित असीम ममता की मार्मिक अभिव्यक्ति है बाष्पांजलि। मित्र-विलाप को गौरवान्वित रूप और भाव देने में समर्थ अल्प संख्यक रचनाओं में बाष्पांजलि का महत्वपूर्ण स्थान है।

विख्यात आयुर्वेदाचार्य तथा अपने घनिष्ठ मित्र पष्नेल्लि-प्पुरत्तु वासुदेवन मूस के असामयिक निधन से राजा के दिल पर गहरी चोट लगी। आप के हृदय से निकले आर्तक्रन्दन को संयमित कर अपनी तीव्र वेदना कुल सात खण्डों में उन्होंने अभिव्यक्त की है।

वर्ण्यविषय

प्रथम खण्ड मरणबिन्दु में मृत्यु की सूचना दी गयी है। शोक पूर्ण वातावरण की पृष्ठभूमि तैयार करके कवि अपने मित्र के अप्रत्याशित देहवियोग का समाचार गद्‌गद्‌कंठ होकर पाठकों को बताता है।

अपने स्नेहधनी मित्र के ममतापूर्ण व्यवहारों का वर्णन ही मैत्री बिन्दु में हुआ है । असमय में मृत्यु ने मित्र का हरण किया है । मृत्यु की इस क्रूरता के साथ साथ उन दोनों की मैत्री की दृढता का भी गायन इस खण्ड में हुआ है । अनेक कारणों से हताश एवं उदास कवि हृदय में उत्साह एवं जीने की प्रेरणा मित्र के स्नेह ने पैदा कर दी, जिसके फलस्वरूप संतोष से कवि का चेहरा चमकने लगा । आलसी रूपी चोर न जाने कहाँ भाग गया ।

मित्र के प्रति अपने प्रगाढ संबन्ध के बारे में सोच-सोच इस प्रकार वे गुम-सुम बैठ गये कि दिन-रात का बीत जाना भी वे जान न पाये । आपसी स्नेह की मरन्दमाधुरी से तरंगित होकर प्रायः उन्मादभरी अवस्था में स्वयं भूल कर पहरों वे बैठ गये । मित्र के साथ बिताये उन अमूलभ घडियों की याद मन में हरी-भरी रहती है । वे स्मृतियाँ नष्ट-बोध के साथ उन्हें सताती रहती हैं ।

आत्ममित्र की चारित्रिक महिमा का गायन स्वभावबिंदु में हुआ है । मित्र असाधारण व्यक्तित्व के धनी थे । धनिकों के आगे भी अपने व्यक्तित्व को उन्होंने न्योछावर न कर दिया । वे सिर्फ स्नेह से वशीभूत रहे । दूसरों की सहायता करने केलिए जितनी ही की कठिनाई क्यों न हो सहर्ष वे झेलते थे ।

---

1. बाष्पांजलि - के.के. राजा - स्वभाव बिंदु, श्लोक 6, पृ.27

अपनी व्यक्तिगत दर्द-पीडाओं को छिपाकर दूसरों का दुःख दूर करने का भरसक प्रयत्न वे करते थे। विपत्ति के सामने वे अपनी छाती तना करके खडे थे। उनकी इस आदत पर विस्मित होकर कर कवि का कथन है कि मित्र के कंठ से एक बार भी दीनता का स्वर नहीं निकल पडा। दीनभाव कभी भी उस मुख पर नहीं देख न पाया। प्रायः सभी बच्चे जन्म के अवसर पर रोते हैं, किंतु वे उस समय भी शायद ही रोये होंगे। निजस्थिति प्रसूति-गृह ही जानता है[1]। रोगियों की इलाज करने में वे इतने समर्पित थे कि उनके सौम्य मधुर भाषण से ही बीमार आश्वस्थ हो जाते थे। अपने काम में व्यग्र होते समय भी चारु स्मिति से कवि का स्वागत करने की कृपा दिखाते थे। वे बडी खुशी से उनसे बातें भी करते थे[2]।

पापबिंदु में भयानक वातावरण की सृष्टि की गयी है फेनों के द्रंष्ट्र दिखाकर, तरंगरूपी लंबी जिह्वा फैलाए तरंगें मार, गरजते हुए क्षुब्ध सागर किनारे को निगलने का यत्न कर रहा है। उसी प्रकार दुःख-रूपी सागर कवि को निगला जा रहा है। उनको दुःख केवल इस बात में है कि अपने मित्र के निधन के बाद वे ज़िन्दा रहते हैं। उनके साथ दिवंगत न हो पाने से उन्हें नींद नहीं आती।

---

1. बाष्पांजलि - के.के. राजा - स्वभावबिंदु, श्लोक 3, पृ.30
2. वही, श्लोक 7, पृ.30

"तत्वबिंदु" में सदा परिवर्तनशील इस विश्व को देख कर कवि विस्मित रह जाते हैं इस परिवर्तन के बारे में सोचते समय कवि के मन में यह शंका उठती है कि चराचरों का सर्वनाश ही होता है या इनकी अन्त: सत्ता से नये जीवन की उत्पत्ति होती है ? अपने अज्ञान के कारण जनि-मृति की निजस्थिति समझने में कवि अपने को असमर्थ पाते हैं । प्राणी के शरीर को बीच-बीच में नये ढंग से ढला देने केलिए प्रकृति उसे मृत्यु के वश में करा देती है । अंडकांडों की उत्पत्ति एवं विनाश भी इसी प्रकार उस पराशक्ति की इच्छा पर निर्भर रहती है । मानव के कर्मों के गतिवेग की चरमसीमा ही मृत्यु है । मानव की दृष्टि में यह प्रपंच स्थिर नहीं है । फिर भी प्रपंच का प्रत्येक घटक परस्पर आकर्षण से संबद्ध रहता है । प्रकाश तथा अंधकार दोनों की अपनी-अपनी अलग विशेषताएं है । इसी प्रकार प्राणी भी अपनी अपनी विशेषताओं में दिखाई पड़ती है । प्रपंच की ओर ध्यान लगाकर मानव इन बातों को समझने का प्रयास करें । फिर भी गरिमामय एवं असीम प्रपंच के सारे रहस्यों को परखने का प्रयास करना मूर्खता है । दिन-रात के अवस्थाभेद को देखिए । दोनों एक ही समय वर्तमान रहते हैं । फिर भी दिन-रात की अलग-अलग अवस्था प्रतीत होती है ।[1]"

"विलापबिंदु" में कवि का दु:ख कूलों का उल्लंघन कर बहता है । उनकी मौन वेदना प्रकृति में झलकती सी प्रतीत होती है । अपने मन में जो दु:ख रूपी अग्नि धधकती है उससे उत्पन्न धुआं रात के रूप में प्रकट होती है । इस यातनापूर्ण संसार में अपने को अकेला छोड कर अंतरंग-मित्र दिवंगत हो गये ।

---

1. बाष्पांजलि - तत्वबिंदु, श्लोक 7, पृ.33

कवि को उनके साथ मर जाने की प्रबल इच्छा होती है । विपत्तियों में सहायता देनेवाले बन्धु के चले जाने के बाद भी अभिशप्त जीवन बिताने के लिए निष्ठुर नियति ने कवि को यहाँ छोड़ा है ।

"स्मरणबिंदु" में आत्ममित्र के मृदुस्मेर से युक्त मधुर भाषण की याद करते हुए कवि का कथन है आगे मित्र का मृदु एवं मधुर शब्द मैं सुन न सकूँगा । उनके स्वर में मधुरिमा एवं गांभीर्य का सम्यक मिलन था । मित्र के हृदय की स्वच्छता भी अतुल्य थी । अपने मित्र के अन्तिम क्षण के सहृदयतापूर्ण वचन को याद कवि को अब भी रुलाते है । उनको नींद भी नहीं आती । कवि को यह विचार अत्यन्त खिन्न बना देते हैं कि मित्र के भवन में कोई आनन्दोल्लास नहीं रहेगा । कविता के पारायण से जो भवन आनंद मुखरित हो उठता था, अब मरघट-सा शून्य बन गया है। सन्नाटा वहाँ फैल गया है ।

शोक की अभिव्यक्ति

अपने अन्तरंग मित्र का आकस्मिक निधन से कवि का एक धक्का सा लगा । मून से के.के. राजा की जो मैत्री थी वह आंतरिक दृढ सौहृद का अटूट बंधन था । अत: मित्र के साथ मर जाने का उनका आग्रह निर्व्याज है । उनके साथ मर जाने की अपने अभिशप्त जीवन की तीव्र मनोकामना भी वे अभिव्यक्त कर देते हैं । "मित्र से अलग होकर जीवित इस

महापापी को वसुन्धरा अभी अपनी छाती पर वहन कर रही है। जितनी जल्दी हो सके इस महापापी का अंत कर अपना भार लघु करने के लिए भूमाता से वे प्रार्थना करते हैं।[1]" बहते समय नदी कल्लोल के द्वारा मृदु स्वर में कहती है कि इस पापी के ज़िन्दा रहने से धरती पर वर्षा नहीं होगी।[2]" रात की सजनी नींद से कवि की प्रार्थना है कि "हे निद्रे ! तू रात की प्रिय सखी है, मैं तो पाप का निकट बन्धु हूं। हम पहले ही परिचित है न ? कृपया मेरे पास आ जा, और जल्दी मुझे सुला दें।[3]" वियोग दुःख से भी वार्तालाप कर अपने सखा के वासस्थान पर फौरन पहुँचा देने का आग्रह करते हैं।

हर दिन हर निमिष कवि के मन में केवल यही एक प्रबल इच्छा बनी रहती है कि दिवंगत मित्र से जितनी जल्दी हो सके, जा मिलें। सबेरा होते ही प्रभात बहुत हमदर्दी प्रकट कर मानों उनसे ऐसा कह रहा हो कि "मैं अपने किरणरूपी अंगारों को तेरे सामने सज्जित कर देता हूं, इस में कूद कर जल्दी अपने मित्र के पास पहुंच जा।[4]" यमराज से कवि की यह विनती है कि उन्होंने अपने बलिष्ठ हाथों से सैकड़ों जीवों को मृत्यु-तट पर पहुँचाया फिर भी कवि पर वे दयावान क्यों न होते ?

---

1. बाष्पांजलि - के.के. राजा - बापबिंदु, श्लोक 5, पृ.36
2. वही, श्लोक 6, पृ.36
3. वही, श्लोक 9, पृ.37
4. वही, विलापबिंदु, 1-38

रात के समय मित्र की सारी स्मृतियाँ एक साथ उन्हें आ घेरती है, तब उनकी वेदना तथा बेचैनी बढ जाती है । दिवंगत मित्र के पास उड पहुंचने की तीव्र इच्छा बढती है । मित्र दया के दानी थे, अब उससे कवि वंचित रहते हैं । घर का सारा ऐश्वर्य मित्र के साथ परलोक गया, केवल कवि को ही एकाकी बन कर इस धरती पर शापित तापित रहना पडता है । अपनी प्रेयसी जब मान कर बैठती है तब मित्र सान्त्वना देने केलिए और उनका प्रणय-कलह मिटाने के लिए आ जाते । ऐसे मनस्वी मित्र अब केवल स्मृति ही रह गये ओस बूँदें रूपी आँसुओं से सद्य विकसित कुसुम आसमान की ओर देखते समय उन पुष्पों की सुगंधी लेकर मारुत भी आपकी तलाश करता है। कवि पूछते हैं - स्वर्ग के नन्दनोद्यान में अप्सर कन्यायें नृत्य-नाटक का प्रबन्ध करते समय उसे देखने के लिए, हे मित्र ! मेरे बिना आप अकेले कैसे जाएंगे । आपके अभाव से घर अब शून्य रहता है । श्मशान से उस गृह कक्ष में श्वान भूकता रहता है। हम दोनों रोज़ प्रात: स्नान करने जाने का वह तड-तालाब (पुत्तनकुलम्) अब आप: दर्शन होने पर न रोता रहता है[1] । अगर अचेतन वस्तुओं की स्थिति ऐसी है तो इस मित्र की स्थिति का अनुमान सहज ही कर सकते हो ।

चिंतनपक्ष

काव्य के आरंभ में से लेकर तत्वचिंतन का स्फुरण द्रष्टव्य है । प्रथम श्लोक ही प्रापंचिक चीज़ों की क्षणिकता का द्योतक है ।

---

1. बाष्पांजलि - के.के. राजा - पृ.40, श्लोक 8-9

अपनी सुषमा और सुगंधी तथा मकरन्द के कारण डंठल पर इतरा कर रहनेवाले फूल अगले निमिष झड जाते हैं। स्वच्छ नील गगन में लीला करते दौड़ते समय तारे छूट जाते हैं। कहा जाता है कि मृत्यु नित्यजीवन का कवाट खोलती है। फिर भी प्राणि जगत् शांतिप्रदायिनी मृत्यु से दूर रहना चाहता है। जैसे हिमपात से कमल झड जाते हैं, वैसे मृत्यु से अपने हिम शीतल करों के स्पर्श से प्रिय मित्र के प्राण का हरण कर लिया। गया जैसे अंधकार की छाती को चीर कर उषा प्राची में उदित होती है वैसे ही वृद्धिक्षय संसार का क्रम होता है। जनि-मृति के रहस्य पर कवि गंभीर चिंतन करते हैं। एक की अंति परिणति दूसरे की सृष्टि है ? कौन जाने ? कालरूपी सागर में विधाता की क्रीडा से शायद प्रपंच की उत्पत्ति एवं नाश होता रहता है। जैसे नवग्रहों की तेज़ गति निश्चलता का आभास देती है, वैसे मानव की गति का अंतिम परिणाम मृत्यु कही जा सकती है ? यहाँ ऐसी कोई चीज़ नहीं, जो स्थिर हो। चराचरों के स्थिति विशेष पर निश्चित रूप से निर्णय लेना कठिन है। इस प्रकार चिंतन करते-करते कवि सोचते हैं कि अचिंन्त्य तत्व को अनुमान के बल पर मापना कोरी मूर्खता है। इस प्रकार व्यक्त प्रकृति में निहित अव्यक्त और रहस्यमय के प्रति तरह तरह की जिज्ञासा कवि प्रकट करते हैं।

गुणस्तवन

अतीत के प्रभा-सूत्रों से बुने स्मृति पट पर सद्गुण संपन्न आत्ममित्र का चित्र खींचने का सफल प्रयास कवि ने किया है। प्रेम और कवि के सौहृद का आरंभ, उसका विकास और आकस्मिक दुरंत से उनका बिछोह आदि का मार्मिक चित्रण कवि प्रस्तुत कर देते हैं।

कवि के·के· राजा अतीव भाग्यशाली हैं जिन्हें एक सच्चा मित्र मिल गया । श्री· मूस कवि के निराशापूर्ण जीवन का प्रकाश-दाता थे । अतः वे अभिन्न हृदय थे । इसलिए मित्र के साथ बिताये दिनों का उन्मेषयुक्त-चित्र पक्षिद्वय को प्रतीक बना कर कवि खींचते हैं । एक ही टहनी पर एक ही फल खाकर आनन्दोल्लास के साथ वे जीवन बिताते थे । इस वर्णन से उनकी मैत्री की प्रगाढ़ता प्रकट हो जाती है । अनेक कारणों से निराशा के घने अंधकार से आच्छन्न कवि हृदय को आशा के प्रकाश में लाकर जीने की प्रेरणा देने का महत्वपूर्ण कार्य मित्र ने किया । कवि में आये इस अतिशय परिवर्तन का चित्र इस प्रकार अंकित है - "क्रमशः मेरे निस्तेज नेत्रों में आशा की किरण चमकने लगी । हृदय में जीने की तीव्र इच्छा भर आयी । इस आशा के प्रकाश से वहाँ छिपा हुआ निराशाभाव रूपी चोर भाग गया ।[1]" मित्र के अनोखे व्यक्तित्व के प्रभाव से यह परिवर्तन हो पाया । उच्च वर्णवाले उस भिषक में जाति-पाति की उच्च नीचता का भाव कभी भी नहीं देख पाता था । वे स्नेह-मूर्ति और सद्गुणों की मूर्ति थे । "हेथी पुरुष लक्षणम्" की उक्ति को वे चरितार्थ करते थे । स्नेह के अलावा और किसी के सामने वह उन्नत सिर नहीं झुकता था । न जाने जन्म लेने तुरन्त बाद वे रोये होंगे । लेकिन उसके बाद ज़िन्दगी में एक बार भी उन्हें उदास होकर किसी ने नहीं देखा है । हमेशा मृदु मुस्कान से वह सुन्दर मुख शोभित था । शीतल चन्द्रिका सी वह हँसी दूसरों को आनंद प्रदान करती थी; वह उज्ज्वल मुख-कांति शाश्वत समझ बैठे थे कि निर्दय नियति ने अपनी कराल छुरी फेंक उसे मिटा दिया । लेकिन केवल उनका शरीर ही काल मिटा सका, मित्र के गुण अभी जीवित रहते हैं ।

1· बाष्पांजलि, पृ·27, श्लोक 3·

वे उनकी स्मृति में जीते हैं। इस प्रकार कवि मन में मित्र मूस की उदारता, मधुर-भाषण, स्नेह, दया, दान शीलता आदि नाना गुण, वे दोनों मित्रों द्वारा एक साथ बिताये गए अपूर्व क्षणों की स्मृति संजोये रखना चाहते हैं।

इस शोककाव्य की आत्मकथापरक प्रधानता होती है। "परस्परस्नेह मरन्द माधुरी तरंगितोन्माद" से युक्त वह सुदृढ मैत्री देख दूसरे लोग ईर्ष्यालु बन जाते थे। पवित्र स्नेह की यह अजस्र धारा ही इस विलाप काव्य की सृजन-प्रेरणा है। दिली दोस्त के मर जाने से जो व्यथा होती है, वह यहाँ तक कभी-कभी विपत्कारी बन जाती है कि दिवंगत आत्मा के साथ मर जाने की इच्छा जीवित मित्र के हृदय में पैदा कर देती है। "बाष्पांजलि" में मूस के स्नेह-वात्सल्य की अमृत-धारा पान करने वाले कवि चित्त में आत्महति की प्रबल इच्छा पैदा होती है[1]। दुःख के प्रबल झोंके हृत्तंत्रियों को झकझोर करते समय ऐसी आत्म-ग्लानि से वशीभूत होना मानवात्मा के लिए अत्यन्त सहज लगता है। मित्र के निधन का दुःखभार दुर्वह होकर आत्माहुति करने की घटनाएं जीवन में दुर्लभ नहीं। इस निस्वार्थ स्नेह से यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि स्नेह का फल स्नेह ही है। रात्रि रूपी चिता में आग लगते ही उषा का आगमन होता है। प्रकृति के इस दृश्य को देखते कवि को ऐसा लगता है मानो उषा उनसे यह कह रही है कि तुम इस अग्नि में कूद कर आत्म हनन करो।

---

1. बाष्पांजलि, श्लोक 5-8, पृ.36

इस काव्य के प्रत्येक श्लोक को पढने से ऐसा लगता है कि भावावेग का तनाव इतना प्रबल है कि हृदय उसमें बंधा रहता है । भाव सान्द्रता एवं रूपभद्रता के गठबंधन में सुभद्र इस शोककाव्य में आस्वादक चित्त खूब रम जायेगा । अतः इस काव्य की आलोचना कर डॉ॰लीलावती का कथन यहाँ स्मरणीय है कि "क्रुद्ध प्रकृति-नियम की धृष्टता, उद्धत तत्वचिंतन की व्यर्थता, उदग्र-भीषण वैरूप्य की असहनीय स्थिति, उन्निद्र वेदना की तीव्रता उदार एवं निर्मल स्मृति की हार्दिक नम्रता - ये सात भाव नक्षत्र हृदयाकाश को कुंदमाला पहना देते हैं[1] । कवि के हृदय का प्रत्येक भाव पाठकों के दिल का उद्रेक करने में समर्थ है । श्री॰ कुट्टिकृष्ण मारार ने इस काव्य की मार्मिकता को स्पष्ट करते हुए कहा है "सहृदय चित्त इसकी अचल आस्तिकता, तीव्र दुःखानुभूति तथा गंभीर विलाप से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता[2] ।"

अकृत्रिमता एवं भावतीव्रता इस शोककाव्य की अपनी विशेषताएं हैं । वैयक्तिक स्मृतियों के झोंके से कवि-मन अपना संतुलन खोकर आत्मग्लानि से वशीभूत होकर, निराशा के गर्त में पड मृत्यु की कामना करते समय कवि की आस्तिकता तत्वचिंतन का पल्ला पकड दुःख मोचन का मार्ग ढूँढती है । प्रपंच की अतिशयात्मकता, अव्यक्तता और अज्ञेयता पर आधारित यह मानसिक विह्वलता आस्तिकता का सहारा ग्रहण करके पूर्णतः मुक्त हो जाती है ।

---

1. कण्णीरुं मऴविल्लुम - डॉ॰एम॰लीलावती, पृ॰97
2. राजाकिरणम - हमारा विधुर विलाप काव्य - कुट्टिकृष्ण मारार, पृ॰192

इस काव्य की शिल्पगत सुन्दरता एक वर्णक्रम (स्पेक्ट्रम) की याद दिलाती है । सात खण्डों के सात वर्ण अलग-अलग होने पर भी एक-से बन कर परस्पर पूरक बनते हैं । इतना ही नहीं, ये एक दूसरे में विलीन होकर एक नूतन वर्ण पैदा कर देते हैं । प्रस्तुत काव्य में भी मृत्यु की अभिशप्त कालिमा से मधुर-स्मृति के लाल कमल को खिला का प्रकाश-द्युति फैलाने की कोशिश की गई है ।

निष्कर्ष

इस शोक-काव्य में मित्र-विरह का सर्वोच्च विशद तथा प्राणस्पर्शी वर्णन हुआ है । कवि के जीवन के प्रकाशदाता श्री· उण्णिम्मन की महानता का विशद चित्र इसमें मिलता है । उनके निधन पर के·के· राजा ने अपनी व्यथा की सच्ची अभिव्यक्ति स्वाभाविक शैली में की है ।

****

चितालेखम्

मलयालम साहित्य जगत के प्रौढ कवि स्व. चंगम्पुषा कृष्णपिल्लै के असामयिक निधन पर उनके मित्र श्री. जी. शंकर कुरुप का लिखा हुआ शोकगीत है "चितालेखम्" ।

यह गीत सात भागों में विभक्त है । मृत्यु की अजेयता, अपने मित्र की अनन्य प्रतिभा एवं मानवोचित गुण, उसके आकस्मिक निधन से मलयालम काव्य-जगत की क्षति इत्यादि बातों पर संक्षिप्त वर्णन करके अपने मित्र की स्मृति पर शोकसंतप्त हृदय से कवि श्रद्धांजलि अर्पित कर देते हैं ।

प्रतिपाद्य

प्रथम खण्ड में मृत्यु की अजेयता की घोषणा करते हुए कवि कहते हैं कि मृत्यु का ठंडा उच्छ्वास लग कर सारा जगत् एक दम कंपित हो जाता है। स्वेच्छाचारिणी मृत्यु जहाँ चाहे

अपना पैर जमा सकती है । फिर उसकी उंगली के इशारे से संसार की उन्नति के लिए प्रयत्नशील, हमारी नैतिक संस्कृति को बनाये रखने के लिए उद्यत, इस धरती की शोभा तथा शक्ति को बढाने के लिए प्रयत्न करनेवाले महामानव धराशायी हो जाते हैं[1] । समयरूपी दीवार पर जीवन की कारीगरी को अपने कठोर हाथों से रगडकर धो डालने वाली मृत्यु को कोई रोक नहीं सकता । ऐसे विचारों में मग्न होकर गंभीर मुद्रा में बैठनेवाले कवि के कानों में अपने दिवंगत मित्र की दिलासाभरी यह वाणी सुनाई पडी कि "हे बटे ! दुखी मत हो जाओ । सर्वशक्ति के बायें हाथ का खेल ही मृत्यु है[2] ।

कवि की कल्पना एक दम धरती से ऊपर उठकर स्वर्ग तक उड जाती है, वे अपने परलोक प्राप्त मित्र की मधुर वाणी की ओर कान लगाते हैं । स्वर्ग की ओर प्रस्थान करनेवाले कवि का यह संकल्प था कि पहले अपनी मृत्यु ही संपन्न हो, बाद में मित्र की । लेकिन नियति का नियोग दूसरा था । अब वही स्नेहधनी मित्र की चिता पर कवि के तप्त बाष्प गिरते हैं । कुरूप सोचते है कि मित्र ज़रूर उनकी व्यथा के बारे में अवगत होंगे । क्यों मित्र भी कवि हैं, आत्मा से निसृत आँसू की परख तथा आत्मा की बेचैनी एवं पीडा वे जानते हैं । पूर्णत: इसकी अभिव्यक्ति वे मृदुल मानस मित्र की तूलिका ही कर पाती है ।

---

1. चित्तालेख्यम् - जी.शंकरकुरुप, पृ.207
2. वही,

श्री० कृष्ण अपने मित्र चौम्पुषा को उनका "अहिश्चर प्राण" मानते हैं। अपने इस अंतरंग मित्र का "चितालेख" लिखते समय वे तीव्र वेदना महसूस करते हैं। कवि को लगता है कि "जब वे इस शोकगीत लिखने के लिए बैठते हैं, तब उनके पीछे प्रकृति माता खडी विलाप कर रही हो। जिस माता की गोद में मित्र पले, बढे, उस माता के लिए अपने लाडले पुत्र का वियोग असहनीय हो गया। वह अपने केशजाल को बिखराते हुए पुत्र की अनन्य प्रतिभा पर गुनगुनाते विलाप करती रहती है। अपने इस प्रतिभाशाली पुत्र पर वह गर्व करती थी। जब वह अपने मुरली रव से कलाकामिनी को प्रसन्न कर देता था तब वह राग लोला बन कर उसका पीछा- करती थी। वह भी अब शोकाकुल हो कर रो रही है।

अगले खण्ड में कवि मित्रवियोग की व्यथा को शब्दबद्ध करने की अपनी असमर्थता पर खिन्नता प्रकट करते हैं। दिवंगत प्रतिभाशाली कवि की कवित्वशक्ति की महिमा का गुणगान इसलिए कठिन हो जाता है कि इस पर सोचते समय आँसू बह निकलता है। सुमनों को अपने रश्मिरूपी हाथों के मृदुस्पर्श से खिलानेवाले सूरज के एक प्रकाश कण की तूलिका अगर मिल जाय तो उससे अपनी व्यथा कवि अवश्य ही रच डालते। लेकिन अब केवल नि:सहाय होकर रोने के अलावा और कुछ नहीं कर सकता।

बृहस्पति मित्र को रथ में बिठा ले गये। अपनी वीणा लेकर मिथुन तुम्हारी शय्या के पास आते समय कभी भी मैं ने यह नहीं सोचा कि इतनी जल्दी तुम चले जाओगे। अब तो मलयालम की शून्यता ठीक ऐसी है जैसी मोती रहित सीपी। जिन्दगी तो

सूखे सुमन-सा गंधहीन हो गई । जैसे कटे धड़े की भाँति काल निःस्तब्ध खड़ा रहता है । कल्पद्रुम की शीतल छाया में अप्सरकन्याएं पाँति लगा कर खड़ी होंगी । किंतु उस समय तुम अपनी पत्नी के अनन्यप्रेम का महत्व सोच अपनी झोंपड़ी की ओर देख तप्त निश्वास छोड़ते खड़े रहोगे ।

अगले खण्ड में कवि,ने मित्र के अभाव में जो सूनापन महसूस होता है उस पर सोचते हैं । जब मित्र यहाँ रहा तब वे प्रेम एवं सौंदर्य के गान गाते रहे । अपने सामर्थ्य से वे अचानक लोकप्रिय बने । कम समय में वह कवि मशहूर हुए । वैसे दुःखकाल के जीवन के बाद वह दुनिया से बिदा लेने गया । उसकी कविता युवजन-मन में गुदगुदी पैदा करती थी । मित्र की नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा देख समस्त केरल विस्मित हो उठा । कवि बताते हैं कि धरती का दीपक अगर बुझ जाय तो फिर उसे जला सकते हैं, किंतु स्वर्ग की दीया एक बार बुझ जाये तो सदा केलिए बुझ जाती है । कवि का मित्र स्वर्ग का दीपक था ।

अपने मित्र की अभूतपूर्व उन्नति तथा लोकप्रियता देख केवल इस धरती के लोग ही जलते नहीं थे बल्कि निष्ठुर काल भी जल उठा । मित्र तो निरंतर मानव संस्कृति की श्रीवृद्धि करता रहा । मानवता की रक्षा के लिए वह आजीवन लड़ता रहा । अन्याय एवं अत्याचार देखकर उसका मृदुल मन विक्षुब्ध हो उठा और अपनी सशक्त तूलिका से उनके विरुद्ध प्रतिक्रिया करता रहा ।

वह सौंदर्य तथा चिंतन में समरस लाने के लिए प्रयत्न करता आया। आनंद मृत्यु के लिए विष का काम करेगा। मित्र यह जानता था। आपने अपने आनन्ददायक कविता बाणों से मृत्यु को बेहोश कर दिया। उसने अपनी अमर कृतियों द्वारा मृतनिमिषों को अमर कर दिया। प्रतिशोध की भावना मृत्यु में जाग उठी और वह प्रतिकार करने के लिए कटिबद्ध हो खड़ी हो गयी। मित्र तो उनके गीत भरे होठों पर एक मृदुमुस्कान से उसकी ओर देखता रहा। उसका मृण्मय शरीर अग्नि में जल कर क्षार हो गया किंतु अपनी अमर रचनाओं द्वारा अब भी वह जीता रहता है।

शोकाभिव्यंजना

इस शोक गीत में दिवंगत कृष्ण पिल्लै के प्रति शंकरकुरुप की आत्मीयता की घनिष्ठता का आभास मिलता है। मित्र वियोग से उत्पन्न व्यथा के कारण उनकी दर्दभरी आत्मा जो हूक भरती है, हृदय के अन्तराल से जो आहें निकलती हैं, उनके प्राणों को निष्ठुर मृत्यु की क्रूरता विकल बना देती है, उसकी अभिव्यक्ति इस शोक गीत में हुई है।

यम का तीखा नेजा निष्करुण सब सब पर पड़ता है। मानव के सारे भोले भावों को वह कुचल डालता है। उसके सारे अरमानों को वह चौपट कर देता है। उसका शरीर जितना भी मृदुल-मनोहर क्यों न हो वह अपने कठोर हाथों से तुरंत

झोड डालता है । सृष्टि के सब तलों पर वह अपना पैर रख देता है । विजय का मुकुट उसके सिर पर चमकता रहता है । चराचर प्रपंच, गौरयूथ भी मृत्यु के तेज़ निश्वास लगकर प्रकंपित हो उठता हैं । उसकी पकड से किसी को कोई छुटकारा नहीं है । इस सत्य को जान कर कवि छटपटाता है । मृत्यु को जीतने के लिए कोई भी शक्ति अब तक समर्थ न हुई । अणुकोविद मर्त्य की निस्सहायता देख कवि दुखी और विस्मित हो जाता है ।

मित्र सुकुमार भावनाओं का कवि था । उसे अग्नि निगल चुकी है । फिर भी उसके किरन से मन से जो गीत निसृत हुआ वह अमर है । केवल कवि ही नहीं, केरल-माता भी अपने इस सुपुत्र के वियोग पर शोक-मूक हो आँसू बहा रही है । कला-कामिनी भी आँसू बहाते व्याकुलता से मूर्च्छित सी कहीं पडी है । कवि का रोदन तो गीत बन गया । अपने मित्र के अप्रत्याशित निधन पर कवि का उर व्यथा भार से झुक गया । मित्र के प्रति जो प्यार उनके हृदय में जलता रहता है वह आज शब्दों में फूट पडा है ।

कालकूट पीने पर भी मित्र ने अमृत की गंगा यहाँ बहा दी । उसके माथे पर काले, ज़हरीले बादल उतर गये, फिर भी उसके नयनों में अमृत की गंगा छलक उठी ।

साहित्य क्षेत्र म चङ्ङम्पुषा ने अपने युग का रास्ता उलट दिया था । कोमलकांत पदावली से मधुर मनोज्ञ काव्य का चयन कर उसने मलयालम काव्य जगत् में क्रांति मचा दी ।

अपने अविचित एवं अतुल्य भावना से दुनिया के समस्त दुःख दर्द की कालिन्दी बहा दी । अपने इस प्रेम के पीछे पीछे पुलकित चित्त से कला लक्ष्मी चलने लगी ।

मित्र का मन किरन-सा शुभ्र निर्मल है । इस दुनिया से अकाल में स्वर्ग सिधारनेवाले कवि के स्वागत सत्कार के लिए अप्सर कुमारियाँ पाँति लगाकर खड़ी रहती है । लेकिन मित्र की साध्वी पत्नी की जो स्नेह-ममता उसके मन में उभर आती है, उससे प्रभावित होकर उस शोरगुल से अलग होकर वह अपनी प्रेयसी की झोंपड़ी की ओर बड़ी आतुरता से ताकता रहता है ।

मित्रवियोग जन्य अपनी वेदना की सघनता एवं मार्मिकता को वाणी का परिधान पहना कर प्रस्तुत करने में कवि अपने को असमर्थ पाते हैं । कवि की यह आशा है कि "अपनी अभीष्ट की अभिव्यक्ति में आँसू उपरोध उपस्थित कर देते हैं । भावावेग से कंठ अवरुद्ध हो जाता है । आत्मा की वेदना को शब्दांतरित करने की मित्र की सशक्त तूलिका न मिलने पर अपनी असमर्थता संवेदनशील मित्र ज़रूर समझेगा ।"[1] अपने मित्र की काव्य-प्रतिभा का वर्णन करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है । जब कभी उसके लिए कवि चेष्टा करता तब चित्त की गहराई से आँसू भर आते हैं । मित्र ने तब तक काव्य जगत् में प्रचलित प्रणाली को अपने अद्भुत चमत्कार से आमूलाग्र बदल दिया । अपने काव्य में

---

1. चित्रालेखम् - पाथेयम - जी.शंकरकुरुप, पृ.207-208

उन्होंने सौंदर्य की चिरप्रतिष्ठा करते देख समस्त केरल निर्निमेष खड़ा रहा । वह त्रिकालजयी होकर विराजमान होता है । क्योंकि गत निर्जीव पलों को अनश्वरता से हाथ मिलानेवाले मित्र ने अपनी अमर काव्य प्रतिभा से अनश्वर बना दिया ।

मृत्यु सबको अपनी पकड में ले जाती है । कवि इस पर अतीव दुखी है कि सर्वसंहारिणी मृत्यु के सामने चाहे माता-पिता भ्राता पुण्यात्मा पापी - सब समान है । फिर भी मृत्युरूपी चिरन्तन सत्य के सामने वे सिर झुकाते हैं । अपने मित्र भी इस सत्य से उनको अवगत करा देता है ।

निष्कर्ष

इस शोककाव्य में कवि अपने मित्र एवं दूसरे महान् कवि की स्मृति पर अपनी श्रद्धांजलि समर्पित कर देते हैं । वस्तुत: एक सच्चे मित्र को खो जाने की व्यथा बहुत मार्मिकता से इसमें अभिव्यक्त है ।

****

प्ररोदनम्

कुमारनाशान् से विरचित एक बहुश्रुत बहुचर्चित काव्य है "प्ररोदनम्" । मलयालम शोककाव्य परंपरा में इसका अपना अलग स्थान है ।

"प्ररोदनम्" मलयालम के उन्नायक एवं श्रेष्ठ कवि प्रो॰ए॰ आर॰ राजराजवर्मा के निधन पर कवि की तीव्र शोकाकुलता की अभिव्यंजना है । प्रो॰वर्मा के कृतित्व से आशान काफी मात्रा में प्रभावित थे । उनके प्रगाढ पांडित्य एवं काव्य वैभव देख आशान का यह दृढ विश्वास था कि मलयालम के उत्कर्ष पथ को प्रशस्त करने में वर्मा का योगदान सर्वाधिक प्रशंसनीय रहेगा । भाषा सुधारक एवं साहित्य साधक के रूप में वर्मा ने जो महान् कार्य किए थे, उन सब के कारण उनके प्रति

आशान के मन में श्रद्धा का भाव बढ़ता ही गया । दो प्रतिभाओं की पारस्परिक पहचान ने दोनों के बीच तदनुरूप एक सद्भावपूर्ण संबंध स्थापित भी किया था । वर्मा की विद्वत्ता एवं काव्य प्रतिभा की पहिचान पर आधारित विश्वास और तज्जनित अथाह श्रद्धा ने आशान को अपनी "नलिनी" की भूमिका उन्हीं से लिखाने को प्रेरित किया ।[1] ऐसे कर्मठ व्यक्ति, प्रतिभा धनी, उदारचेता, श्रद्धापात्र महान् पुरुष प्रो. वर्मा का स्वर्गवास आशान पर उनके प्रातिभ अस्तित्व पर वज्रपात ही लगा । अपने आराध्य के तिरोभाव का जो धक्का उनके हृदय पर लगा, उसकी ठिठक से मुक्त होने को कई दिन लगे थे[2] । प्रो. राज राजवर्मा के प्रति आशान की अश्रुपूर्ण श्रद्धांजलि ही यह काव्य है ।

शोकपूर्ण वातावरण

आशान के अन्तस्ताप का प्रस्रवण ही "प्ररोदनम" में प्रवहमान होता है । काव्य का आरंभ इस सर्वनिभूत शोक के अनुकूल वातावरण के चित्रण से शुरू होता है ।

---

1. प्ररोदनम् का आमुख कुमारनाशान्टे पद्यकृतिकल् भाग - 1, पृ.456

2. प्ररोदनम् का आमुख - कुमारनाशान्टे पद्यकृतिकल्, पृ.457 में यों लिखा गया है - "गत मिथुन महीने में जब मैं उत्तर तिरुवितांकूर में भ्रमण कर रहा था तब यह समाचार मिला जो बहुत बड़ा धक्का-सा लगा । वह कितना अप्रत्याशित एवं असह्य प्रहार था । हृदय सन्न सा हो गया । ....बाद खिंचाव कुछ हल्का हो गया । फिर वर्मा-संबंधी स्मरणायें जाग्रत होने लगी । जब वह तीव्र हो गयी तब इसकी रचना मैं ने की ।"

आसमान मेघावृत है, अंतरिक्ष अंधकार से आच्छन्न रहता है। उस कालिमा में वन, उपवन, पर्वत, सागर तथा सरोवर सब डूब जाते हैं। इस भयद वातावरण को अधिकाधिक गंभीर बनाते हुए भारी वर्षा भी हो रही है, मानो अपत्य-नष्ट पर बिलखती माता केरलभूमि की अश्रुधारा सारी धरती को आप्लावित कर रही हो।"[1]

धरती माता के पास उसकी दुहिता केरली मलयालम भी बेहोश पड़ी है। माँ बेटी को आश्वस्थ करने की चेष्टा करती है। केरल के उत्तर भाग कोच्ची और मलबार की देवियाँ भी मृत्यु का समाचार पाकर जल्दी आ पहुँचती हैं। वैसे मृत्युगृह का वातावरण वहाँ सुस्पष्ट होता है। वर्मा के महल "शारदालय" के विशाल कमरे में मृतशरीर लिटा गया है। कवि मृत्यु की क्रूरता पर विचार करते हैं। "मृत्यु को टालना किसी से भी साध्य नहीं है। सब प्राणी जीवन के प्रति अमित मोह रखते हैं। जीवन का सुख भोगने के लिए जब उत्सुक रहें, इसी बीच मृत्यु उन्हें ले जाती है[2]।

वर्मा के गुणों का वर्णन करते[3] आशान की कल्पना उड़ाने भर कर परलोक पहुँच जाती है। वहाँ दिवंगत आत्मा का स्वागत करने केलिए संस्कृत साहित्य के पाणिनि, कालिदास आदि महान् विभूतियाँ पंक्ति लगाकर खड़े हो जाते हैं। कवि कालिदास स्वागतोक्ति करते हैं।

---

1. प्ररोदनम् श्लोक - 1 - कुमारनाशान्टे पद्यकृतिकल, भाग -1, पृ.461

2. वही, पृ.467

3. वही

अपने भ्रमित चित्तावस्था से मुक्त होकर जब यथार्थ की तरफ लौट आते हैं, तब दिवंगत व्यक्ति के मरण से उत्पन्न नष्ट का अवसाद उन्हें घेर लेता है । आशान के स्मृति-पटल पर वर्मा की कारयित्री प्रतिभा की उज्ज्वलता अक्षुण्ण रहती है । भाषा एवं साहित्य की जो बडी सेवायें उन्होंने की वे सब एक एक करके आशान याद करते हैं, जिसके नष्ट बोध जन्य व्यथा बढ़ती ही जाती है । व्यक्तिगत रूप में भी वर्मा का निधन आशान के लिए बडा भारी नुकसान ही था । वे कहते हैं - "आप जैसे परमार्थी बहुत कम दिखाई पड़ते हैं । कवि कहलानेवाले भी विरले होते हैं । शीलगुण होनेवाले भी बहुत कम दिखाई पड़ते हैं । मानवीय गुणों की कमी मानवों में होती है । अगर कोई शील संपन्न होते तो एकमात्र आप ही थे । अफसोस की बात है कि आपकी मृत्यु से उत्पन्न कमी भरने के लिए यहाँ कोई भी नहीं है[1] ।

तपुरान के निधन पर केवल आपके बंधु जन और मित्र ही नहीं, समस्त प्रकृति रोती है । कारण तो यह वियोग व्यक्तिगत नुकसान नहीं, बल्कि देशगत एवं साहित्यिक नष्ट है[2] ।

वर्मा का निधन अप्रत्याशित एवं असामयिक था । मध्याह्न में हुए सूर्यस्त जैसा था । किसी ने यह सोचा तक नहीं कि उनकी बीमारी मरण हेतुक बन जायगी । लेकिन जो होना था, हो गया । भाग्य तो हमारा प्रतिकूल था[3] ।

1· प्ररोदनम् - श्लोक 101, पृ·486
2· वही, श्लोक 67, पृ·466
3· वही, श्लोक 108, पृ·493

तेजस्वी व्यक्तित्व

आशान दिवंगत अपने आराध्य व्यक्ति के जीवन की कुछ घटनाओं का स्मरण करते हैं। विश्वविद्यालय में आपके शिष्यगण तथा मित्रवृन्द आपके वियोग पर आँसू बहाते हैं। वर्मा जब शिष्यों को पढाते हैं, तब बोर्ड की ओर मुड़ना, लिखने के बाद ज़रा टहलने की आदत आदि आशान याद करते है। तपुरान का स्पर्शन भी वे करते हैं। वह राजोचित रूप यों है -

वर्मा से संबंधित जो-जो कार्य एवं चीज़ें होती है, वे सब अब अति दुखद बन गये। तिरुवनन्तपुरम विश्वविद्यालय के आंगन में स्थित उस बड़े आम के पेड की ओर भी कवि हमारा ध्यान आकृष्ट करते और कहते हैं कि वह आम्र वृक्ष भी तंपुरान की स्मृति पर रोते हैं।

नियति की निरवद्ध गति

धीरे-धीरे कवि का व्यथित चित्त मृत्यु की अजेयता पर विचार करने लगता है। यहाँ से उनका दुख दार्शनिक रूप ले लेता है। प्रतिभाशाली मानव तथा संयमितचित्त तत्वविचार में लग जाता है। अंधकार कूप में पडे कीट तथा मानव समान रूप से मृत्यु के अधीन होते हैं।

मृत्यु से उत्पन्न दुःख से शांति पाने के लिए किसी भी कर्मक्षम विधा सहायक न बनती। प्रिय व्यक्ति के निधन पर तप्ताश्रु बहाकर हमको जीना पड़ता है[1]। संसार में सृष्टि के आरंभ से ही मृत्यु अपना प्रभाव दिखाती है। तब से होकर समय और कुसमय में लोगों की मृत्यु होती है। सब जीव जंतु उसे डरते रहते हैं। संसार भर में व्याप्त हवा दुखी लोगों के दीर्घ-निश्वास तथा आसमान पर फैले बादलों का समूह अदृश्यों के आँसुओं का घनीभूत रूप में कवि कल्पना करते हैं[2]।

ऐसा विश्वास है कि मरण के बाद पुण्य पाप के अनुसार प्राणियों को स्वर्ग या नरक निर्धारित किया गया है। लेकिन कवि पूछते हैं कि निजस्थिति कौन जानता है। जड़ से सूखे वृक्ष की छाया का अस्तित्व कैसे संभव है? फिर भी सीमित बुद्धि के लिए अगम्य बात के सत्यासत्य का अनुमान भी हम कैसे कर सकते हैं? प्रपंच का जरूर एक निश्चित नियम होता रहता है। विश्वास कभी निरास्पद या निरर्थक नहीं होता। फिर भी निजस्थिति केवल ऊहा पर निर्भर रहती है।

आशान कहते हैं कि जरूर ऐसा एक सूक्ष्म अंश होता है जो अग्नि के तीखे दाँतों से क्षत-विक्षत न हो पावें। नहीं तो मानव का जन्म ही नहीं यह संसार ही निरर्थक जान पड़ेगा। अगर यह विश्वास ही सच निकला है तो हो मृत्यु! तेरे तीक्ष्ण दाँतों की तेजस्वी निस्तेज हो जाती है और तू

---

1. प्ररोदनम् श्लोक 124, पृ.489
2. वही, पृ.126

विपत्तिरूपी बाघ भी नहीं, किंतु ताज़ा दूध देनेवाली गाय है । इसलिए सब कोई मृत्यु का आश्रय पाते हैं । इस प्रकार जीवन एवं मृत्यु के अंत में मुक्ति की प्रत्याशा अभिज्ञ लोग करते हैं ।

विनम्र प्रणाम

कर्म निरत जीवन से विश्रांति मृत्यु ही देती है । अतः राजराजवर्मा को भी दीर्घनिद्रा में चिर विश्राम लेने की आशंसा देते हैं ।

वर्मा की सादगी, उदारता, विद्वत्ता आदि की प्रशंसा करते हुए कवि दिवंगत आत्मा को वचन देते हैं कि आजीवन आपका शिष्य बन कर आपके आदेशों को अपनाने का भरसक प्रयत्न करेंगे ।

दिवंगत आत्मा के अप्रत्याशित निधन से केरली ने बहुत कुछ खोया है । विधि के वश होने के अलावा निःसहाय प्राणियों का क्या कर्तव्य है ? फिर भी तपुरान की स्मृति को हमारे आँसुओं से सिंचित करके यथाविधि हम रक्षा करेंगे । उस पावन स्मृति पर कालरूपी अग्नि का स्पर्श न होने पावें । कवि कहते हैं कि शंकाकुल बुद्धि हमेशा चंचल रहेगी और कभी-कभी अपथ में भी विचरण करेगी । तब भी कवि का विश्वास है कि वर्मा की आत्मा सूर्य के समान परलोक में कहीं भासित रहेगी,

---

1. प्ररोदनम् श्लोक 56, पृ.455

जहाँ वह चिर-विश्राम कर लेती है । उस शांति गेह को वे सादर नमस्कार कर लेते हैं[1] ।

जैसे पहले देखा गया है, शोककाव्य या तो संतान की मृत्यु पर अथवा मित्र या प्रेयसी के असामयिक निधन से ही उत्प्रेरित है । अर्थात् उनमें वैयक्तिकता के अंश की मुख्यता रहती है । पर "प्ररोदनम् की रचना के पीछे ऐसी कोई घटना नहीं है । उसमें वर्णित शोक का आलंबन मात्र कवि के वैयक्तिक जीवन से संबद्ध नहीं था । न तो वर्मा आशान के कोई बन्धु है और न उनके मित्र । नाता-रिश्ता जितना ही घनिष्ठ होता है, शोक भी उतना ही तीव्र होता है । वर्मा की मृत्यु पर किसी रिश्तेदार या घनिष्ठ मित्र के स्थान पर खड़े होकर आशान रो नहीं सकते । ऐसा कोई संबंध उनके बीच में न था । हाँ, होता तो यह जो एक प्रतिभा का दूसरी प्रतिभा को पहचानने पर होता है । जैसे पहले सूचित किया है कि प्रातिभ नैकट्य । वर्मा का सच्चे दिल से वे आदर करते थे, उनके प्रति सम्मान और स्नेह रखते थे । अतः उन्होंने उनके गुणों और योग्यताओं को देखा था[2] । इससे स्पष्ट होता है कि आशान के मन में वर्मा के प्रति जो भाव था, वह श्रद्धा या सम्मान का था जो एक श्रद्धालु के मन में श्रद्धेय के प्रति व्यक्त होता है । लेकिन श्रद्धा प्रेम से विस्तृत है, अतः वैयक्तिकता की घनिष्ठता कम है[3] । घनिष्ठता की यह कमी अनुभूति की तीव्रता एवं आर्जवत्व मंदीभूत करेगी । श्रद्धा में प्रेम की अनन्यता के

1· प्ररोदनम् श्लोक 147, पृ·501

2· वही, पृ·458

3· श्रद्धा कवित्त प्रेम - आचार्य रामचन्द्रशुक्ल चिन्तामणि भाग 1, पृ·56

बदले अनेकता है । अनेकता में व्यक्ति का महत्व नहीं । वहाँ वैयक्तिकता के बदले सामाजिकता एवं व्यक्ति चिंतन के बदले समष्टि-चिंतन है । वहाँ यह अनिवार्य नहीं कि वह "मेरा ही हो" अपितु वह "मेरा" अपरों का भी हो यह वांछनीय है । "मेरे" के इस प्रकार "हमारे" दिखने में श्रद्धालु आह्लादित होता है जब कि प्रेमी में "मेरे" को "हमारे" के रूप में सपने में भी देख नहीं सकते । जिस व्यक्ति के अन्दर इस प्रकार किसी के प्रति ऐसा घनिष्ठ वैयक्तिकता पूर्ण रागसंबंध होता है, वही उस व्यक्ति या वस्तु के चिरवियोग पर व्यक्तिगत नष्ट की पीडा मे झुलस जाता है । तीक्ष्णता आत्मवेदना का अनुभव कर सकता है । उसके रोदन में ही आत्मीयता एवं हार्दिकता के तीव्र स्पंदन का एहसास हो सकता है । लेकिन श्रद्धेय के निधन पर श्रद्धालु के मन में खिन्नता तो होती है । दु:ख होता है; चिरंतन हानि का बोध भी संभव है; लेकिन वह वैयक्तिक अनुभव या व्यक्ति का अपना सत्य न होकर समूचे समाज का दु:ख एवं नष्ट रह जाता है । उस समग्र समाज स्पर्शी दुरन्त पर श्रद्धालु द्वारा व्यंजित शोक एक सामाजिक उत्तरदायित्व का विवेकपूर्ण निर्वहण है । उसमें हार्दिकता एवं वैयक्तिक अनुभूतियों से बढ कर बुद्धि प्रचोदित शिष्टाचार अधिक रहेगा उसमें व्यक्तिगत संपर्कों से प्रवृद्ध एवं दृढ हार्दिक संबंध के टूट जाने की टीस नहीं रहेगी । आशान का दु:ख भी इसी प्रकार के नष्ट होने पर एक दूरस्थ आराध्य के मन में उत्पन्न आदर समन्वित विषादमात्र है । वह शायद बहुत गहन भी रहा होगा । फिर भी वैयक्तिकता के अभाव और कर्ज अदा करने की भावना का आभास "प्ररोदनम्" में स्पष्ट है । यही कारण है कि "प्ररोदनम्" पर यह आपत्ति उठाई गई है कि वह एक

बौद्धिक शोक काव्य है[1]। अन्य आलोचक भी इस दृष्टि कोण से "प्ररोदनम्" की आलोचना करते हुए मलयालम के प्रसिद्ध आलोचक सुरेन्द्रन का कथन है कि "आशान ने व्यक्तिगत शोक की अपेक्षा दुःख का सामाजीकरण किया है[2]।" एक हद तक यह संगत लगता है। स्वयं आशान ने ही कहा है कि वर्मा के वैयक्तिक जीवन से बढ कर उनके काव्य व्यक्तित्व की महानता से ही उनका संबंध है[3]। लेकिन काव्य में वर्णित शोक कृत्रिमता से रहित है, हृदयानुभूत दुःख की अभिव्यंजना उसमें पायी जाती है।

इस काव्य के आमुख में आशान के अन्तःसाक्ष्य के अनुसार हम को विश्वास करना पडता है कि वर्मा की मृत्यु आशान के लिए बहुत बडा आघात था। वे कहते हैं कि तंपुरान की मृत्यु का समाचार सुनते ही हृदय सन्न सा हो गया। वह एक अप्रत्याशित अघात था। समाचार पत्र और पत्रिकाओं के संपादक चरमश्लोक मांगने लगे। वह और भी मर्मभेदक लगा। एक शब्द भी न लिख सका। हृदय की इस तत्कालीन स्थिति में जब परिवर्तन आ गया तब तंपुरान की स्मृतियाँ जाग उठीं। क्रमशः वे स्मरण अतीव दुःसह हो गये। उनकी मृत्यु पर कुछ श्लोक लिख कर मन की व्यथा कम करने की मैं ने चेष्टा की[4]।" इससे यह सुस्पष्ट होता है कि यह काव्य केवल बौद्धिक विलाप नहीं, किंतु कवि की हृदयव्यथा की ही अभिव्यक्ति है।

---

1. कला और कालम् - डॉ. भास्करन् नायर, पृ.58
2. आशान निरूपणं वेलिच्चवुम् - ए.पी.पी. नम्पूतिरि, पृ.87
3. आशान संपूर्ण कृतिकल - प्ररोदनम् का आमुख, पृ.457-458
4. वही, पृ.457-458

उसमें च-द्र करुणा की गहरी अनुभूति पायी जाती है। प्रत्येक श्लोक में करुण रस पूर्ण हृदयोद्गार लहरें मार रही है। शोक का अपार सागर-सा वह पाठक के अंतरंग में उद्रिक्त करने में समर्थ है। लेकिन यह शोक व्यंजना किसी प्रबल भावावेग से फूट पडी तीव्र धारा सी वेगवती तो नहीं, बल्कि नाना प्रकार की उत्प्रेक्षाओं उल्लेखों व कल्पनाओं से शोकतरंगों को जागरित करके आगे बढने-वाले एक विशाल प्रवाह के समान है। "प्ररोदनम्" की प्रशंसा करते हुए एक लेखक का कथन है कि "प्ररोदनम्" आँसू का दुरासद् सागर है। आँसू की बूँदें या आँसू का तालाब या आँसू की नदी भी नहीं, आँसू का सागर ही है। वह ज्यादा गंभीर है। उसमें शोक की लहरें मार उठती है। उनका निर्घोष मेघगर्जन जैसा लगता है। उसमें शोक के मगर-मत्स्य है, तत्वचिंतन के अमूल्य रत्नों से वह भरा पडा है।[1]" पी.के. बालकृष्णन और ए.पी.पी. नंपूतिरि इस काव्य की खंडनात्मक आलोचना करते है। उनकी राय में इसका शोक कृत्रिम है। तत्व चिंतन तो केवल अलंकार के लिए सिर पर रखा गया किरीट-सा लगता है।[2] इसके विरुद्ध डॉ. एम. लीलावती का कथन है कि "मुझे ऐसा नहीं लगता, "प्ररोदनम्" का शोक कृत्रिम नहीं, किसी के अनुरोध पर आशान ने यह शोककाव्य नहीं लिखा। वर्मा के निधन से जो हानि भाषा एवं साहित्य को हुई है, उसे भरनेवाला कौन होता है? कवि का यह प्रश्न हृदय से निकला है, यह दुःख कृत्रिम भी नहीं[3]।"

---

1. आशान संपादक के.जी. माधवन, पृ.75
2. आशान और स्तुतिगायक - सी.नारायण पिल्ले, पृ.83
3. कण्णीरुं मषविल्लुं - डॉ.एम. लीलावती, पृ.64

आदर की दीपाराधना

"प्ररोदनम्" की दु:खानुभूति की सच्चाई या हार्दिकता पर संदेह प्रकट करने का एक अन्य कारण यह भी है कि कवि की आध्यात्मिकता से संपुष्ट जीवन दर्शन ने जीवन के कटु अनुभवों के प्रति उनके प्रति स्पंदनों को नियमित एवं विवेकपूर्ण ही बना दिया था । अत: दु:खानुभवों पर साधारण सांसारिक जीवों के समान अनियंत्रित विलाप प्रलाप और उच्छृंखल भावावेग के बदले स्थिर-मनस्क की तात्विक या आध्यात्मिक दृष्टि ही अधिक रहती थी । अत: अंतरंग में उद्वेलित शोकानुभूतियों को दार्शनिक कंचुक पहनाकर वे प्रकट कर देते थे । मलयालम के अन्य विलाप काव्यों में उद्दाम शोकाकुलता की जो तड़प है, जो अदृष्ट निन्दा है, जो असहायता की भावना है, जो अस्थिर चित्तावस्था का प्रदर्शन है, वह न तो "प्ररोदनम" में है, न "वीणपूवु" में । अत: आशान के शोक में अनास्था की असहायता नहीं । और न सर्वनाश की निराशता है । दु:ख को दार्शनिक स्तर पर रख कर देखने के कारण उससे संबंधित शोकानुभूतियाँ साधारण पाठक की समझ के परे की ठहरती है । यह भी ध्यान देने योग्य है कि शोकनिवेदन के दौरान स्वर्गगामी धर्म की आत्मा के स्वागत के लिए पाणिनी, कालिदास आदि महान् विभूतियों को प्रस्तुत होते दिखाया है । अर्थात् ऐसी महान् प्रतिभाओं के श्रद्धापात्र बनाकर वस्तुत: आशान ने धर्म की उदग्र प्रतिभा के प्रति अपने आश्चर्यान्वित आदर को ही प्रकट किया है । "हे स्नेहार्द्राशय ! आप की विद्वत्ता, लालित्य, प्रेम आदि महान् गुणों पर विस्मित होकर आपके चिरवियोग पर हम रोते हैं।[1]"

---

1. प्ररोदनम् - श्लोक 24, पृ.467

देश-भाषा क्यों गिने, वाग्देवी सहित सारे भूलोकवासियों के लिए जिस व्यक्ति का निधन दु:ख हेतु हुआ, उस साधारण एवं अलौकिक कृतित्व के प्रति अपने हृदय में वीराराधनापूर्ण भाव ही अपने चिरपरिचित वर्मा के प्रति आशान के मनमें था । वर्मा की मृत्यु पर - सामाजिक संपत्ति के नष्ट पर समस्त समाज को अनुभूत सामाजिक दु:ख कवि में भी स्वाभाविक है । वही दु:ख किसी वैयक्तिक हानि से उत्पन्न नहीं, लाभचिंतन से प्रेरित ममत्व पर आधारित भी नहीं । अत: उस सामाजिक दु:ख की व्यंजना में दिवंगत व्यक्ति के प्रति कवि की हृदयास्थ आराधना, श्रद्धा आदि भी बुलन्द रहती है तो बिल्कुल सहज है । अत: यह विलाप आस्तिक-सहज आशापूर्ण आध्यात्मिक जीवन दृष्टि से समवेत संयमी स्थिर प्रज्ञ की बाष्पांजलि बन गया है । इसलिए डॉ॰ लीलावती ने ठीक ही कहा कि "यह एक विलाप स्मारक नहीं, बल्कि आराधना स्मारक है । हृदयक्षेत्र की प्रतिष्ठा है । रुदन का दीन स्वर या प्रार्थना का स्वार्थ वहाँ है ही नहीं । केवल आदर की दीपाराधना होती है । दूर-दूर तक गुंजित वह घण्टानाद न तो निराशा का है न अंधकार का । किंतु केवल वीराराधना का है । वहाँ रोदन की दीनता या मृदुता नहीं, परंतु वीर का बल है । शेल्ली के भावोद्वेग तथा मिल्टन की आध्यात्मिकता का परिवेश इस में देखा जाता है[1] ।

---

1. कण्णीरुं मषविल्लुम् - डॉ॰ एम॰लीलावती, पृ॰77

दार्शनिक दृष्टिकोण

शोकगीत का यह सामान्य स्वभाव है कि उसका विलाप काव्यांत में आकर तत्वविचार में परिणत होता है। दु:ख संतप्त चित्त को अपनी दिशा हीनता से मुक्त होकर किसी न किसी आसरे पर आश्वस्त होना ही पड़ता है। "प्ररोदनम्" में भी यह सामान्य स्वभाव दर्शनीय है। धर्म के निधन से उत्पन्न अन्त:ताप को नाना प्रकार के वातावरणों के चित्रण एवं दिवंगत व्यक्ति के जीवन की घटनाओं के संस्मरण आदि के द्वारा व्यंजित करने के साथ साथ विधि की सर्वातिशायिता, उसके सामने मानव की असहायता, मृत्यु की अनिवार्यता, नरजन्म की क्षणभंगुरता आदि अस्तित्वचिंतन भी उभर आता है।

जहाँ तक दु:ख और विवेकोद्रेक का संबन्ध है, आशान अन्य शोककाव्यकारों से अलग स्थान रखते हैं। सहज ही सन्यासवृत्ति की ओर झुके हुए आशान के अन्दर संस्कृतिजन्य और अभ्यासार्जित आर्षज्ञान पर आधारित आत्मज्ञान एवं जीवन दर्शन रूपान्वित हो चुका था। आध्यात्म दर्शन की इस भारतीय परंपरा में दीक्षित आशान भी कपिल आदि[1] सिद्धांतों के समान विवेकिता को जाग्रत करनेवाले, सच्चे ज्ञान को प्रदान करनेवाले दु:ख के उपासक थे। दु:ख को ज्ञानप्रदत्त गुरु के रूप में वे मानते थे[2]।

---

1. दु:खत्रयाभिघातात्जिज्ञासा तदपघातके हेतौ - सांख्यदर्शन कारिका
2. क्षमा के समान अच्छे बन्धु तथा व्यथा जैसे सद्गुरु दूसरा कोई है ही नहीं। चिन्ताविष्टयाय सीता श्लो - 4।

आशान् संपूर्ण कृति, भाग 1, पृ.507

इस प्रकार मृत्यु, जो सांसारिक जीव के लिए आत्यंतिक नाश-सी लगती है, आशान के लिए शरीर का नाश मात्र है। शरीर के नाश पर उनका खेद इसलिए है कि वह जागृत प्रतिभा-मनीषा के व्यापारों को कार्यान्वित करके गरिमामय आत्मतत्व का स्पष्टीकरण करके उससे समाज को लाभान्वित करनेवाले समर्थ साधन के नष्ट के रूप में हैं। अतः कवि कहते हैं यह शरीर नश्वर है। इसकी शाश्वत रूप में रक्षा करना किसी के वश की बात नहीं, लेकिन शाश्वत प्रेम की रक्षा के लिए हो सकें तो सौ बार मरना भी अच्छी बात है[1]। दुःख और प्यार यहाँ ध्यातव्य है, परस्परानुपूरक है। दुःख संग्रहशील है, जबकि सुख वर्जनशील है। दुःख उनके प्रति है जो हमारेलिए प्यारे है। प्यार रागसंबद्ध है, आत्मा और आत्म का नाता है। आत्मसंबंध के स्थूल स्वरूप प्यार तत्वदर्शन में आत्मविस्तार या आत्मोत्कर्ष का साधन है। दुःख विमोचन का मार्ग भी यह प्यार है[2]। अगर यह आत्मोत्कर्ष ही जीवन की चरितार्थता है तो उसकी ओर व्यक्ति को ले जाने वाले प्यार के लिए मर मिटना युक्ति ही है। उस परम अवस्था की ओर प्रवृत्त करने वाली प्रेरक शक्ति तब दुःख है तो वह घातक नहीं, प्रत्युत तारक है। यही कारण है कि आशान स्वयं अपने को दुःखोपासक कहते हैं[3]। दुःख को गुरु स्वीकार करने से, दुःखोपासना से प्रयोजन यह हुआ कि उनका अन्तःकरण उद्बुद्ध हो सका। विवेकिता के साथ मृत्यु की स्थिति पर विचार कर सके। दिन भर के प्रयत्न के बाद रात में विश्राम देने के लिए निद्रा आके हमारे

---

1. प्ररोदनम् - श्लोक 49, पृ.473
2. दुःख मोचन के लिए आविल आत्मा। तू प्यार करना सीख। बालामणियम्मा -
3. प्ररोदनम् - श्लोक 34, पृ.263
आशान संपूर्ण कृतिकल्, भाग दो

नेत्रों को सहला कर सुलाती है । इसी प्रकार प्राणियों को जीवन रूपी समर से उत्पन्न क्लान्ति को मिटाने के लिए मृत्यु आती है, और शाश्वत निद्रा में विलीन करा देती है[1] ।

दुनिया में सृष्टि की स्थिति मानव की स्थिति आदि के परिप्रेक्ष्य में मृत्यु को रखकर विचार करने पर सृष्टि की सहज प्रकृति के रूप में समझ लेने में कठिनाई नहीं हुई[2] । वेदोपनिषदों में निरूपित आत्मतत्व की अनश्वरता और प्रापंचिक वस्तुओं का परिवर्तन आदि ने उन्हें सुझा दिया कि लोकं नित्य चलं वृथा मृतिभयम्[3] । आशान के भारतीय चित्त ने समझ लिया कि यह जीवन कर्मण्यता की है[4] । साथ ही साथ निवृत्ति का तत्पर भी है । इस प्रकार कर्मनिरत जीवन बिताते हुए सब प्रकार के कर्मबन्धों से निर्मुक्त होने की परमावस्था के रूप में मृत्यु को आत्मतत्व की उत्कर्षपूर्ण दशा के द्वार के रूप में देखते हैं[5] ।

---

1. प्ररोदनम् श्लोक 34 - आशान संपूर्ण कृतिकल, पृ.494
2. द्विविमो पुरुषो लोके
   क्षरश्चाक्षर एव च
   क्षर सर्वाणि भूतानि
   कूटस्थो/क्षर उच्यते । भगवद्गीता श्लोक 16, पृ.195
3. प्ररोदनम् - श्लोक 93, पृ.494
4. कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजिविषेच्छद् समो:
   एवं त्वयि नान्यथेतो/स्ति न कर्म लिप्यते नरे:
   ईशावास्योपनिषद् मंत्र - 2
5. प्ररोदनम् - श्लोक 139,
   आशान संपूर्ण कृतिकळ् भाग 1, पृ.495

इस प्रकार सांसारिक जीवन के झमेले से चिन्दु पर छुट्टी ले लेना मात्र है, मृत्यु । वह एक विरामचिह्न नहीं, विश्राम है । सर्वचराचर एवं सारा विश्व परिवर्तनशील है, उस शाश्वत धर्म शक्ति के अधीन है जो पार्यंतिक है, जो जन्म-मृत्यु कारक है, तो कोई भी उसका अपवाद नहीं हो सकेगा । इस आध्यात्मिक दृष्टि ने कवि से उस मृत्यु रूपी चिर परिवर्तन को "एकान्ताद्वयशांतिभू" के सामने नमित कर दिया, जहाँ पहुँच कर सब कुछ अपनी हस्ती खो देते हैं । कुछ से कुछ हो जाते हैं । जहाँ सब कुछ समान हो जाते हैं । प्रपंच को अंधकार में विलीन करके शोक, आकुलता, भय आदि को दूर करके मृत्यु की शांति-भूमि को कवि वंदना करते हैं[1] ।

मृत्यु की सर्वस्पर्शिता का यह बोध मृत्यु भय के बदले आत्मोन्नति के लिए उपयोगी अन्तःकरण जागरण का कारण बनता है । मृत्यु संबंधी ऐसी दृष्टि शुद्ध भारतीय है, वेदान्त सम्मत है । वेदान्तविद् आशान केलिए यह सहज भी है । मृत्यु के द्वारा उत्कर्ष को अर्जित करनेवाले आत्म तत्व की अनश्वरता की यह अवधारणा आशान की इतर रचनाओं में भी द्रष्टव्य है ।

निष्कर्ष

अपने श्रद्धेय वर्मा जी की मृत्यु से संबद्ध यह शोककाव्य आशान की श्रेष्ठ रचना है । दिवंगत आत्मा का चारित्रिक वैचित्र्य साहित्यिक प्रतिभा उच्च आदर्श आदि का उल्लेख करते हुए कवि ने अपने वैयक्तिक शोक को सामाजिक स्तर पर व्यंजित करके अपनी रचना चातुर्य को प्रमाणित किया है ।

---

1. प्ररोदनम् - श्लोक 147, आशान संपूर्ण कृतिकळ् भाग 1, पृ. 501

भारतेन्दु

आधुनिक मलयालम् जगत् की प्रौढता के प्रतीक महाकवि जी शंकरकुरुप की लिखी हुई कविता है, भारतेंदु । देश के स्वतंत्र होने में गांधी जी का जो हाथ था, उसे भूल कर गोली मार कर उनके प्राण लेने की कृतघ्नता हमने की । इस अत्याचार पर जी शंकरकुरुप् का कोमल मन शोकाकुल हो जाता है, गांधी जी की जीवनी पर एक विहंगम दृष्टि डाल कर आपकी महानता पर विचार करते हुए उस महामानव को कवि अश्रुसिक्त श्रद्धांजलि अर्पित कर देते हैं ।

विषयवस्तु-विवेचन

अपनी माता के प्रति गांधीजी की स्नेह ममता की ओर ध्यान आकृष्ट कराते हुए कवि कहते हैं कि गांधी जी अपनी वत्सल माता का यह अनुग्रह बचपन से ही प्राप्त करते थे कि "अपने लाडले बेटे के नेतृत्व में भारत संसार भर का मुकुट बन जाएगा ।"[1]

1. भारतेन्दु - पाथेय - जी. शंकरकुरुप, पृ. 180

भारत के इन्दु की महानता भारत के "इन्दु" गांधीजी के बारे में कहते हैं कि यद्यपि बाह्याकार से बापू चन्द्रमा के समान आकर्षक न हो, फिर भी सत्य और प्रेम से इन्दु के समान वे सुशोभित हुए। भारत के राजनीतिक इतिहास के क्षितिज में धीरे-धीरे वे चांद जैसे उदित हुए।[1]" अपनी सौम्य प्रकृति, उदार स्वभाव और निर्मल कर्मों से आप जन-मन में प्रतिष्ठा पा सके।

अपना आत्म सम्मान खोकर विदेशी सत्ता से डर कर गुलामी की जंजीर में चिरकाल तक आबद्ध भारतीय जनता में आज़ादी और आत्माभिमान की चेतना जगाकर उन्हें सचेत, सात्विक और तेजस्वी बनाने का महत्वपूर्ण कार्य बापू ने किया। आज़ादी के रास्ते में सैकडों विघ्न जो आ घिरे उन सब को दूर कर देश प्रेम की लहरें उठाने में भी बापू यत्न करते रहे। केवल भारत ही नहीं, अनेक भटके हुए गुलाम देश गांधीजी का आह्वान सुनकर स्वातंत्र्य-प्राप्ति के लिए सजग हुए। जागरूक जनता की बढ़ती शक्ति को देखकर साम्राज्यवादी सत्ता गिडगिडाने लगी। जब हम पराधीन थे, तब अंग्रेजों ने कितने अन्याय किये, नाना संकटों से हमें तंग करते रहे, जिन से दम घुट हम आँसू के सागर में डूब गये थे। तूफानी ज़माने की इसी मोड पर भारत के "इन्दु" का उदय हुआ। अंधेरे भारतीय जीवन में आशा की किरणें उनके किरन-मन से ही फूट निकली जिसके प्रकाश से हमारे बदन संतोष से दमक उठे। साम्राज्यवादियों के निष्ठुर एवं भीषण मुख के दर्शन हमें बापू ने कराए। भारत सारे पौरस्त्य देशों का नेतृत्व करके सुनहले भविष्य की ओर बढ़ता रहता है।

---

1. भारतेंदु - पाथेय - जी. शंकरकुरुप, पृ.178

कवि बापू की महान् नेता की प्रशंसा करते हुए बताते हैं कि "आसमान का चन्द्रमा नीलाकाश में निश्चल खड़ा प्रकाश देता है; किन्तु धरती का चन्द्रमा बापू भारत के गाँवों की झोंपड़ियों में रहनेवाले दीन-दुखियों के हित के लिए उन्हें आशा की नयी स्वर्णिम किरण प्रदान करते हुए उनके खोये आत्मविश्वास को पुनः जीवित करने का प्रयास करते हुए घूमते रहे।[1]" उन अभागों के दिलों में जीवन की ज्वलन्त समस्याओं से पीड़ित जनता का करुण क्रन्दन इस मानवता के पुजारी के लिए असह्य था। अपनी वाणी से बापूजी ने उन्हें आश्वासन दिया। वे उनके हृदय में सत्य, अहिंसा एवं देश प्रेम का मंत्र फूँकते आए। किसी प्रकार का संघर्ष किए बिना, सभी यातनाओं को देवहित मानकर चले, तुच्छ जीवन बितानेवाले लोगों का उद्धार करने में गांधीजी सतत प्रयत्नशील रहे।

गांधीजी के वियोग में शोकाभिव्यक्ति

भारत की आज़ादी की, तथा भारतीय जनता की सर्वतोन्मुख उन्नति की गहनतम आस्था रखकर भारत के भविष्य के प्रति सुनहले स्वप्न जिसकी हृत्तंत्रियों को झकझोर कर रहा था, जिस महामानव ने जीवःशक्ति खोकर मृतप्राय राष्ट्र को नव-जीवन देकर जागृत किया, उसे दीपशिखा की भाँति स्वतंत्रता का आलोक प्रदान किया, देश के पावन व्यक्तित्व के उस महा-प्रतिनिधि का एक भारतीय अत्याचारी ने अन्त कर दिया।

---

1. भारतेंदु - पाथेय - जी - पृ.179

बापू प्रेम के पुजारी थे। बराबरों के प्रति समान भाव से प्रेम दिखानेवाले, इस धरती के लिए स्वर्ग के अपार ऐश्वर्यों को बटोरने के लिए स्वयं भूल कर, जल कर, मर कर हमें, अमृत पिलाने की कोशिश कर भारत भर में स्नेहदीप जलानेवाले उस प्रभा पुंज को, भेद भावना की पथरीली दीवारों को अपने हृदय की स्नेहाग्नि की ज्वाला से तोडनेवाले उस ज्योति पुंज को हम में से एक किरात ने हमेशा के लिए बुझा दिया। इस दुनिया में कृतघ्नता का अवतार लेकर उसने अपने निष्ठुर हाथों से उस अहिंसा के पुजारी, प्रेम के दूत, उस पुण्य चरित को मृत्यु वक्त्र में फेंक दिया। इस जघन्य पाप पर कवि अपना रोष इस प्रकार व्यक्त करते हैं कि "सभ्य कहलानेवाला तथाकथित मानव अब भी अपनी हिंसात्मक मनोवृत्तियों को मन में छिपाये रखता है। उन्नति एवं संस्कृति पर गर्व करनेवाला मानव अब भी अपने हृदय के अन्तराल में बाघ का अग्नि नेत्र, सिंह का तेज़ एवं नुकीला नख तथा अजगर का विषैला दांत छिपाये रखता है। सच कहें तो मानव अब भी जानवर है।"[1] इस धरती की पवित्रता तथा पुण्य के समान, अपनी ज़िन्दगी को कर्मनिरत रखकर भारत तथा जगत् की भलाई का मार्ग आपने खोल दिया।

हिन्दू, मुसलमान, सिख तथा ईसाई को समान मान कर सब को सत्य और अहिंसा का मार्ग दिखानेवाले उस पुण्यात्मा की छाती को किसी नीच ने फाड लिया। इतिहास के पन्ने इस निष्ठुर करनी से कलंकित (मलिन) हुए। उस सायंसन्ध्या में महाकाल के नेत्रों से आँसू बह आए। भूगोल एकदम कंपित हुआ।

---

1. भारतेंदु - पाथेय - जी·शंकरकुरुप, पृ·180

कवि कल्पना करते हैं कि "आसमान का चन्द्रमा इस जघन्य पाप से अतीव पीला पड गया। कवि इस निष्ठुर कुम के बारे में टिप्पणी देना नहीं चाहते। गरम आँसू भारत माता के दिल से निसृत होते हैं। आसमान के चन्द्रमा से निकली स्निग्ध शीतल किरणें धीरे-धीरे गायब हो जाती है, किन्तु भारतेंदु बापू के यहाँ से तिरोधान होने पर भी सत्यधर्म प्रेम एवं अहिंसा के उनके जो महान् आदर्श है, उसकी प्रभा हमारे जीवन पथ को सदा आलोकित करती रहेगी[1]।"

"जैसे दीप को बुझाने के लिए आनेवाला शलभ या तो स्वयं जल मरेगा, या उसका पंख कट जाएगा, लेकिन दीप फिर भी जलता रहेगा, वैसे बापू के इस दुनिया से परलोक पहुँच जाने के बाद भी उनकी चिता में मृत्यु का पंख ही जला गया, उनकी आत्मा अमर बनी रहेगी[2]।" केवल बापू के मृण्मय शरीर को ही हत्यारे ने नष्ट किया। आज गांधीजी नहीं रहे। किन्तु उनके सिद्धान्त और उनसे दिखाये गये पथ सदैव हमारे साथ रहेंगे। उनसे भारतीय जनता को सदैव नूतन आलोक मिलता रहेगा। गांधीजी यहाँ जीवित है, हमेशा जीवित रहेंगे।

"भारत के "इंदु" के प्रति अपनी अपार श्रद्धा व्यक्त करते हुए, गांधीजी के प्रभाव को ग्रहण करते हुए बडी सजीव एवं मार्मिक ढंग से गांधीजी पर किए हुए अत्याचार पर अपना दुःख और क्षोभ प्रकट करते हैं। बडे खिन्न होकर वे याद करते है कि समस्त जीवों के ऐश्वर्य के लिए, मानव हित के लिए

1· भारतेंदु - पाथेय - जी·शंकरकुरुप, पृ·18।

2· वही, पृ·18।

आत्मार्पण करनेवालों पर कैसा आतंक भरा मचा दिया जाता है। जिनकी भलाई के लिए कुछ किया गया वह उसका घातक बना। ऐश्वर्य दाताओं से अतिनिष्ठुर एवं जघन्य पाप ही दुनियावाले करते हैं। यह भारतवासियों पर चिर कलंक का ही कारण बन गया है। इस पर कवि अपनी अपार वेदना और विक्षोभ व्यक्त करते हुए कहते हैं कि यह घातक साधारण मानव नहीं, बाघ की तीक्ष्ण दृष्टि, सिंह का तेज़ नख तथा सांप का विषैला दांत हृदयांतराल में छिपाने वाला जंगली जानवर है।

बापू हर क्षेत्र में समस्त जनता के उद्धार की बात सोचते थे। एकांगिता नहीं, व्यापकता उनका मुख्य लक्ष्य है। निश्चय ही उनके आगमन से भारतीय समाज में नूतन भाव और विचार का जागरण हुआ। बापू ने अपने कर्म-क्षेत्र में तन-मन प्राण एवं आत्मा का समर्पण करके भारत के ही नहीं विश्व के योग क्षेम के लिए मृत्युपर्यंत काम करते रहे। सब तरह की भेद भावना को मिटाने के लिए उनके अथक परिश्रम का प्रतिदान हमारी ओर से यह था कि किसी कृतघ्न भारतीय ने उनके क्रियाशील जीवन का स्पन्दन सदा के लिए समाप्त किया।

निष्कर्ष

गांधीजी एक युग की मांग थे। उन्होंने शांति, सत्य अहिंसा के आदर्शों द्वारा हमारे हृदय के नये भाव द्वार खोल दिये।

विश्व के इतिहास में, संसार को ऐश्वर्य एवं शांति प्रदान करनेवाले महापुरुषों की पंक्ति में बापू प्रथम गणनीय होंगे। भारत माता के इस सुपुत्र के वियोग में कवि ने अपना दुःख इस काव्य में प्रकट करते हैं।

****

लोकान्तरङ्ङिलल (लोकान्तरों में)

स्वर्गीय श्री॰ नालप्पाट्टु नारायण मेनोन के प्रथम निधन तिथि में आपकी भतीजी तथा मलयालम के नामी कवयित्री बालामणियम्मा अपने मामा के चरणों पर पितृतर्पण के रूप में यह शोककाव्य समर्पित कर देती है । ऐहिक जीवन से निवृत्त आत्मा लोकान्तर यात्रा में लीन रहती है, जिसके साथ ही साथ कवि भावना भी सैर करती है । यहाँ पर भावावेग की कोई गुंजाइश नहीं, बल्कि विचार, विकार का नियंत्रण है । यह काव्य हृदय की अपेक्षा बुद्धि से ज्यादा संलाप करता है । यह भावमयी स्मृति का गीला गान तो नहीं है फिर भी सोचने-विचारने का अवसर प्रदान करता है । किंतु इस शोक काव्य के अन्त में कवयित्री का कंठ आँसू को रोकने के प्रयास में ज़रा अवरुद्ध हो गया है ।

विषयवस्तु संग्रह

इस रचना के दस खंड हैं । कवयित्री का यह विचार है कि किसी की मृत्यु पर सगे संबंधियों का रोना उस व्यक्ति की परलोकयात्रा में विघ्न उपस्थित करने का कारण बन जाएगा । अतः बिना आहें भरते कवयित्री परलोक पथिक का पीछा करती है । अपनी ममता जन्य रुदन बडे यत्न से वे रोक लेती है, और मामा की आत्मा को निर्बाध आगे बढने की कामना करती है ।
हे मेरे गद्गद । मेरे श्रेष्ठ गुरु को पीछे खींचने का प्रयत्न न कर ।[1]

दूसरे व तीसरे खंड में मृत्यु के प्रारंभिक क्षणों का चित्र प्रस्तुत किया गया है । अगले खंड में कवयित्री अपने गुरु की अंतिम घडियों की याद कर लेती है । जब उनका निश्चेष्ट शरीर चिता पर सज्जित कर देता है, तब कवयित्री का मन भी दहकने लगता है; चिता से मांगलिक धुंआ उठकर अंतरिक्ष में फैल जाता है ।

पाँचवें खंड में दिवंगत नालप्पाटन् की आत्मा की विशिष्टताओं पर प्रकाश डाला गया है । वे इतने निष्ठावान् और संयमी थे कि परलोक की यात्रा उन के लिए कभी दुष्कर न होगी । अतः भूमि में रहे उनके बन्धु जनों का रोना कभी उचित नहीं, क्योंकि मृत व्यक्ति की सुगम स्वर्गयात्रा पथ में यह रोडा अटका देगा ।

---

1. लोकान्तरंगलिल - बालामणियम्मा, पृ.1

अगले खण्ड में भाव-भरे इस प्रपंच का वर्णन है, जहाँ रहकर अपनों के सहारे परलोक की आत्माओं से हमारा संबंध जोड़ना आसान होगा। परलोक में परेतात्मा के सारे के सारे अरमानों की पूर्ति हो जाएगी। खुशी की एवं आश्वास दायिनी बात यह है कि स्वर्ग में रहकर वे गुरुजन धरती में तामस-राजस में पड़े अपने प्रियजनों पर अनुग्रह की वर्षा करेंगे। इससे बढ कर आनन्द दायक बात और क्या हो सकती है? सुदूर अदृश्य लोक में उपस्थित कवि दुनियादारी भूलते नहीं। अपने वंशजनों की भलाई चाहनेवाले वे स्नेहाद्राशय अब भी हमारी याद करते रहते हैं।[1]

देवभूमि से निकलकर महरलोक तक आनेवाली आत्मा के बारे में आठवें खण्ड में कवयित्री एक उज्वल चित्र खींच लेती है। कवि का ध्यान गहन से गहन आर्षसिद्धांत की तरफ जाता है। अगले खण्ड में पुनर्जन्म पर विचार कर रही है। जो पूर्वपरिचय जीवात्मा में सुप्तावस्था में पड़ा है वह धरती की पुकार सुनकर जागृत हो उठता है पूर्णता का इच्छुक मनुष्य कई बार जन्म लेता है। दिवंगत आत्मा ने भी कई बार जन्म लिया होगा। आगे का जन्म आत्मा को निवृतिदायक सिद्ध कर देगा।[2]

अंतिम खंड में आत्मा के धरती की ओर लौटने का चित्र अंकित किया गया है। यहाँ वापस आकर वे पूर्वाधिक सुख-सौभाग्य से जिएंगे। वैसे उनके निधन से उनकी अपनी या प्रपंच की

---

1. लोकान्तरंगलिल - बालामणियम्मा, पृ.16
2. वही, पृ.21

कोई हानि नहीं होती । किंतु इस शोककाव्य की अंतिम चार पंक्तियाँ कवयित्री के सारे के सारे ज्ञान को तहस-नहस कर उन्हें केवल मिट्टी का जीव बना देती है । "फिर भी हृदय में पीडा भरी रहती है । वे प्रियंकर अपने मामा एक सुनहले सपने की भांति ओझल हो जाते हैं । उन्हें और क्या एक बार हम इस फिसलते मार्ग पर देख सकेंगी ? या देखें तो पहचान पावेंगी ?[1] कवयित्री के इस परिदेवन में काव्य का सारा विलाप, सारा शोक मूर्तभाव धारण कर लेता है ।

तीव्रशोक की संयमित अभिव्यक्ति

इस शोककाव्य के बाद में इसकी भूमिका में पी.कुट्टिकृष्ण मारार कहते हैं कि "यह काव्य अन्य शोकगीतों से एकदम भिन्न है, इसमें प्रत्यक्ष रुदन नहीं, जहाँ तहाँ कवि की अन्तरात्मा से एक दबी सिसकी उठती है, उसे भी दबाने का प्रयास हुआ है[2] ।"

आत्मा की परलोक-यात्रा में शोकित बंधु जनों के आँसू वैतरणी न बनने की तीव्र इच्छा से प्रेरित होकर अपने अन्तर्मन से अनजाने बहे आँसुओं को रोकने का प्रयास कवयित्री करती हैं । "किसी भी बात पर ध्यान देने बिना उचित पद को लक्ष्य बना कर आगे बढ़नेवाली आत्मा हमारे आँसुओं की बनी वैतरणी में न पड़े[3] ।"

---

1. लोकान्तरंगलिल - बालामणियम्मा, पृ.24
2. वही, भूमिका, पृ.3
3. वही, पृ.24

अपने मामा के सद्गुणों पर नपे तुले शब्दों से कवयित्री प्रकाश डालती है -

"सुकृतियों को बुराइयों की दीवार में बाँध न पावें।"[1]

अपने ज्ञानदाता एवं स्नेहदाता इस गुरुजन के प्रति कवयित्री के मन में कितना आदर का भाव भरा रहता है। उनका मन अवसाद से आक्रान्त नहीं। लेकिन अनुभूति की तीव्रता अवश्य है। उसे अनुभव करनेवाले शब्द कभी संयम न छोड़ते। शालीनता की प्रतिमूर्ति कवयित्री अपने इस शोककाव्य में आद्यन्त सन्तुलन का पालन करती रहती हैं।

निष्कर्ष

उच्चस्वर के विलाप की अपेक्षा मौन रोदन अधिक प्रभावशाली या हृदयद्रावक होता है। "लोकान्तरंगुलिल" में कवयित्री अपने तीव्र रुदन को दबाये रखकर अपने मामा की स्मरणा के सामने आदरपूर्वक अंजलि अर्पित करती है। स्मृति की मृति नहीं होती।

****

---

1 लोकान्तरंगिलिल - बालामणिअम्मा, पृ.10

छठा अध्याय

हिन्दी और मलयालम शोककाव्य - तुलना

छठा अध्याय

हिन्दी और मलयालम शोककाव्य - तुलना

पिछले अध्यायों में हिन्दी और मलयालम के प्रमुख शोककाव्यों का विवेचनात्मक अध्ययन हुआ है। उसके आधार पर दोनों भाषाओं के शोकगीतों के तुलनात्मक अनुशीलन द्वारा सामान्यत: अनुभूति व अभिव्यक्ति के स्तर पर उनमें साम्य - वैषम्य की खोज प्रस्तुत अध्याय में की जाएगी।

कथ्य की दृष्टि से सभी शोककाव्यों का आधार स्थायी वियोगजनित व्यथा है। शोकानुभूति को संवेद्य बनाने में कवि-दक्षता, अनुभूति की प्रवणता, तीव्रता, सघनता तथा उसे संप्रेषणीय बनाने की अभिव्यंजन-क्षमता - दोनों भाषाओं के कवियों में न्यूनाधिक मात्रा में पायी जाती है। कभी प्रस्तुत मर्मस्पर्शी अवस्था को अपनी स्वाभाविक कल्पना से, प्रकृति के उपादानों से और भी हार्दिक बना दिया गया है।
कहीं प्रौढ गंभीर चिन्तन द्वारा मानव के क्षणिक जीवन संबन्धी चिरन्तन समस्याओं तथा अन्य निगूढ रहस्यों का उद्घाटन हुआ है।

तो कहीं कवि का दुःख चिन्तन द्वारा प्रशमित और नियन्त्रित हुआ है । अन्य काव्यों में दार्शनिकता का पुट नहीं पाया जाता । वियोग की पीडा के अनुभव की तीव्रता, वियुक्त के साथ वियोगी - कवि - के रिश्ते के स्वभाव एवं घनिष्ठता पर आधारित है । अतः शोकगीतों की तुलना का आधार इन्हीं रिश्तों पर स्थिर कर दिया गया है । यथा हिन्दी और मलयालम के शोकगीतों में अपत्यवियोग पर लिखे शोकगीतों को एक वर्ग में रख सकते हैं । उस रिश्ते के टूट जाने पर उत्पन्न पुत्र-शोक की व्यंजना दोनों भाषाओं में बडी मार्मिकता के साथ हुई है । कभी एक दूसरे की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट कोटि की भी सिद्ध होती है । इसी प्रकार मित्र के नष्ट पर किए गए विलाप की तुलना भी की जा सकती है । पत्नी या प्रेयसी के चिरन्तन वियोग पर अभिव्यक्त शोक तथा गुरुजनों और लोकनायकों के निधन पर हुई व्यक्तिगत शोकाकुलता तथा देशगत हानि पर अभिव्यक्त शोक के अलावा किसी भावात्मक या प्रतीकात्मक शोक पर लिखे काव्यों की तुलना भी की जा सकती है । प्रस्तुत अध्ययन में यही रीति अपनाई गई है ।

वर्ण्यविषय के साथ कवि के राग-संबन्ध की स्थिति को दृष्टि में रखते हुए शोककाव्यों को दो विभागों में विभक्त कर सकते हैं - {1} व्यष्टिगत और {2} समष्टिगत ।

प्रथम विभाग के शोककाव्यों में कवि के वैयक्तिक जीवन में घटित किसी चिरवियोग से व्यथा उत्पन्न होने से उसकी अनुभूतियों में आत्मनिष्ठता रहेगी । दूसरे प्रकार के शोक काव्यों में

औपचारिकता भी लक्षित होती है । इसमें वैयक्तिकता की अपेक्षा सामाजिक महत्व अधिक होता है; दिवंगत आत्मा से कवि का सामाजिक नाता रहता है । लोकनायकों गुरुजनों के निधन पर समाजगत एवं लोकगत नष्ट पर कवि शोक प्रकट कर इन महामानवों की स्मृति पर श्रद्धांजलि अर्पित कर देते हैं ।

तीसरे वर्ग के भावात्मक शोककाव्यों में प्रतीकात्मक वर्णन द्वारा जीवन और जगत की क्षणिकता का बोध दिलाने का प्रयास करनेवाले काव्य आते हैं ।

पठित शोककाव्यों के आधार पर व्यक्तिपरक शोकाभिव्यक्ति के रिश्ते-नाते के अनुसार और पाँच विभाजन कर सकते हैं ।

1. अपत्यहानि से उत्पन्न दुःख ।
2. पत्नीवियोग के कारण अनुभूत व्यथा ।
3. भावात्मक या प्रतीकात्मक शोककाव्य ।
4. मित्र के निधन पर उद्भूत वेदना ।
5. गुरुजनों तथा लोकनायकों के विनष्ट पर अभिव्यक्त व्यथा ।

1. अपत्यनष्ट पर अनुभूत शोक की अभिव्यक्ति

हिन्दी में "सरोज स्मृति" और "पुत्रवियोग" में संतान की अप्रत्याशित तथा असामयिक निधन ही सृजन-प्रेरणा है तो मलयालम में "ओरुविलापम्" और "चुटुकण्णीर" {तप्तबाष्पम्} में अपत्यनष्ट से अनुभूत शोक की तीव्रतम अभिव्यक्ति है ।

"सरोजस्मृति" में सरोज का निधन उसके विवाह के एक वर्ष बाद हुआ है तो "पुत्रवियोग" के बेटे की मृत्यु बचपन में हुई है ।

"ओकविलापम्" की बच्ची अपने माता-पिताओं के दीर्घकाल के जप तप से प्राप्त पूंजी है । ढलती उम्र में वरदान-स्वरूप प्राप्त बच्ची बचपन में ही अकस्मात् चल बसी जैसे दूज और अमावास्या एक साथ आ गयी । "कुट्टकण्णीर" में भी बेटी का निधन बचपन में ही अप्रत्याशित रूप में होता है ।

उपर्युक्त शोक गीतों में अपनी संतानों की वियोगजन्य वेदना की सघनता एवं व्यापकता कविता द्वारा अभिव्यक्त हुई है ।

संतान तो पति-पत्नी के सम्बन्ध को सशक्त बनानेवाली प्रबल कड़ी है । दांपत्य-जीवन की सफलता भी संतान प्राप्ति पर निर्भर रहती है । इस प्रकार संतान का निधन दांपत्य जीवन पर लगा प्रबल धक्का होता है ।

निराला के जीवन में वियोग की एक लड़ी ही आयी । एकाकी कवि के प्यार का आसरा पुत्री थी । उसके लिए आजीवन वे विधुर रहे । किन्तु आर्थिक पराधीनता के कारण ही उचित उपचार एवं चिकित्सा मिलने से भरे यौवन में उस अलोक सुषमावाली किन्तु रुग्ण पुत्री का देहान्त हुआ ।

इसी पर निराला का हृदय क्षत विक्षत होता है, "पुत्रवियोग" में वह दुखिया माता जो बेटे को रात-दिन की साधिन है, पुत्र को खो जाने से गुम-सुम बैठती है । पुत्र को एक बार देखने की व्यर्थ लालसा पर वह जीती है ।

ओर्हविलापम् के वत्सल पिता ईश्वर से रह-रह कर यही प्रश्न करते हैं कि अगर लेना है तो क्यों दिया ? ढलती उम्र में मिली बच्ची की प्राप्ति अकिंचन के अकस्मात् कुबेर बनने के समान थी । किंतु एक मोहक स्वप्न जैसे जल्दी बच्ची "ओझल हो गयी । "चुटुकण्णीर" के पिता अपनी लाडली के लिए उसके पसंद की चीजें लेकर घर आते तो पुत्री का निश्चेष्ट शरीर ही वे देख पाते हैं । सब उत्तरोत्तर शोकतीव्रता को बढानेवाली बातें हैं ।

अपत्यहानि से उत्पन्न शोकतीव्रता उक्त चारों कृतियों में उसकी चरम सीमा पर द्रष्टव्य है । चारों कृतियों में शोककाव्य के सामान्य लक्षण - मृत्यु की अजेयता, उसके सामने मानव की निसहायता, तत्वचिंतन के सहारे दुःख को संयमित करने का प्रयास, ईश्वर पर अटल विश्वास एवं आत्मा की अनश्वरता से उत्पन्न पुनःमिलन पर विश्वास - ये सभी देखे जाते हैं । इन चारों गीतों में वियोग वात्सल्य का हृदयस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत कर दिया गया है । वत्सल पिता के टूटे दिल की वेदना की सघनता बडी मार्मिकता के साथ अभिव्यक्त करने में चारों कवियों ने सफलता पायी है । इन चारों काव्यों के कवियों का व्यक्तित्व भी अलग अलग पाठक अनुभव कर सकते हैं ।

सन्तान की स्मृति को मन में बसा कर उनींद रहनेवाले उन पितृहृदय की वेदना उसकी समस्त गहराई एवं व्यापकता के साथ अनुभूत कराने में ये कवि सफल हुए है । बच्ची की चिकित्सा केलिए कोई मार्ग न देख कर वह अकिंचन पिता आसमान की ओर देखकर पहरों बैठते हैं ।

पुत्र की स्मृति लेकर अपने सूने जीवन में विह्वल होकर तड़प रहनेवाली माता का चित्र भी पाठक भूल नहीं सकता ।[1]

"ओरुविलापम्" के पिता विधि के क्रूर ताडनाओं से मर्माहित होकर दुःख के अथाह सागर में असहाय पडे रहते हैं । पुत्री के भविष्य के प्रति रंगबिरंगी सुनहले सपने बुननेवाले वे पिता निराशा के गर्त में पडने पर भी अपने अनन्य आस्तिकता बोध से बच जाता है[2] । वृद्कण्णीर में श्री·टी·आर· नायर भी अपनी वत्सल बेटी की नित्यहरित स्मृति को हृदयकाश में इन्द्रधनुष के समान सुन्दर बनाये रखकर संतप्त चित्त होकर अपना शून्य जीवन किसी प्रकार बिताते रहते हैं । वे भी दिल को कचोटने वाली उस स्थिति में भी देवहित के लिए अपने को पूर्णतः समर्पित करते हैं । जब तक ईश्वर जीने दें, तब तक पुत्री की पुण्य पुनीत

1· तड़प रहे हैं विकल प्राण ये
मुझको पल भर शांति नहीं है
xx xx xx
बडा जटिल पीरस लगता है
सूना, सूना जीवन मेरा ।"

मुकुल - पुत्रवियोग - सुभद्राकुमारी चौहान,पृ·170

2· "ओरुविलापम् - सी·एस·सुब्रह्मण्यन् पोटी,श्लोक 175-176

तथा अमर स्मृति में जीने का निर्णय कवि लेते हैं।"

उक्त कृतियों में इस प्रकार की समानता होने पर भी निराला का भावोद्गार कुछ भारी पड़ता है। उस समय की सामाजिक विषमताओं एवं धार्मिक रूढियों के प्रति तीव्र आक्रोश का स्वर मुखरित करता है। कवि के मानसिक तनाव का सही अंकन इसमें हुआ है। उन्हें जीवन में अनेक कष्ट और दुःख सहने पड़े। अनेकानेक प्रयत्न करने पर कहीं भी उन्हें आश्रय नहीं मिला। "सरोजस्मृति" की प्रतिपंक्ति के पीछे एक तरुण निःसहाय, दुखी, विधुर किन्तु वत्सल पिता का मुख पाठकों की ओर झाँकता हुआ सा लगता है। उसकी अनुभूतियाँ जीवन की भट्टी में पकी है। विस्मय इसमें है कि वह किसी की हमदर्दी नहीं चाहता। यही "निराला" का निरालापन है। सरोजस्मृति के "निराला" के अलावा अन्य काव्यों के पिता आर्थिक दृष्टि से दुखी नहीं। समाज में उनका उच्च स्थान भी था। किन्तु विधि के सामने उनको लाचार रहना पड़ा। अपनी संतान को लेकर उन्होंने कागज का जो आलीशान महल बनाया उसे दुर्भाग्य ने धराशाई कर दिया। इस अघटन घटना के प्रथम झोंके से सब का मन झकझोर हुआ। रो-रो कर सिसक-सिसक कर उनकी कसक क्रमशः बाहरी तौर पर शांत हुई। किन्तु अपने भीतर वह झुलस रही थी। दुःख एवं निराशा में डूब मरने से आस्तिकता उनकी रक्षा करती है। दिवंगत संतानों की

---

1. चुटुकण्णीर - टी.आर.नायर, पृ.16

आत्मशांति की प्रार्थना सभी काव्यों में होती है। यही नहीं, विधाता की इच्छा के लिए वे स्वयं अपने को समर्पित कर देते हैं।

अनुभूति की सहज, अनायास, अनिवार्य सशक्त अभिव्यक्ति होने से इन शोककाव्यों की प्रभविष्णुता इतनी तीक्ष्ण होती है कि इन कवियों की अन्तरात्मा की वास्तविक तथा निगूढ वेदना पाठक महसूस करता है। हृदय की उन्निद्र पीडा की सच्ची सीधी अभिव्यक्ति इन काव्यों में हुई है। बच्चा चाहे अपना हो या पराया सब के प्यार का, आकर्षण का केन्द्र होता है। उसका नष्ट सब का नष्ट होता है। इसलिए इसमें सार्वजनीनता आ गयी है।

तत्वचिंतन के सहारे ये कवि दुःख मोचन का मार्ग ढूंढते नहीं। जब मन बुरी तरह बेचैन और अस्वस्थ होता है, निराशा एवं दुःख उसे जब घेर लेते हैं, प्राणप्यारे व्यक्ति के आकस्मिक वियोग का धक्का लग जाता है, एक प्रकार सूनेपन अनुभव करता है तो मन सहज ही तत्वचिंतन की ओर मुडता है। इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को भी ये शोककाव्य प्रमाणित कर देते हैं। कभी-कभी मन आत्माहुति की इच्छा तक प्रकट करता है; किंतु विवेकिता तथा अचंचल भक्ति-विश्वास उसकी रक्षा करता है। इन काव्यों में सांसारिक क्षणिकता तथा मृत्यु की अनिवार्यता पर कविलोग चिंतन करते हैं। फिर भी प्यारी संतान की आत्मा

शांति से तोष से रहने की कल्पना उनके आहत दिल को भी एक हद तक तसल्ली देती है।

सरोजस्मृति में तत्वचिंतन की अपेक्षा स्थान-स्थान पर सामाजिक बुराइयों और धार्मिक रूढियों पर तीखा व्यंग्य करने से शोक की धारा बीच-बीच में टूट जाने सी लगती है । फिर भी शोकतीव्रता अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है । अन्य शोककाव्यों में वियोग के तीव्राघात से उत्पन्न उद्गार है, "ओरुविलापम्" में पोटी ने स्पष्ट कहा है कि "प्रकाशित करने के उद्देश्य से इसे नहीं लिखा है, बल्कि यह हृदय का भार हल्का करने के लिए लिखा हुआ है ।"

दु:खातिरेक से उत्पन्न नैराश्यभाव प्राय: इन सभी शोककाव्यों में स्पष्ट किया गया है । अपनी संतानों के बचपन के बीत जाने के पहले ही अन्तिम संस्कार करना पडा तो कौन माता-पिता निराश न हो जाता ? फिर भी यह निराशा भी क्षणिक है कि मोक्ष में भगवान की सन्निधि में इनके सुखी रहने की कल्पना में ये खुश होते हैं, दु:खभार इस प्रकार हल्का

---

1. ये कान्यकुब्ज कुल कुलांगार
   खाकर पत्तल में करें छेद । अपना सरोजस्मृति - निराला, पृ.144

2. वे जो यमुना के से कछार
   पद फटे बिवाई के, उधार
   खाये के मुख ज्यों पिये तेल
   चमरौधे - तूते से ककेल वही, पृ.155
   निकले, जी लेते, घेर गंध ।

3. ओरुविलापम् - प्राक्कथन

करने की कोशिश भी करते हैं । चिन्तन का यह आश्वासन तीव्र दु:ख के भँवर के ऊपर एक महान् शांति-चक्र का सृजन करके इससे ऊपर उठने की शक्ति प्रदान करता है । जिससे मन एक हद तक शांत हो जाता है; वेदना की झंझा के झोंके रुक जाते हैं । इस आशावादिता के पीछे भी इनकी दबी सिसकियाँ सुन सकते हैं;, तप्तनिश्वास अनुभव कर सकते हैं, स्मृति की मृति नहीं है ।

अंग्रेज़ी शोककाव्यों का प्रभाव इस विषय में विशेष रूप से मलयालम के शोककाव्यों पर परिलक्षित होता है । "ओरुविलापम्" के अन्त में पोट्टी यह सोचकर ज़रा आश्वस्थ हो जाते हैं कि "अपनी बेटी स्वर्गकुमारियों के साथ ईश्वर के चरणों में आमोद से रहती होगी । अपने शोककाव्यों में मिल्टन और शेली ने भी ऐसी कल्पना की है[2] ।"

2· पत्नी-वियोग व्यथा

प्रियवियोग पर रचित शोकगीतों में प्रसाद का "आँसू", सियारामशरण गुप्त का "विषाद" वी·सी·बालकृष्ण पणिक्कर का "ओरुविलापम्" (एक विलाप) और नालप्पाट्ट् नारायण मेनोन का "कण्णुनीर्त्तुल्लि" (अश्रुकण) उल्लेखनीय है ।

1· ओरुविलापम् - सी·एस·पोट्टी, श्लोक 190

2· Whilst, burning through the inmost veil of Heaven
The soul of Adonais, like a star,
Beacons from the abode where the Eternal are"
Percy Bysshe Shelly - Adonais L.492-495

And now the sun had stretch'd out all the hills
And now was dropt into the western bay
At last he rose, and twitch'd his mantle blue
To-morrow to fresh woods and pastures new.
Milton - Lycidas, p.190-194

प्रेमिल जीवन ज़िन्दगी का सबसे आनन्दमय समय है । लेकिन जब जोडी बिछुड जाता है, मिलन की आशा सदा के लिए मिट जाती है तो मन में दु:ख घर कर बैठता है । प्रतिभाशाली कवि अपनी स्वानुभूत पीडा एवं अपने मन के उद्गारों को कविता में व्यंजित करने को विवश होता है ।

"आँसू", "विषाद", "ओर्मविलापम्" और "कण्णुनीर्त्तुल्लि" के कवि अपने आत्मिक मनोवेगों को अभिव्यक्त करते हैं जो पाठकों के मन में संवेदनक्षमता बढाते हैं । अत: साधारणीकरणगत मूल्य की दृष्टि में ये शोककाव्य उत्कृष्ट स्तर के हैं ।

उपर्युक्त काव्य प्रणेताओं को अपनी प्रेयसियों से वियोग दु:ख भोगना पडा है । प्रसाद के "आँसू" और वी.सी.के "ओर्मविलापम्" में यह स्पष्ट नहीं बताया कि वे नायिकाएँ कवियों की परिणीता धर्मपत्नी ही है । "विषाद" और "कण्णुनीर्त्तुल्लि" में यह स्पष्ट बताया गया है कि उन शोकगीतों की नायिकाएँ उनकी पत्नियाँ हैं । आँसू की नायिका और कवि के बीच द्रुस्वकाल का प्रणयसंबन्ध रहा ।[1] "ओर्मविलापम्" की यही बात है ।[2] आँसू की नायिका सदा के लिए कवि को छोडकर चली गयी । तब तक अपने जीवन में एक के बाद एक हो कर अनेक वियोग सहते आए कवि के लिए यह सब से बडा आघात था । एक बहुत बडा दु:ख अपेक्षाकृत छोटे दु:खों को धो डालता है । यह बडा दु:ख ही कवि के मस्तिष्क में घनीभूत

होकर एक दुर्दिन में बरसने लगा है।[1] "ओरुविलापम्" के कवि की प्रेमिका विषूचिका से चल बसी। अपनी प्रेमिका के मृत शरीर को गोद में लिटा कर एक टिमटिमाते दीपक के सामने अकेले बैठकर अमावास्या की रात में हुई इस दुखद घटना पर कवि विलाप करता है। "विषाद" में कवि की धर्म-पत्नी उनके घर की दीप थी। घर को अँधेरे में छोड़कर वह चली गयी। "कण्णुर्नीत्तुल्लि" में बात अलग है। दीर्घकाल के उन प्रेमियों की प्रत्याशापूर्ण तपस्या का शुभ परिणाम था उनका विवाह। किन्तु एक साल के अन्तर ही अपने प्रथम जात बच्चे के साथ कवि की पत्नी का निधन हुआ। आकस्मिक आघात से वे बेहद आहत हो जाते हैं। तत्वचिंतन के शुष्क उपचार से आपके आँसू सूखे नहीं। पत्नी की मृत्यु से उद्भूत दुःख उनको इतना पीडादायक लगा कि छाती में कील गड गयी हो। अतः तत्वचिंतन के सहारे दुःख मोचन उनको इतना असाध्य था जैसे कि कालिदास के रघुवंश में अज महाराज की पत्नी इन्दुमती के वियोग में उनके दुःख शमन के लिए महर्षि वसिष्ठ ने उनको धीरज बाँधने का उपदेश अज के शोकभरे हृदय में स्थान न पाने से शिष्यों के साथ ही लौट गये।[2] वैसे ही तत्वचिंतन भी वियोगी पति नालप्पाटन् के संतप्त हृदय को सान्त्वना न दे पाने से लौट गया। किन्तु महापण्डितों को भी मूढ बनानेवाली शोकतीव्रता से उत्पन्न निराशा के साथ तत्वचिंतन को मिलाकर नश्वरतावाद के ऊपर आशावाद की विजय की स्थापना की गयी।

---

1. आँसू - जयशंकर प्रसाद, छंद।
2. रघुवंश - कालिदास 8-91, पृ. 136

"आँसू" और "कण्णीर्त्तुल्लि" (अश्रुकण) की पृष्ठभूमि की भिन्नता के कारण ही दोनों के तत्वचिंतन के स्वरूप में भी भिन्नता दीखती है । नायिकाओं के रूपवर्णन में भी अंतर साफ प्रकट हुआ है । प्रसाद जी ने अपनी नायिका का नख-शिख और अतीत के संभोग की अनुभूति जहाँ वर्णन किया है । नालप्पाट ने अत्यन्त संयम का पालन किया है, भले ही उनके दांपत्य के साम्राज्य में मात्र वे दोनों स्वच्छन्द रहे । "विषाद" में भी नायिका की सुंदरता की झलक मिलती है, "ओर्मिलापम्" में कवि को चंपक के फूल को लात मारने का कनकवर्णवाली, लालित्य की मूर्ति प्रेयसी की याद आती है तो भी इनका ध्यान बाह्य रूपवर्णन की अपेक्षा नायिका के प्रेम-पूर्ण व्यवहार पर अधिक केंद्रित है । भविष्य में उस अपूर्व प्रेम की अलभ्यता पर वे रोते रहते हैं ।

"आँसू के अन्त में जो तात्त्विक निष्कर्ष है, वह हमारे इस जीवन के लिए आशाप्रद और उपयोगी सिद्ध हो सकता है । मानव के तथा मानवीय भावनाओं के प्रेम और सौंदर्य के - कवि होने के कारण "आँसू" में मानवीय विरह-मिलन के इंगितों पर वे विराट् प्रकृति को सजा-धजाकर नचा सकते हैं । संसार दुखमय है । सारी सृष्टि दुख से पीड़ित है । सुख भी दुःख है । कवि इस क्षणिक जीवन को सुखी बनाने के पक्षपाती है ।

आध्यात्मिक और व्यावहारिक तथ्यों के बीच संतुलन स्थापित करने की चेष्टा "आँसू" में मिलती है । अपने हृदयाकाश में जो नक्षत्र लोक फैला है उसे कवि अपने "महामिलन" के

ज्वालामयी जलन के स्फुलिंग ही मानते हैं जब दुनिया कवि के आगे मिथ्या सी लग रही है, तब भी प्रसाद जी को प्रिया चिर-सुन्दर सत्य-सी ही लग रही है । बादलों के बीच बिजली की चपल चमक से सारी की सारी प्रकृति में अपनी प्रिया का अश्य सौंदर्य ही कवि को दृष्टिगत होने लगता है । अपने दु:ख की कठोर धूप में भी अज्ञात नायिका की कवि प्रतीक्षा करते हैं ।

प्रेम का स्वरूप भी स्वानुभव का होता है 'आँसू' में कभी-कभी कवि अपनी प्रेयसी की बेरहमी एवं स्वार्थी मनोवृत्ति पर उद्भूत निराशा और अन्त:क्षोभ को भी प्रकट करते हैं । अपने स्नेह-सरोज के छिनने के बाद अगले क्षण सूख जाने की कुंठा कवि को अकुलाता है । तरुण कामुक की अतृप्त वासना भी कवि को बुरी तरह बेबस कर डालती है । एक साधारण लौकिक प्रेमी के समान अतृप्ति की जलधि में तिरनेवाला कवि-चित्त अन्त में आशावादिता में प्रविष्ट होकर विश्वमंगल की भावना को अपनाता है । प्रसाद जी के अलावा अन्य तीनों विधुर कवि अपनी दिवंगत प्रेयसियों के अनन्य प्रेम की प्रशंसा ही यथेष्ट करते हैं । स्नेह-शून्यता का उनपर कोई आरोप नहीं करते । आगे वह स्वर्गीय प्रेम की अप्राप्यता पर ही उनकी वेदना है । उन प्रेयसियों के गरिमामय व्यक्तित्व का वर्णन वे करते हैं जहाँ प्रसाद जी की दृष्टि अपनी प्रेमिका के बाह्याकार पर ज्यादा टिक जाती है । आँसू काव्य के दूसरे संस्करण में कवि ने अपनी नायिका को परलोक की प्राणी मानकर आध्यात्मिकता का पुट देने का प्रयास किया है । लेकिन प्रसाद के घनीभूत दु:ख से बरसनेवाले आँसू तथा कण्णनीत्तुल्लि के कवि के हृदय की अतल गहराई से निसृत अश्रुकण - दोनों

जीवन की वास्तविक प्रयोगशाला में उत्पन्न तीक्ष्ण क्षार पदार्थ है ।

"आँसू" और "कण्णीर्त्तुल्लि" में उत्कृष्ट तत्वचिंतनको आँसू के धागे में पिरोया गया है । "ओरुविलापम्" में भी गंभीर तत्वचिंतन मिलता है। मृत्यु की अजेयता तथा उसके सामने सृष्टि के मुकुट, होशियार मानव की निःसहायता को वे सूचित करते हैं । प्रसाद जो दिनों तक रोते रोते क्रमशः संयमित हो जाते हैं, एक मोहमुक्त दार्शनिक की चित्तावस्था प्राप्त कर लेते हैं । किन्तु नालप्पाटन् के वियोग की अनबुझी आग की लपटों में तत्वचिंतन घी का काम करता है, उनकी दुःख ज्वालाएँ और अधिक प्रोज्वलित हो जाती है, किन्तु बाहरी तौर पर नहीं । उसके अन्तर्मन में एक बाडवाग्नि जलती रहती है भले ही बाहर वे शांत दिखाई देते हैं । दुःख की बाढ में तत्वचिंतन का सेतु-बन्धन असफल रह जाता है । विषाद में उस प्रकार का कोई भी प्रयत्न नहीं होता । उसमें तत्वचिंतन का कवि साथ नहीं लेता । अपना वियोग दुःख जाननेवाले, उन जैसे दुखी सीताविरह से शकलित श्रीराम की शरण में वे आश्वासन पाते हैं । दोनों आजीवन वियुक्त रहे । किन्तु अपनी प्रिय पत्नी के परलोक मार्ग को वह प्रेमी पति अपने अश्रुकणों से दुस्तर बनाना नहीं चाहते । कवि जीवन के अभिशाप को नियति की देन मान कर वेदना और नियति में सम्य स्थापित करते हैं ।

आँसू के कवि मिलन के बाद के विरह की मार्मिक अनुभूति का सशक्त उद्घाटन करते हैं तो नालप्पाटन पत्नी मृत्यु के

तीव्र दु:ख को वाणी देते हैं । संवेदना में प्रखरता और अभिव्यक्ति में भास्वरता प्राय: देखने को मिलती है । ये दोनों शोककाव्य चिंतन का गांभीर्य रूप की भद्रता तथा हृदयहारी काव्यगुणों से अनूठी रचनाएं हैं ।

"विषाद" और "ओतविलापम्" भी अपनी अनुभूति की सघनता से उत्तम कोटि की रचनाएं हैं ।

चित्त को दग्ध करनेवाली व्यथा इन सब शोक काव्यों का प्रमेय है । इन में अतीत की गरिमा और सुखानुभूति की स्मृतियाँ एक साथ हृदय को झकझोरने लगती है । तब मन उलझ कर चिन्तनग्रस्त हो जाता है । सबों में अतीत को लेकर मर्मभेदी रूदन हुआ है । प्रेम की स्मृति रूप की छाया से आप्लावित है । प्रियतमाओं के गुणस्तवन में सब मानो एक प्रतियोगिता में जुटे हुए हों । किन्तु "विषाद" और "ओतविलापम्" में अधिकांशत: प्रिया के गुणों पर ज़ोर दिया गया है; रूपों पर नहीं ।

अतीत की स्मृतियाँ वेदना को जन्म देती है, विधुरों की सुप्त व्यथा को जगा देती है । असह्य पीडा से सभी व्याकुल हैं । घोर निराशता सब को घेर लेती है । भविष्य उन्हें तमोमय दिखाई पड़ता है । कहीं आशा की किरण नहीं शोक ज्वाला से घनीभूत अंधकार में ये सभी विधुर पति टटोलने लगते हैं, तत्वचिंतन के ठोस धरातल पर दृढ खड़े रहने का प्रयास करते हैं; किन्तु आँसू की धारा से ये दुखी विधुर फिसल जाते हैं ।

दुःख से प्रकंपित हृदयों से भविष्य को सोच निराशा के कारण लडखडाते पैरों से अतीत की मधुर स्मृतियों का पाथेय लेकर ये प्रियतम एवं पति आगे बढते हैं। चारों को प्राण-प्रेयसी का परिचरण नष्ट होता है। दिन-रात शुष्क नीरस पडे है; सारे सुन्दर सपने मिट्टी में मिल गये हैं। सब के मन में मिलन की आतुरता भरी पडी है। मन में यह विषाद भरा प्रश्न उठता हैं कि "तेरा प्रेम मैं कैसे भूल सकता हूँ ?" इस अनादयन्त अनवद्य सुन्दर प्रेम से आजीवन वंचित रहने की खिन्नता उनकी स्मृति में विकल रागिनी-सी बज उठती है।

तीव्र प्रकाश के बाद आनेवाले घोर अन्धकार जैसे अपने भाग्य विपर्यय को सोचकर मन में कुंठा उत्पन्न होती है।

अन्य शोकगीतियों की अपेक्षा "विषाद" की विशेषता यह है कि इसके कवि दार्शनिक सिद्धान्तों से प्रभावित दृष्टिगत नहीं होते। इसकी भाषा भी पोट्टी के ओरुविलापम् जैसे अत्यन्त सरल है। किंतु वी॰सी॰ के ओरुविलापम् में गंभीर तत्व चिंतन का रंग चढाते हैं और कवि कामना प्रेयसी के उत्कृष्ट गुणों से, सौंदर्य से अभिभूत है। जैसे कि "अतुल्य शोभावाले कितने मूल्यवान् रत्न सागर गर्भ में अज्ञात पडे हैं, कितने कानन कुसुम अपने राग रंग तथा गंध मरन्द, सभी कानन के अन्दर बेकार कर देते हैं।"[1] वैसे प्रेयसी के गुण भी अज्ञात रहे। अब उसके आकस्मिक निधन से

---

1. ओरुविलापम् - वी॰सी॰कृतिकल, वी॰सी॰बालकृष्णपणिक्कर, पृ॰77

वे गुण व्यर्थ हुए। इन सभी शोककाव्यों में हर विधुर कवि अपनी प्रेयसी के गुणों के वर्णन में, उनके शालीन, कुलीन, प्रेमिल व्यवहार की सुखद स्मृतियों में अपने को खोये दिखाई पड़ता है।

अंग्रेज़ी शोक काव्य ग्रामीण विलाप (एलिजी रिट्टण इन ए कण्ट्री चर्च यार्ड) से वी.सी. का "ओरुविलापम्" के कतिपय श्लोकों का आशय मिलता जुलता है। इस समानता के कारण ग्रेकी एलिजी का प्रकट प्रभाव इसमें पाया जाता है।[1]" भावगांभीर्य लाने का सर्वस्पर्शी प्रभाव वाणी में मिलता है। लेकिन विषाद के कवि अपने हृदगत भावों को अनायास अभिव्यक्त कर देते हैं, उसमें किसी प्रकार का गंभीर चिंतन लाने का प्रयास वे नहीं करते। पत्नी निधन के बाद कई साल अपने एकांत तमोमय पथ मे वे आगे बढ़ते हैं। सीताविरही राम जैसे उनकी शैया में बेसुध पीडाएं करवटें लेती रहती है।

पुनर्जन्म में सभी कवि विश्वास रखते हैं। स्वर्ग के नन्दनवन में अपनी प्रेयसियों सुख से जीने की कल्पना सब करते हैं। दु:ख दर्द की आँधी मे झकझोर करते समय में भी भगवान के चरणों पर अपनी शांति ढूंढने का इन कवियों का यह प्रयास आर्ष

---

1. 'Full many a gem of purest ray serene
The dark unfathomed caves of Ocean bear'

Thomas Grey.

"माराननिक्रकाश प्रचुरिम पूरलु दिव्यरत्नगलेरे
पारावारत्तिनुल्लिल परमिरूल निरयुं कन्दरत्तिल किटप्पू"
वी.सी. कृतिकलु - वी.सी.बालकृष्णपणिक्कर, पृ.77

भारत की संस्कृति एवं परंपरा का प्रत्यक्ष प्रमाण है । इन शोककाव्यों के सम्बन्ध में महाकवि भास के शब्दों में शब्द मिलाकर कहना पड़ता है कि "एको रस करुण एव " व्यक्तिगत जीवन के दुरन्त की सच्ची अभिव्यक्ति ही इसकी उपज है ।

3. भावात्मक या प्रतीकात्मक शोक काव्य

श्रीमती महादेवी वर्मा का "मुर्झाया फूल" और महाकवि कुमारनाशान् का वीणपूवु [झड़ा फूल] इस कोटि की रचनाएं है।

उक्त दोनों कृतियों में एक भौतिक साहचर्य से जागरित व्यथा की अभिव्यक्ति है । इनमें न किसी सगे सम्बन्धी या रिश्तेदार की मृत्यु से उत्पन्न वियोगव्यथा है और न किसी मित्र के अकस्मात् कालकवलित होने से फूट पड़ी अश्रु का तेज प्रवाह "वीणपूवु के संबंध में बताया जाय तो "केवल मानव सौभाग्यों की अनिवार्य तथा आत्यन्तिक दुःखात्मक परिणति की मार्मिक मीमांसा इस काव्य का प्रमुख प्रमेय है ।"[1] असल में इन दोनों कविताओं में संवेदनशील कवि हृदय में फूल के कांतिपूर्ण अस्तित्व की ह्रस्वता और क्षणिकता ने मानव के भौतिक अस्तित्व की क्षणभंगुरता तथा उसके वैभव की निस्सारता-सम्बन्धी अस्तित्व चिंतन को जगा दिया है । इनमें उन वैचारिक अनुभूतियों को काव्यात्मक अभिव्यक्ति ही हुई है । वीणपूवु में पुष्प की पतितावस्था कवि के

---

1. मलयालम साहित्य एक सर्वेक्षण - डॉ॰ए॰रामचन्द्र देव, पृ॰54

मन को पुष्प के विगत जीवन के उत्कर्ष के दिनों का दौरा कराती है तो अतीत की पृष्ठभूमि में वर्तमान की दीन हीन स्थिति का साक्षात्कार कवि को एहसास कराता है कि जीवन एक असहाय स्थिति है जिसके साथ व्यक्ति का कुछ भी नहीं चलता है । आखिर ज़िन्दगी स्वप्न की भांति मिथ्यास्पद है ! फूल की विभिन्न अवस्थाओं से होकर प्रतीक भंगिमा से प्रशोभित आशान् का अस्तित्व चिंतन भारतीय अद्वैत दर्शन में आकर टिकता है और वहीं उनका व्याकुल किन्तु आस्तिक चित्त आश्वस्त हो जाता है ।

"मुरझाया फूल" में "वीणपूव्" की यह दार्शनिक गंभीरता उपलब्ध नहीं । उसमें भी पुष्प की शैशव कालीन निष्कलंकता, सुषमा तथा यौवन के उत्कर्ष और वैभवपूर्ण अस्तित्व का हृदयहारी चित्रण हुआ है, जिसके द्वारा फूल के झड जाने के दुःख की अनुभूति पाठक के मन में तीव्रतर हो सकी । इस स्तर पर आशान और महादेवी में अद्भुत समानता देखी जाती है । किन्तु महादेवी पुष्प की इस विभूति के विनष्ट होने की व्यथा को मानव के पार्थिव अस्तित्व की क्षणिकता एवं भौतिक वैभव की अर्थहीनता से सम्बद्ध तत्वविचार के ऊँचे स्तर पर ले जाना चाहतीं, जैसा आशान ने किया है । उन्होंने मानव की कृतघ्नता, स्वार्थी प्रयोजनवादी मानव प्राणी की भौतिक सत्ता की लघुता एवं गर्हणीयता का ज्ञान उस फूल की उपेक्षित पतितावस्था से प्राप्त किया । यद्यपि दोनों काव्यों में दार्शनिक वियोग व्यथा की अभिव्यक्ति हुई है, तथापि दार्शनिक गंभीरता की दृष्टि से "वीणपूव्" "मुरझाया फूल से अधिक प्रौढ कृति है । लेकिन

ध्यान देने योग्य बात यह है कि दोनों काव्यों में जो अस्तित्व सम्बन्धी व्यथा प्रकट हुई है, अथवा मानवीय अवस्था पर जो आकुलता व्यंजित की गयी है, उसकी वास्तविकता को संवेद्य बनाने के लिए आवश्यक तत्वों का समावेश दोनों कवियों ने किया ।

दोनों काव्यों में फूल का शैशव उनके क्रमिक विकास तथा उत्कर्ष का वर्णन प्राय समान रूप से पाया जाता है, किन्तु इसके मानवीकरण द्वारा अंग-प्रत्यंग अलौक सौंदर्य का सजीव चित्रण प्रस्तुत करने में आशान को ज्यादा सफलता मिली है।[1] महादेवीवर्मा फूल के मुग्ध सौंदर्य के वर्णन में आशान की तरह वाचाल नहीं बनतीं । पंखुड़ियों के संपुट से पल्लव का सुकुमार घूंघट उठाकर नि:शब्द, लज्जालु मुख से इस अद्भुत एवं विशाल दुनिया को देखने के लिए धीरे-धीरे बाहर आनेवाला पुष्प, कली के रूप में पवन के अंक में निश्चिंत बैठ झूमने का वह चित्र अत्यन्त नयन मोहक ही है ।

दोनों कवि समदर्शी हैं । समसृष्टों से भाईचारे का भाव जोड़कर आशान् फूल से कहते हैं कि "हे फूल एक ही हाथ ने हमारी सृष्टि की, हम सहोदर हैं।[2] महादेवी वर्मा भी फूल की

---

1. विरागी पुरोहित या शत्रु से डरकर भागनेवाला डरपोक कोई भी हो पुष्प की सुषमा पर मुग्ध होकर उसकी ओर एक पल निर्निमेष देखता रहेगा - वीणपूवु श्लोक 25
2. वीणपूवु आशान - आशान कृतिकल, भाग 1, पृ.208

शोचनीय, निस्सहाय, उपेक्षित स्थिति पर दुखी है। उस पर वे हमदर्दी दिखाती है। फूल की अब की स्थिति का कारण ढूंढने वाली कवियित्री सृष्टि में स्थित स्वार्थभावना की ओर इशारा करती है। तब भी उसमें वह दोष नहीं देखती, कारण "करतार ने सबों को स्वार्थमय बनाया है।[1]" फूल का मधु, मकरन्द, राग-पराग उसका प्रेम सब कुछ हरण करने के बाद दूसरे पुष्प की ओर धावन करनेवाला भ्रमर स्वार्थी एवं शोषक मानव का प्रतिनिधित्व करता है। फूल की अभिशप्त स्थिति देखकर कोई भी उसपर हमदर्दी नहीं दिखाता है। कवयित्री का करुणामय चित्त उस पर सान्त्वना की वृष्टि करता है। "हे फूल ! हम जैसे निस्सार जीवियों के लिए कौन रोएगा ? तू व्यथित न हो जा ...[2]।" विस्मृति की कोटि में धकेल दिया जानेवाला फूल उपेक्षित एवं विस्मृत निन्दित तथा पीड़ित मानव का प्रतिनिधि है।

दोनों काव्यों में आद्यन्त करुणा का वातावरण परिव्याप्त है। किन्तु आस्तिकता के ठोस आधार पर खड़े होने से ये कवि अपने अन्तर्मन में पीडा को अनुभूत करने पर भी उनके विवेकोदित दार्शनिक दृष्टिकोण से यह चिरंतन सत्य स्वीकार कर लेते हैं कि जैसे यह फूल मुरझकर मिट्टी में मिल जाता है, संसार उसे भूल जाता है, वैसे मानव की स्थिति भी है। इस संसार में मानव

---

1. मुरझाया फूल - महादेवी - नाहार, पृ.5।
2. वही, पृ.5।

जीवन चार दिनों का चांद है, एक अस्थिर सुन्दर सपना ।"[1]
यह विचार इस दुःख को सह्य बना देता है ।

उपर्युक्त दोनों काव्यों के सामान्य अवलोकन से व्यक्त होता है कि भगवान बुद्ध के दुःख दर्शन और विचार धारा ने इनको बहुत प्रभावित किया है ।

वीणपूवु लघु काव्य है, मुर्झाया फूल गीत है । फिर भी फूल के शैशव का, और उसके क्रमिक विकास का, तथा उसके पतन का अद्भुत समानता के साथ इन्होंने वर्णन किया है । अतः दोनों रचनाएं यह सिद्ध कर देती हैं कि समान प्रतिभावाले कलाकारों की रचनाओं में भाषा तथा देश-काल निरपेक्ष रूप में अद्भुत समानतायें पाई जाती है । "होमर का ओडिसी और वाल्मीकि का रामायण विभिन्न देश, काल, तथा भाषाओं में लिखित होने पर भी दोनों के कथानक में अतिशय समानता परिलक्षित होती है ।

कवियों और कलाकारों में पाई जानेवाली समान चित्तावस्था या मनोवृत्ति में ऐसी कलात्मक अभिव्यक्ति प्रतिभा से सम्बद्ध मानसिक स्तर की सार्वलौकिकता एवं सार्वकालिकता की ओर संकेत करती है ।

---

1. वीणपूवु - आशान - आशान्टे पद्य कृतिकल, भाग 1, पृ.209

5. मित्रस्मृति पर श्रद्धांजलि

जीवन के प्रकाशदाता गुरु और मित्र दोनों होते हैं। सच्चा मित्र अमूल्य संपत्ति है। जीवन में सच्चा, पवित्र मित्र जिसको प्राप्त है वह मनुष्य भाग्यशाली है। आत्मीय मित्र जो जीवन का पथप्रदर्शक है उनके चिरवियोग पर अपने मैत्री-सम्बन्ध को चिरस्मरणीय अश्रुसिक्त श्रद्धांजलि द्वारा अमर करने का सफल प्रयास हिन्दी और मलयालम के कवियों ने किया है। इस क्षेत्र में विशद एवं महान् प्रयास टेनिसन मिल्टन, शेल्ली जैसे अंग्रेज़ी कवियों ने भी किया है। इनके काव्यों में व्याप्त करुण रस के प्रबल प्रभाव ने भारतीय कवियों के पथप्रदर्शन का कार्य कर दिया है।

मित्र वियोग की अत्यन्त गंभीर वेदना से संपृक्त कृतियों द्वारा शोककाव्य को संपन्न करनेवाले कवियों में हिन्दी के बदरीनारायण चौधरी "प्रेमघन", बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और मलयालम के के.के. राजा, जी. शंकर कुरुप आते हैं इनके लिखे काव्यों में अपने मित्रों के प्रति इनके पवित्र स्नेह की तथा मैत्री सम्बन्ध की घनिष्ठता की जानकारी मिलती है। यह निश्चय पूर्वक बता सकते हैं। बता सकते हैंकि मित्र-स्नेह की गरिमा एवं घनिष्ठता अपत्य वात्सल्य, दांपत्यप्रेम आदि आत्मीय संबन्धों से कहीं कम नहीं है कभी एक दम ज्यादा लगता है।

श्री. बदरीनारायण चौधरी "शोकाश्रुबिन्दु" की रचना अपने घनिष्ठ मित्र एवं लोकप्रिय साहित्यकार भारतेन्दु

हरिश्चन्द्र की स्मृति को चिरस्थाई बनाने के लिए तथा उनकी साहित्यसेवा तथा चारित्रिक महत्ता के गायन स्वरूप की है, "चित्रलेखा" में श्री जी॰ शंकरकुरूप भी अपने अंतरंग मित्र और लोकप्रिय कवि चंगम्पुषा के आकस्मिक निधन द्वारा व्यक्तिगत रूप में तथा साहित्य क्षेत्र में हुई हानि पर शोक व्यंजना मिलती है ।

दिवंगत आत्माओं में अद्भुत समानता अनेक बातों को लेकर द्रष्टव्य है । वे मशहूर तथा लोकप्रिय साहित्यिक थे । दोनों का असामयिक निधन हुआ । दोनों युवक थे । काव्य क्षेत्र में परिवर्तन लाने में दोनों ने अथक परिश्रम किया । प्रगतिवादी कवियों में प्रमुख चंगम्पुषा ने अपनी सुललित एवं सुमनोहर काव्यकामिनी को इस तरह नचाया कि उस पर सहृदय विस्मय-मुग्ध रह गया । भारतेंदु तो हिन्दी साहित्य के भाग्यविधाता ही रहे । अल्पायु में इन दोनों कवि पुंगवों ने अपने हृस्वकाल के जीवन से ही अनेक जन्मों का कार्य संपन्न कर दिखाया था । लेकिन मृत्यु की सर्वनिशायिता के सामने सब अपने घुटने टेक लेते हैं । विजिगीषु मृत्यु ऊंचाई पर फहरे जीवन-केतु को पल भर में नीचे उतार देती है ।

बाष्पांजलि और प्रणामार्पण में भी मृत्यु की इस अजेयता पर कवि अपना शोक प्रकट करते हैं । पट्टोल्लिपुरत्तु मूस के॰के॰ राजा के पथप्रदर्शक तथा प्रसिद्ध भिषक् थे तो नवीन जी का मित्र गणेश शंकर विद्यार्थी प्रसिद्ध देश सेवक तथा कांग्रेस के महान नेता थे । सांप्रदायिकता की बलिवेदी पर जानबूझ कर आपने अपने प्राण अर्पण कर दिये ।

उक्त चारों काव्यों में कवियों ने मुख्यत: अपने मित्रों के श्रेष्ठ गुणों तथा उनके विलक्षण व्यक्तित्व की प्रशंसा की है। प्रतिभा के धनी इन पुण्यात्माओं की पावन स्मृति पर अश्रुपूर्ण नयनों से श्रद्धांजलि अर्पित् करके अपने वैयक्तिक उत्तरदायित्व के अलावा देशगत दायित्व की भी उन्होंने पूर्ति की है। गणेश शंकर जी का देश-प्रेम प्रेरित आत्माहुति तथा उनके शहीदपन देश की युवा पीढी के लिए मार्ग प्रदर्शक है। हँसते हुए मृत्यु का वरण कर सांप्रदायिकता के कलंक को मिटाने के उनके महान् त्याग का रोमांचकारी वर्णन कवि ने किया है। ऐसे महात्यागियों की जीवनी पढकर युवा जन मन में देश प्रेम एवं त्याग भावना का उन्नत आदर्श जगा देने के लिए शहीद गणेश जी एक मील-पत्थर हैं।

उक्त चारों काव्यों में तत्त्वचिंतन की ओर कवि आकृष्ट हो जाते हैं। तत्त्वचिंतन से वे दु:खमोचन के कांक्षी नहीं, किन्तु दिन की तीव्र व्यथा को कम करने की उपाधि के स्वरूप ये तत्त्व-चिंतन का सहारा लेते है। लेकिन मृत्यु का कटु सत्य मानने के लिए मन तैयार न होने पर भी अन्त में उसे स्वीकार करना पडता है। मृत्यु मृण्मय के लिए अनिवार्य है यह सोच कर मानव हृदय रोये बिना नहीं रहता, क्योंकि प्रतिदिन मरनेवाले सैकडों की गिनती में अपने स्नेहियों की मृत्यु नहीं गिनी जा सकती। अत: उक्त शोक काव्यों में मित्र वियोग के मार्मिक उद्गार प्रस्तुत किए गये हैं।

हमारे साहित्य में मित्र-विरह के नाम पर लिखी गई रचनाओं में इन शोककाव्यों का प्रमुख स्थान है ।

देश के महान नेता एवं गुरु जन के वियोग पर अभिव्यक्त व्यथा

इस विभाग में बहुत सी भावपूर्ण रचनाएं उपलब्ध है । मैथिली शरण गुप्त का "अंजलि और अर्घ्य" सुमित्रानंदन पंत का "कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति" दिनकर का बापू और मलयालम में कुमारनाशान का "प्ररोदनम्" और श्रीमती बालामणियम्मा का "लोकान्तरंगलिल" गुरुजन वियोग को लेकर लिखी गयी रचनाएं हैं ।

बापू देश के महान् नेता थे । वे देश-प्रेम सत्य और अहिंसा का पाठ, पढानेवाले गुरु भी है । मैथिली शरण गुप्त गांधीवादी एवं गांधी भक्त थे । कवीन्द्र रवीन्द्र तो विश्व साहित्यिक हैं, भारतीय जन-जीवन की चेतना टैगोर में पूर्णत: भरी पडी थी । पंत जी उनसे ज्यादा प्रभावित है; आपको गुरुतुल्य मानते थे । कुमारनाशान भी ए.आर. तंपुरान् को अपने गुरु मानते थे । नालप्पाटन भी बालमणियम्मा के मातुल थे, गुरुतुल्य थे । इन महान् पुरुषों के प्रति कवियों के मन में जो आदर भाव था, भक्तिभाव था, उनके महान गुणों के प्रति जो आकर्षण था, उनके निधन पर देश तथा साहित्य की जो हानि हुई है, इस सामाजिक एवं देशगत नष्ट पर उनके शोकग्रस्त उद्गारों की अभिव्यक्ति ही उपर्युक्त काव्यों द्वारा हुई है । अंजलि और अर्घ्य में कवि ने बापू के जीवन की प्रमुख घटनाओं का वर्णन करते हुए भारत की जनता के उद्धार केलिए उनकी सेवाओं का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है । गांधीवादी कवि-चित्त को उनकी पाशविक, निष्ठुर दृश्या के कारण गहरी चोट लगी ।

कवीन्द्र के निधन पर पंत जी अतीव दुखी होते हैं, धरा के भूतों के इस तम क्षेत्र में जीवन तृष्णा, प्राण क्षुधा तथा मनोदाह से क्षुब्ध, दग्ध, जर्जर जन गण जब कराह रहे हैं, इस दु:स्थिति से उनका उद्धार करने के लिए "जीवन वसन्त के अभिनव पिक बन कर और एक बार इस धरती पर अवतरित करने के लिए कवि को आमन्त्रित करते हैं, कारण कवि का तन, मन, आत्मा, बुद्धि और भावना सब सदा समग्र जग जीवन के सुख-दु:खों से भीग रही है, अत: कवि का पुनरागमन अनिवार्य मानते हैं। गुप्तजी भी गांधीजी के महान व्यक्तित्व अमूल्य सेवा के स्मृति में भावविभोर होकर अश्रु बहाते हैं, उनका स्वर्गगमन से रोकने के लिए कहते हैं। क्योंकि वे हमारे तेज: पुंज थे। वे नहीं रहें तो हम अंधकार में तड़पते फिरेंगे। आज की दुनिया में सभी अपने लिए जीते हैं, निस्वार्थ रह कर "बेवकूफ" बनना कोई नहीं चाहता। किंतु गांधीजी ऐसे विरले बेवकूफों में थे जिन्होंने हमेशा दूसरों के लिए जिया। अपना अंतिम रक्त बूंद को भी भारत केलिए उन्होंने अर्पित कर दिया। ऐसे महान् त्यागी के चिरवियोग का समाचार सुनते ही घंटों वे स्पन्दनहीन रहे। महीनों तक चुप रहे।

प्ररोदनम् में भी आशान् समान विचार प्रकट करते हैं। उस दिग्गज पंडित और मलयालम के नवयुग के अग्रदूत एं.पि.ए. राजराजवर्मा के आकस्मिक निधन पर मलयालम साहित्य की अपरिहार्य नुकसान पर वे दु:खी होते हैं। उनके व्यक्तित्व की प्रशंसा दूसरे कवियों के जैसे वे भी करते हैं। मृत्यु की अजेयता से अवगत हो कर

उन्होंने श्मशान को "अध्यात्मविद्यालय" कहा है । इन्होंने गांधीजी की चारित्रिक महत्ता एवं महत्वपूर्ण कार्यों की प्रशंसा गुप्त जी और पंत जी के समान आशान भी करते हैं । बालामणियम्मा भी मातुल नालप्पाटन की काव्यगत गरिमा तथा उनके व्यक्तित्व की महिमा का गायन करती है । मातुल की पुण्य स्मृति पर श्रद्धांजलि अर्पित करते समय आँसू को वे रोक लेती हैं, क्योंकि आँसू के भार से मातुल की आत्मा की परलोक यात्रा दुस्तर करना वे नहीं चाहती ।

स्पष्टवादिता उनकी कविता की विशेषता है । "अंजलि और अर्घ्य", "बापू" तथा "कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति" इन तीनों काव्यों की भाषा बहुत सरल एवं मर्मस्पर्शी है । साधारण पाठक भी इससे आनंद ले सकता है । किंतु अकेला "प्ररोदनम्" अपनी प्रौढ गंभीर शैली से अलग स्थान रखता है । "लोकान्त रंगिलल" की भाषा भी उतनी सरल नहीं जितनी सरल पूर्वोक्त काव्यों की है । इनमें अलंकार के लिए कोई विशेष तलाश इनके कवि नहीं करते हैं किन्तु प्ररोदनम् की भाषा आलंकारिक है । इस पर कवि का समाधान भी ऊपर सूचित किया गया है । टैगोर रसज्ञ थे, मानसिकता से भरा हृदय था उनका । जब महात्मा सरल थे, सत्यान्वेषी थे, दुनिया के पथप्रदप्रदर्शक थे । ऐसे महामानवों तथा कवि सुलभ मृदुल भावों का चित्रण कवियों के मनोनुकूल तथा स्मर्यपुरुषों के महत्व के अनुसार प्रस्तुत करने में ये कवि सफल हुए है । अंग्रेजी शोककाव्यों से प्रभावित होकर रचा हुआ "प्ररोदनम्" शोककाव्य की श्रेणी में अपने अनूठे व्यक्तित्व को लेकर अलग खडा हो जाता है ।

महात्मा गान्धी लोकमानव है, टैगोर विश्व कवि हैं। उनकी तुलना में ए.आर. तथा वालप्पाटन जैसे देशीय कवियों का महत्व अपेक्षाकृत कम है। फिर भी मलयालम साहित्य में ये विख्यात एवं अमर साहित्यिक हैं।

श्रद्धानिवेदन मूलक इन शोककाव्यों की और एक विशेषता है कि ये सारे समर्थ पुरुष विख्यात हैं। दिनकर और गुप्तजी ने एक ही कथानक को लेकर काव्य रचना की है, गाँधीजी की गगनचुम्बी महानता के सामने दिन कर अपने को अत्यन्त छोटा मानते हैं। दोनों कवि बापू की हत्या को देश पर गिरा महान् वज्रपात-सा देखते हैं। इससे भारत में ही नहीं, जगत् भर उथल-पुथल होगा, सर्वनाश होगा। प्ररोदनम् अपने ढंग का अकेला काव्य है। इसमें प्रकृति और मलयालम साहित्य का मानवीकरण करके अपने प्रगाढ वेदना की अभिव्यक्ति आशान् ने की है। इसकी भाषा और शैली तथा गहन चिंतन अत्यन्त गंभीर है। इसकी "आलंकारिक संस्कृत निष्ठ भाषा के बारे में कवि का यह स्पष्टीकरण है - "एक असाधारण अनुभूति के लिए असाधारण उपाधि को मैं ने अपनाया।"[1] पहले इस काव्य का नाम उन्होंने "बाष्पांजलि" रखा टैगोर की गीतांजलि की याद दिलाने से बाद "प्ररोदनम्" रखा गया[2]।" इसपर एक अन्य विद्वान अपनी राय इस प्रकार प्रकट करते हैं कि "प्ररोदनम्" में भाषा की

---

1. प्ररोदनम् - आमुख
2. वही

प्रौढ़ता और शैली की गंभीरता साधारण पाठकों के लिए ही नहीं, कभी-कभी विशेषज्ञों के लिए भी भाव ग्रहण में बाधा उपस्थित करेगी । पर गंभीर भावों को तदनुरूप शब्दावली में ही पूर्ण न्याय के साथ व्यंजित किया जा सकता है, यह सत्य है[1] ।

निष्कर्ष

देश के तथा जगत् के इन महान् विभूतियों के चिर-वियोग पर मर्मस्पर्शी शब्दों में उनकी पुण्यस्मृति पर अश्रुपूर्ण नयनों से श्रद्धा से मुकुलीकृत हाथों से, नम्रशिरस्क होकर इन कवियों ने अंजलि अर्पण कर दी है ।

इन शोककाव्यों की भाषा एवं शैली का अवलोकन करने में ऐसा लगता है इनकी भाषा बहुत सरल है । केवल "प्ररोदनम्" ही इसका एकमात्र अपवाद है । जिस प्रकार स्फटिक जैसे स्वच्छ जलाशय में गहराई होने पर भी उसका तल साफ दिखाई पड़ता है वैसे इन शोककाव्य कर्ताओं के दिल की अतल गहराई से निकली दुःख संतप्त वाणी से पाठक भी तहे दिल से इनके भावों को अपनाता है ।

शोकाभिव्यक्ति के लिए प्रकृति को भी इन्होंने आधार बनाया है । अपने मनोभावों के अनुकूल प्रकृति का चित्रण करके उसमें अपने हृदयभावों का आरोप भी प्रायः सभी शोककाव्यों में किया गया है ।

****

---

1. मलयालम काव्य एक सर्वेक्षण, पृ.57-58

उपसंहार

उपसंहार

सुख के मूल में दुःख वर्तमान है जहाँ मिलन है, वहाँ वियोग है; जहाँ स्नेह है वहाँ व्यथा भी है। दुःख का क्षेत्र तो बहुत व्यापक है। स्नेहपात्र के चिरवियोग में अन्तरात्मा की आकुलता एवं तड़प के उद्‌गार भावुक कवि शब्दबद्ध कर देते हैं। तब शोककाव्य की सर्जना होती है।

शोक जीवन की अन्तर्धारा है। महापंडितों को भी मूढ मूक बनाने की शक्ति इसमें निहित है। उच्च रोदन की अपेक्षा दबी सिसकियों को सहज ढंग से वाणी देनेवाले अनुगृहीत कवि पीडा जनक सत्य को अपनी आत्मा की इंद्रियों में आवाहन करता है। जीवन के उदात्त भावों पर गंभीर चिंतन-मनन करनेवाले सभी प्रतिभावान् कवि एवं महात्मा दुःखी थे। विश्वसाहित्य की प्रसिद्ध कृतियाँ दुखान्त है। महाभारत, रामायण, होमर की ओडीसी, अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध "अडोणे", "इनमेम्मोरियम्", "लिसिडास"

जैसे शोककाव्य उदाहरण स्वरूप ले सकते हैं । भगवान बुद्ध, शंकराचार्य, ईसामसीह, मुहम्मद नबी, महात्मा कबीर, श्री नारायण गुरु, महात्मा गांधी जैसे लोकनायक दुख का अनुभव करते थे साधारण मानव अपनी बातों पर दुखी होता है तो ये महापुरुष दूसरों के लिए, विश्व के लिए व्याकुल होते थे । उनके दुःख का कारण तो आदर्श का मिट्टी में मिल जाना, विश्व मंगल का गंभीर यज्ञ असफल होना इत्यादि है ।

चिन्तनशील मानव दुखी रहता है । ज्ञानी का हृदय दुःख का घर है । महात्मा कबीर ने कहा था "हम सुख के लिए जा रहे थे कि सामने दुःख के दर्शन हुए । तब हम ने सुख से कहा कि अब तुम तो अपने घर जाओ । अब तो हम है, और हमारा दुःख है ।"[1]

दुःख का प्रभाव सार्वलौकिक है । दुःख मनुष्य को आत्मोपलब्धि अथवा आत्मसंप्राप्ति की ओर ले जाता है । दुःख की अनुभूति उसे सदा सचेत बनाए रखती है ।

इस प्रकार दुःख की सर्वातिशायिता तथा व्यापकता का निरीक्षण करें तो यह विस्मयजनक सत्य सामने प्रकट हो जाता है कि दुखी परस्पर मिल जाते हैं, वह दुःख को बाँट कर भोगना चाहता है । क्योंकि दुःखाभिव्यक्ति से उसका हृदय-भार

---

1. कबीर सुख कौं जाइ था, आगैं आया दुक्ख ।
   जाहि सुक्ख घर आपणैं, हम जावो अरु दुक्ख । (कबीर)

हल्का पड़ जाता है और जीवन यात्रा में आशा का पाथेय लेकर आगे बढ़ने में समर्थ हो जाता है ।

दु:ख मनुष्य को सात्त्विक बना देता है । दु:ख ही सत्य है, सुख नहीं । हमारी राय में क्षणिक सुख में मनुष्य दूसरे की ओर देखता तक नहीं । सुख तृप्ति नहीं देता अधिकाधिक लालच ही देता है । दु:ख ही तृप्तिकारक है । दु:ख-सा सहिष्णुता सिखानेवाले गुरु और कोई नहीं । दया, क्षमा, उदारता, सहानुभूति आदि सभी सात्त्विक गुण इसी दु:ख से जीवित है ।

दु:ख की जादूगरी इस प्रकार है कि जैसे एक दीपक दूसरे दीपक को जलाता है वैसे एक तप्त हृदय वेदना में तपकर सात्त्विक बनता है । ऐसे सात्त्विक कवि की कृति पढ़नेवाला भी उसे आत्मसात् कर सात्त्विक बनता है । लेकिन इसके पीछे कवि की तीव्र वेदना-सहन, कठिन तपस्या, निस्तन्द्र प्रयत्न छिपे रहते हैं । वेदना के अग्निकुंड की नित्य उमड़नेवाली ज्वालाओं में कवि बाह्य रस, रूप, राग की आहुति देता है। वह अपना हृदय सुखाकर अपने हज़ारों वर्षों के अभिधान, प्राणों के प्राण नव जीवन के मूर्त रूप निकालता है । किन्तु हृदय की वृत्तियों का विस्तार सुधार एवं संस्कार करके मानव के दैवी गुणों को परिमार्जित करनेवाला दु:ख जीवन में वांछनीय नहीं है । लेकिन काव्य में यह आनन्दमिश्रित अनुभूति होती है । इसलिए दु:ख मोचन के उपाधि-स्वरूप मानव शोककाव्यों की शरण लेता है ।

ज़िन्दगी के घोर यथार्थ से उद्भूत दुःख रूपी गिरिश्रृंग से निसृत पतली अश्रुधारा रूपी तीर्थ में आकंठ निमज्जित होकर आत्मा की तृष्णा का तर्पण करने का श्रेय शोककाव्य को ही मिला है ।

शोककाव्य की रचना के लिए अनुभूति अनिवार्य साधन है । शोक के अतिरिक्त अन्य भाव कल्पना के बल पर अभिव्यक्त होते हैं । लेकिन अनुभूति के बिना शोक एवं वेदना की अभिव्यक्ति असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है ।

वेद-पुराणों का अध्ययन करके अपने भाग्य पर विश्वास अर्पण कर बैठी भारतीय जनता को पाश्चात्य शिक्षा सम्प्रदाय ने एक विशाल प्रपंच के दर्शन कराये । यदि अंग्रेज़ी प्रभाव के पूर्व की तथा उसके बाद की लिखी गयी रचनाओं को साथ-साथ रख कर देखा जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि अंग्रेज़ी प्रभाव ने भारतीय साहित्य को नयी प्रवृत्तियों, भावों और स्वरों से मुखरित किया है ।

अंग्रेज़ी कवियों ने शैली की दृष्टि से अपनी भावनाओं को ओड "सोनट" "ब्लैंक वर्स" "एलिजी" आदि रूपों में अभिव्यक्त किया । अंग्रेज़ी साहित्य के अध्ययन द्वारा हिन्दी और मलयालम के कवियों ने इन नवीन साहित्यिक रूपों का थोडा बहुत उपयोग किया । "एलिजी" अथवा शोकगीत की रचना

दोनों भाषाओं में इस प्रकार हुई शोकगीत वैयक्तिक अनुभूति की अभिव्यक्ति होने के नाते गीतिकाव्य की कोटि में आता है। किंतु गीतिकाव्य एलिजी नहीं हो सकता, उल्टे सभी शोकगीत गीतिकाव्य की कोटि में आते हैं।

विश्वकोष के अनुसार शोकगीति की उत्पत्ति पहले पहल यूनान में हुई। आत्मनिष्ठ रूप में लिखने के कारण उसमें वैकारिकता ज्यादा पाई जाती है। आत्मीयता, विकारों की अकृत्रिम अभिव्यक्ति उदात्त भावना, प्रकृति का कवि के मनोनुकूल चित्रण बीच-बीच में जीवन की क्षणिकता, मृत्यु और उसकी अजेयता तथा मरणोपरान्त जीवन आदि को लेकर गंभीर चिंतन करके अपने व्यक्तिगत दुःख का साधारणीकरण करना शोकगीतों का सामान्य स्वभाव है।

व्यक्तिगत विछोह व दुःख की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति ही शोकगीत है।

यद्यपि हिन्दी और मलयालम में शोककाव्य का विकास पाश्चात्य स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा के प्रभाव के साथ-साथ हुआ है तथापि उसके पहले इस काव्य रूप का प्रयोग किसी ने नहीं किया, ऐसा नहीं मानना चाहिए। प्राचीन काल में हमारे अनेक प्रतिभासंपन्न कवियों ने शोकात्मक अभिव्यक्ति को अपने काव्यों में स्थान दिया था। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भास प्रभृति के काव्यों में शोक के अनेक प्रसंग पाये जाते हैं।

शोकगीत के कई रूप उपलब्ध है । विषय की दृष्टि से इसके विभिन्न रूप दिखाई पड़ते हैं । इसका मुख्य प्रेरणा-स्रोत आत्मीय जनों की मृत्यु या चिर वियोग ही है । आत्मीयों से कवि के नाते के अनुसार इसका विभाजन कर सकते हैं; संतानों, प्रेयसियों, मित्रों, गुरुजनों तथा लोकनायकों के आकस्मिक निधन को लेकर हिन्दी और मलयालम में अनेक शोककाव्यों का सृजन हुआ है । इन्हें व्यक्तिगत नष्ट तथा समाजगत हानि की कोटि में विभाजन कर सकते हैं । कभी कभी किसी वस्तु को प्रतीक मान कर मानवजीवन की क्षणिकता तथा परिवर्तनशील जगत् की विलक्षणता को दिखाते हुए काव्य रचे जाते हैं । भावुक कवि दूसरों की वेदना को आत्मसात् करके शोककाव्य की रचना करते हैं । हिन्दी और मलयालम में उपर्युक्त सब प्रकार की रचनाएं देखने को मिलती हैं जिनपर अँग्रेज़ी काव्य का प्रभाव परिलक्षित होता है ।

करुणात्मकता, गंभीर तत्वचिंतन भावों की अकृत्रिम अभिव्यक्ति, लालित्य, संक्षिप्तता, मनोनुकूल छंदों का प्रयोग - इत्यादि संक्षेप में सभी शोककाव्यों सामान्य प्रवृत्तियां हैं ।

अँग्रेज़ी के प्रसिद्ध शोककाव्य जोण मिल्टन के "लिसिडास" (Lycidas) शेल्ली का अडोर्णि (Adonais) टेनिसन का "इन मेम्मोरियम्" (In Memorium) थोमस ग्रे का "ग्रामीण विलाप" हैं । प्रथम तीनों में मित्र के वियोग ही रचनाहेतु है तो "ग्रामीण विलाप" में प्रकृति प्रेम तथा मानविकता की झलक मिलती है । ग्रीक विलाप काव्य की "पास्टरल" (Pastoral

शैली में हुए मिल्टन, शेली और टेनिसन की रचनाओं का चयन हुआ है । इन सभी का प्रभाव मलयालम और हिन्दी शोककाव्यों पर परिलक्षित होता है ।

हिन्दी साहित्य में संतानों की मृत्यु को लेकर लिखित रचनाओं में "सरोजस्मृति" (निराला) अत्यन्त मार्मिक तथा लोकप्रिय है । सुभद्राकुमारी चौहान का "पुत्र-वियोग" भी पाठक चित्त को प्रभावित करनेवाली रचना है । मैथिली शरण गुप्त की "सान्त्वना" शीर्षक रचना भी पिता की आहत वात्सल्य की करुण पुकार है । सरोजस्मृति में यद्यपि जहाँ तहाँ सामाजिक असमानताएं एवं धार्मिक रूढ़ियों की आलोचना की गयी है तथापि यह करुणा को बढ़ाने में ही सहायक हुई है । संतान वियोग सम्बन्धी इन सारे शोककाव्यों में भावों और विचारों का तुमुल संघर्ष पाया जाता है ।

सियाराम शरण गुप्त की "एक फूल की चाह में" सांप्रदायिक भिन्नता तथा छुआ छूत की ओर संकेत है । कवि ने हरिजन पिता के दुःख को आत्मसात् कर लिया है ।

विधि की विडम्बना से पत्नी वियोग जनित दुःख के शिकार तरुण विधुरों के परोक्ष दुःख की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति "आँसू", और "विषाद" में हुई है । पत्नी के बेसमय निधन की कसक की शाब्दिक अभिव्यक्ति ही माखनलाल चतुर्वेदी की और निराला की "स्मृति" में हुई है । पंत जी के "ग्रंथि", "आँसू"

और "उच्छ्वास" में एक सुन्दर युवति के प्रथम दर्शन में संजात प्रेम-भावना तथा उसके साथ बिताये क्षणों की मीठी स्मृति की अभिव्यक्ति के साथ उसके चिर बिछोह से एक तरुण चित्त की कराह गूँज उठती है ।

महादेवी वर्मा का "मुर्झाया फूल" प्रकृति के साथ आपकी वैयक्तिक संवेदनाओं का प्रतीक है । सब चराचरों से कवयित्री के सात्त्विक प्रेम से यह गीत अनुप्राणित है ।

मित्रता की दृढता तथा घनिष्ठता दिखाने वाले शोक काव्यों में हैं "शोकाश्रुबिन्दु और "प्राणार्पण" । "प्रेमघन" ने भारतेंदु हरिश्चन्द्र के वैयक्तिक गुणों तथा साहित्यिक सेवाओं का वर्णन करके उनके अकाल वियोग पर हुई व्यक्तिगत एवं समाजगत नुकसान को दर्शाया है । "प्राणार्पण" में सांप्रदायिकता का भीषण एवं दर्दनाक चित्रण प्रस्तुत करके अपने मित्र एवं देश सेवक गणेशशंकर विद्यार्थी के आत्मबलिदान का रोमांचकारी वर्णन किया गया है । "स्वधर्मेनिधनं श्रेय:" इस गीतावचन को गणेश जी ने चरितार्थ किया है ।

"अंजलि और अर्घ्य", "बापू", "कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति" और "आत्मोत्सर्ग" आदि कृतियों में महात्माओं और गुरुजनों के अप्रत्याशित निधन पर इनके रचयिताओं की अश्रुपूर्ण श्रद्धांजलि। बापू जैसे महामानव किसी देश गत या कालगत सीमा में नहीं रहते । विश्वकवि टैगोर ने भी अपनी कृतियों द्वारा सारे विश्व को एक प्रेम सूत्र में बाँध दिया है । मानव-मानव के बीच धर्मगत एवं

जातिगत भिन्नताओं को मिटाकर एकता लाने के लिए हंसते हुए शहिद बननेवाले भारत के वीर पुत्र का चित्रण "आत्मोत्सर्ग" प्रस्तुत करता है । इनके अलावा गुप्त जी प्रसाद निराला, प्रेमचन्द, दिनकर आदि साहित्यिकों की तथा सुभाषचन्द्र बोस, सरोजिनी नायिडू, राजेन्द्र प्रसाद तथा महादेव देसाई जैसे देश की महान् विभूतियों की स्मृति पर भी श्रद्धांजलिपरक शोकगीतों का सृजन हुआ है ।

मलयालम में भी संतानों के निधन पर अनेक शोककाव्य लिखे गये हैं । पोट्टी का "ओरुविलापम्" टी·आर·नायर का "चुटुकण्णीर" {तप्तबाष्प} जैसे तनय विरह सम्बन्धी रचनाएं हुई है जिनमें अपनी संतानों की मृत्यु की चुभती स्मरणाओं की अभिव्यक्ति हुई है । बच्चे ईश्वर की देन हैं । देने के बाद शीघ्र ही उन्हें वापस लेने की दुर्वह पीडा इन कृतियों में उभर आती है ।

प्रेयसियों के चिर वियोग को प्रमेय बनाकर रचित वी·सी· का "ओरुविलापम्" और नालप्पाटन की "कण्णुनीर्त्तुल्लि" {अश्रुकण} में कवियों की ज़िन्दगी के अन्धकारपूर्ण दिनों का वर्णन है । अपनी मनस्विनी चिरसंगिनियों का नित्यवियोग कितना हृदय विदारक है, इसकी पहचान इन कृतियों से प्राप्त होती है ।

मलयालम में प्रियावियोग को लेकर काफी रचनाएं हुई है । "तिलोदक", "एन्टे पोय्पोयप्राणन" {मेरे विगत प्राण}

"आत्म रोदनम्" आदि प्रिया विरह संबंधी काव्यों में उल्लेखनीय है। पत्नी निधन रूपी महावज्रपात टूट पड़ने से ये सारे विधुर एकदम हतचेत हो जाते हैं। किन्तु इनकी चिन्तनधारा और आस्तिकता ने निराशा के गर्त से ऊपर उठने की शक्ति इन्हें प्रदान की है। इन कवियों ने अपने मन की पीड़ा और संघर्ष को बेहिचक वाणी दी है।

सुहृद्विलाप एवं भ्रातृविलाप संबन्धी रचनाओं के साथ ही मातापिताओं की स्मृति को चिरस्थाई बनानेवाली रचनाएं भी मलयालम में हुई है। मित्रविलाप के अन्दर्गत "रमणन" "चिन्तालेखम्" "प्रियवियोग" और "बाष्पांजलि" प्रमुख रचनाएं हैं। उनमें सच्चे मित्र की प्राप्ति में बड़भागे इनके कर्ता मैत्री सम्बन्ध की महत्ता एवं विशुद्धि का परिचय देते हैं। ईसा मसीह की निष्ठुर हत्या से उनकी माता मेरी के चित्त की व्याकुलता का यथातथ्य वर्णन अर्णोस पादरि के "पुत्तनपाना" और मर्कोस करिवकोट के "मेरीविलापम्" में हुआ है।

मानव जीवन की क्षणिकता तथा संसार की प्रत्येक वस्तु से अपना सम्बन्ध, स्रष्टा की महिमा एवं मृत्यु की वरेण्यता को आशान ने "वीणपूवु" में प्रतीकात्मक ढंग से अभिव्यक्त किया है। इसमें कवि यह बताना चाहते हैं कि मानव को अपने ह्रस्वकालीन जीवन फूल के क्षणिक जीवन के समान मोहक, प्रभावी और सेवा निरत बनाना चाहिए।

गुरुजनों और लोक नायकों और महान् साहित्यकों के निधन पर विलाप करके गुणस्तवन के ज़रिए उनकी स्मृति को बनाए रखने का प्रयास भी मलयालम में पर्याप्त मात्रा में हुआ है ।

अपने मामा एवं मलयालम के प्रौढ कवि श्री·नालप्पाटन के निधन पर बालामणियम्मा की लिखी हुई दुःखपूर्ण श्रद्धांजलि है लोकान्तरङ्ङलिल {लोकान्तरों में} अपने गुरुतुल्य आदरणीय साहित्यकार श्री·ए·आर·राजराजवर्मा की पुण्यस्मृति पर लिखा गया "प्ररोदनम्" अपने ढंग की अनोखी रचना है । इस शोककाव्य में सर्वसंहारिणी मृत्यु की अजेयता का गंभीर चिंतन किया गया है । एक मात्र "प्ररोदनम" में ही प्रकृति के मानवीकरण द्वारा शोकाभिव्यक्ति में तीव्रता लाने का प्रयास हुआ है ।

"भारतेंदु" शीर्षक शोकगीत में हमारे प्रिय एवं आदरणीय बापू पर की गई निष्ठुरता का प्रभावशाली वर्णन मिलता है ।

मलयालम में कवियों ने अपनी अन्धता और बधिरता पर भी काव्य लिखे हैं । "अन्धविलापम्" और "बधिरविलापम्" ऐसी आत्मरोदन की रचनाएं है ।

देश के दूसरे महान् कवियों और देश सेवकों की स्मृति पर भी अनेक प्रशस्ति काव्य लिखे गये हैं, जिनमें उनके गुणस्तवन के साथ उनकी मृत्यु से हुई व्यक्तिगत और देशगत हानि पर शोक प्रकट किया गया है ।

स्वयं अनुभूत पीड़ा पाठक तक पहुँचा देना शोककाव्यकार का मुख्य लक्ष्य है। अपने ऊपर आए अप्रत्याशित आघात का अनुभव तदनुरूप पृष्ठभूमि सजाकर कवि अभिव्यक्त करता है। कवि का दुःख आत्मसात् कर उसके साथ चिंतन करके आश्वस्थ होते समय शोककाव्य की सफलता मिलती है। इस समाश्वासन का हेतु, पुनर्जन्म पर कवि का विश्वास है। मृत्युपरान्त जीवन की खोज जब इस विश्वास पर आ ठहरती है, तब कवि को सान्त्वना मिलती है। जहाँ बुद्धि एवं तर्क की पहुँच नहीं होती वहाँ मृत्यु के बाद के जीवन की अस्पष्टता तत्वज्ञान और ईश्वर-विश्वास दूर कर देते हैं। ऐहिक जीवन के बाद दिवंगत आत्मा को जो महोन्नत पद एवं चिर-शांति प्राप्त होती है, यह दृढ संकल्प शोक के घने अन्धकार को दूर कर प्रकाश की धारा का प्रवाह कर देता है। इस पहलू पर आते ही इस निष्कर्ष पर हम पहुँचते हैं कि प्रायः सभी शोकगीत विषादात्मक नहीं, उल्टे प्रसादात्मक होते हैं।

आध्यात्मिक दृष्टि के अनुसार परलोक के कवाट खोलने वाली मृत्यु ही है। ऐसी दयामयी और सर्वक्लेशहारिणी और मोक्षदायिनी मृत्यु को चिरन्तन सत्य के रूप में मानने पर भी देह से देही की विच्छित्ति पर मानवात्मा अतीव दुखी होती है कि वह परेतात्मा के साथ मर जाने की इच्छा तक प्रकट करती है। लेकिन इनकी यह मरण लालसा एवं निराशा कभी इन्हें आत्महत्या तक पहुँचा देती है, लेकिन दूसरे ही क्षण जीवन-रूपी समर में आगे बढने की शक्ति इनकी अटल आस्तिकता ही प्रदान कर देती है। अचानक दुःख एवं रोदन को संयमित करने की क्षमता ये प्राप्त

करते हैं अत: इन कवियों की वेदना एवं निराशा को पराजय एवं पलायन की मनोवृत्ति नहीं कह पाते, उसे पिछले जीवन का सिंहावलोकन या अस्थायी पलायन कहा जा सकता है ।

शोकगीतों का स्रोत अनुकंपा की विशुद्धि है । अत: अपने निर्व्याज स्नेह से उद्भूत शोक की अभिव्यक्ति मार्मिक बन पडी है । प्रत्येक काव्य की महत्ता, तत्तत् कवियों की भावशुद्धि एवं आन्तरिक गंभीरता पर आश्रित होती है । अपने आभ्यंतरिक भावों को रूपायित करने के लिए जब भाषा अपर्याप्त-सी लगती है तो ये कवि बिंबों का सहारा लेते हैं । शोकगीतों की अधिकांश कल्पनाएं नश्वरता के सूचक हैं ।

हिन्दी और मलयालम के शोककाव्यों का विषय प्राय: समान होने पर भी अभिव्यक्ति का ढंग भिन्न होने से ये काव्य अलग अलग प्रतीत होते हैं । नाते की घनिष्ठता का अनुपात भी अलगाव पैदा कर देता है । भाषा शैली छंद आदि के प्रयोग भी इन्हें अलग अस्तित्व एवं व्यक्तित्व प्रदान कर देता है ।

कवियों ने छंदविधान के क्षेत्र में भी स्वतंत्रता दिखाई है । प्राचीन छन्दों के साथ-साथ नवीन छन्दों का भी प्रयोग कर दिखाया गया है । मुक्तक छन्द और अतुकान्त कविताएं भी लिखी गयी हैं ।

शोककाव्य के अधिकांश कवि स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा के होते हैं। इसलिए गीतिकाव्य की विशेषताएं विशेष कर गेयता इसकी शैलीगत विशेषता है।

नये शब्दों के चयन तथा पूर्व प्रयुक्त शब्दों के नवीन प्रयोग भी इन कवियों ने किया है। शब्दों का लययुक्त चयन मौलिक विशेषता है। पंत, प्रसाद, निराला, आशान, जी नालप्पाटन आदि कवियों के काव्यों में यह सविशेषता विशेष द्रष्टव्य है। फिर भी जैसा प्रत्येक पक्षी अपने अलग ढंग के नीडों का निर्माण करता है वैसा हर कवि अपनी भाषा-शैली में काव्य रचना करता है।

शोकगीतों का छन्द प्राय: वियोगिनी रहा है। शोकाभिव्यक्ति के लिए सक्षम होने से इसका "विलापछन्द" नाम पडा है। इसके बिना स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित, इंद्रवज्रा, वंशस्थ, सर्पिणी और वसन्ततिलक का भी प्रयोग हुआ है।

शोककाव्य के कर्ता किसी न किसी चिंतनधारा से प्रभावित है। दु:ख का भार चिंतन से हल्का करने का प्रयास हुआ है। अधिकांश काव्य दार्शनिकता से प्रभावित है। चिंतन की गहराई होने पर भी अभिव्यंजना की दृष्टि से अस्पष्टता या क्लिष्टता नहीं। दु:ख की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति को प्रतीक के रूप में ग्रहण करते हैं। इन कवियों ने वियोग जनित वेदना के विभिन्न

स्तरों को विभिन्न रंगों में रूपायित किया है । उनके ये शब्द चित्र इतने प्रभावशाली है कि जटिल जगत के कर्म-चक्र में भी पाठक का मन इन्हें नहीं भूलता है । संपूर्ण गीतिकाव्य में वेदना की ये छवियाँ अपने कलात्मक सौंदर्य तथा अनगढ रूप के कारण विशेष प्रकार महत्वपूर्ण होती है ।

हिन्दी और मलयालम में शोकगीत प्रभूत मात्रा में पायें जातें हैं । श्रद्धांजलिपरक काव्य मलयालम की अपेक्षा हिन्दी में ज्यादा पाये जाते हैं । शहिदों और देश के नेताओं की संख्या मलयालम में अपेक्षाकृत कम होना ही इसका कारण होगा ।

आजकल पहले की तरह शोककाव्यों की रचना ज्यादा नहीं पायी जाती है । शोकगीतकाव्यधारा उसके अतीत स्वर्णिम काल की तरह खूब पनपती न बढ़ने पर भी, इसमें संदेह नहीं कि हिन्दी और मलयालम की शोकगीति धारा अपनी ऋजुता एवं सजगता से एक गरिमामय दिशा की ओर प्रयाण कर रही है ।

****

परिशिष्ट

परिशिष्ट

1. कुमारनाशान् (1873-1924)

ये श्री. नारायण गुरुस्वामी के शिष्य थे;और कवि पंडित, दार्शनिक, समाजसेवक भी थे। मलयालम कविता के रूप-भावों में परिवर्तन लाकर उसे नया चैतन्य प्रदान करने वालों में अग्रणी थे। मलयालम साहित्य के कवित्रयों में आशान का नाम गौरव के साथ लिया गया है। इन्होंने मलयालम साहित्य के अनुकरण प्रवणता को दूर करके उसके स्थान पर आत्मदर्शन की प्रतिष्ठा करने का प्रयास किया। आशान ने काव्य निर्माण समष्टि के हित साधन के रूप में स्वीकार कर लिया। एषुत्तच्चन् के बाद मलयालम कविता भावों की उदात्त भूमि का स्पर्श आशान् की रचनाओं द्वारा ही कर पायी।

प्रमुख रचनाएं -

वीणपूवु, प्ररोदनम्, नलिनी, लीला, करुणा, चिंताविष्टा सीता, दुरवस्था।
सौंदर्यलहरी, प्रबोधचन्द्रोदय (अनुवाद)
बुद्धचरित (अपूर्ण)

1924 में पल्लना की रडीमर बोट दुर्घटना में ये दिवंगत हुए।

2. सी.एम. सुब्रह्मण्यन् पोट्टी (1875 - 1954)

ये कवि और आलोचक थे। इनके काल में मलयालम में शोकगीतिधारा प्रबल नहीं हुई थी। अतः पोट्टी का "ओरुविलापम्" इस दिशा के प्रथम प्रयास के रूप में जाना जाता है। इनकी रचनाओं की सबसे बडी विशेषता उसकी सरलता तथा अकृत्रिमता है। एक नवीन काव्यधारा के प्रयोक्ता के रूप में मलयालम कविता के इतिहास में इनका नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन्होंने कुमारनाशान का "वीणपूवु" भाषापोषिणी पत्रिका में प्रकाशित करके उसको प्रचुर प्रचार प्राप्त करा दिया। पोट्टी ने पद्य और गद्य दोनों में साहित्य-रचना की। अलावा इसके इन्होंने अंग्रेज़ी की कुछ रचनाओं का अनुवाद किया।

प्रमुख रचनाएं

ओरुविलापम्, कीचक वध, एक वध, काव्योपहार।
कवनमालिका (काव्य संग्रह)
सोराब और रुस्तम, दुर्गेशनन्दिनी, पुष्करिणी (अनुवाद)
भाग्यम् - अतिन्टे उद्‌वषिकल (भाग्य उसकी पगडियाँ)

1954 में इनका देहांत हुआ।

3 नालप्पाट्ट् नारायण मेनोन (1887 - 1954)

ये कवित्रय के बाद के महिमामंडित कवियों में हैं। वल्लत्तोल के सतसहाचारी और उच्चकोटि के सहृदय कवि है। कवींद्र रवींद्र की कविताओं का दार्शनिक वातावरण नालप्पाटन की रचनाओं में झलक उठता है। इनकी "कण्णुनीर्त्तुल्लि" (अश्रुकण) शीर्षक रचना पत्नी निधन पर लिखा गया सर्वोत्तम शोककाव्य माना जाता है। इसके अलावा इनकी दो प्रमुख रचनाएं हैं "पुल्कांकुरम" और चक्रवालम" उक्त तीन कृतियों से ये मलयालम कविता के इतिहास में उन्नत पद के अधिकारी बने

मुख्य कृतियाँ

चक्रवाल पुल्कांकुर, चक्रवाल, दैवगति, कविता संकलन
कण्णुनीर्त्तुल्लि (शोककाव्य)
रतिसाम्राज्य (यौन-विज्ञान)
पावंगल (विक्तोरह्यूगो के "ले मिसराब्ल" का अनुवाद)

1954 में इनका निधन हुआ।

4. वी.सी. बालकृष्णपणिक्कर (1889 - 1915)

केवल 25 वर्ष के ह्रस्वजीवन में अपनी काव्य प्रतिभा से "साहित्य नभोमंडल की उल्का" विशेषण से ये अभिहित हुए। इन्होंने अपनी प्रखर प्रतिभा से मलयालम काव्यधारा को नूतन दृष्टिकोण प्रदान किया। तेरह वर्ष से लेकर मृत्यु पर्यंत अपनी प्रखर प्रतिभा के बल पर काव्य क्षेत्र में विस्मयजनक सफलता इन्होंने पायी। "केरलचिंतामणि", "मलबारी", "चक्रवर्ती" आदि तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में इनकी अतुल्य सेवा हुई इनके काव्य अर्थसमृद्धि, रस निर्भरता के साथ गंभीर तत्वचिंतन आदि गुणों से पूर्ण है।

मुख्य रचनाएं

मीनाक्षी, एक मलयालम तरुणी, काव्यामृत (काव्य संकलन) नागानन्दम, सूक्तिमुक्तामणिमाला (अनुवाद) ओरुविलापम्, विश्वरूप, देवीस्तव, नीतिसार, दुर्गाष्टम, भक्तिगीत, श्री वासुदेवाष्टक, भूपामंगलम, आदि का संकलन वी.सी.कृतिकल (वी.सी.कृतियाँ) शीर्षक पर साहित्य अकादमी की ओर से प्रकाशित की गयी है।

1915 में राजयक्ष्मा से पीड़ित होकर दिवंगत हुए।

5. के.के. राजा 1893 - 1968)

ये स्वच्छन्दतावादी कवि तथा "वल्लत्तोल स्कूल के प्रमुख अनुगामी है। इन्होंने संस्कृत छन्दों में अत्यन्त मनोहर मणिप्रवाल शैली में काव्य रचना करने में असाधारण दक्षता हासिल की। कुछ साल वे अध्यापक रहे और "अक्षरश्लोक परिषद्' के स्थापकों में थे। इनकी रचनाओं में रहस्यवाद का पुट दिखाई पड़ता है इनका बाष्पांजलि शोककाव्य बहुत लोकप्रिय रचना है। इनका मलनाट्टिल शीर्षक काव्य संकलन साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत हुआ।

मुख्य कृतियाँ

कनककुसुमांजलि, बाष्पांजलि, तुलसी भावम्, वैल्लत्तोणि, हर्षांजलि, सण्णुम् विण्णुम्, मलनाट्टिल, वनान्तसंचारम्, तीर्थाटकन् (संकलन)

टैगोर का परोक्ष प्रभाव इनकी कृतियों में देखा जा सकता है।

1968 में वे परलोक प्राप्त हुए।

6· जी· शंकरकुरुप (1901 - 1978)

मलयालम कविता साहित्य के प्रौढ कवियों में जी· शंकरकुरुप का नाम आदर से लिया जाता है । मधुरता, मृदुलता तथा सौम्यता के साथ, "त्येन त्यक्तेन भुंजीथा:" यह औपानिषद् दर्शन भी आपकी रचनाओं में उज्ज्वल प्रभा से लक्षित होता है ।

मानव मन के प्राय: सभी भावों को उन्होंने वाणी दी है । प्रकृति की सुषमा, विश्व की अमेयता से जनित विस्मय, उस अज्ञेय विश्वशक्ति की ओर आराधना का भाव, जिन्दगी को आर्द्र एवं सुरभिल बनानेवाले स्नेह वत्सल्य की भावनाएं, स्वतंत्रता की वांछा, विश्व की नश्वरता को सोच उद्भूत निर्वेद इस प्रकार एक विशाल भाव प्रपंच अपनी रचनाओं में वे प्रस्तुत कर देते हैं । आपकी प्रतिनिधि रचना "ओटक्कुषल" पर "ज्ञानपीठ पुरस्कार" प्राप्त हुआ । गद्य साहित्य को भी इन्होंने अपनी प्रौढ एवं विचारात्मक निबन्धों से सम्पन्न कर दिया । बाल-साहित्य का भी प्रणयन इन्होंने किया ।

मुख्य रचनाएं

पाथेयम, विश्वदर्शनम्, ओडक्कुषल, (काव्य संकलन) विलासलहरी, गीतांजलि, स्वतंत्र्योदय (अनुवाद), सन्ध्या, आगस्ट 15 (नाटक) गद्योपहार, लेखमाला (लेख), मुत्तुं चिप्पियुं, इलंचुण्टुकल (बालसाहित्य)

1978 में ये चल बसे ।

7 टी·आर· नायर (1907 -)

विद्वान और प्रतिभाशाली श्री·टी·आर· नायर अपनी साहित्य रचनाओं द्वारा सहृदयों के अभिनंदन के पात्र बन चुके हैं। इतिवृत्त के अनुसार भाषा, शैली एवं छंद में परिवर्तन करने में इनकी कुशलता सराहनीय है। इन्होंने अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से उपज अनेक काव्य तल्लजों से मलयालम साहित्य को संपन्न किया है। इनसे रचित "बुट्कण्णीर" (तप्त बाष्प) नामक शोककाव्य एक सुदुर्लभ तीर्थ के समान सहृदय पाठक अपने हृदयतल में रखकर पूजा करेगा। पचास से अधिक वर्षों से वे साहित्य की उपासना में लगातार लगे रहते हैं।

प्रमुख रचनाएं

साहित्यमालिका, ओमन वीणा (लाडली वीणा), विलासिनी, चुट्कण्णीर, कटाक्षमाला।
रघुवंश, मेघसंदेश, गंगालहरी, क्रिस्तानुकरण (अनुवाद)

*****

8· बालामणियम्मा (1909 -)

शालीनता की प्रतिमूर्ति श्रीमती बालामणियम्मा मलयालम काव्य जगत् के अपने ढंग की एकमात्र कवयित्री है । अपने वैयक्तिक जीवन में अनुभूत स्नेह वात्सल्य के स्पन्दन तथा उसका अनुरणन उनकी कविताओं में मुखरित होता है । निर्वृति का वरदान भगवान ने यथेष्ट उन्हें प्रदान किया । गरिमामय मातृत्व की परम पवित्र अमृतवाहिनी कविता द्वारा उन्होंने बहा दी । अपने चिरकाल सपनों की मूर्ति बनकर अपनी छाती में मर तक के हार बन कर विराजमान होता है ।

बालामणियम्मा का कवि समस्त विश्व के प्रति मातृत्व की पुनीत भावना से भरपूर है । इनकी "अम्मा" (माता) शीर्षक कविता संकलन की कवितायें इसका प्रमाण है ।

मुख्य कृतियाँ

"अम्मा", "अंजलि", कुटुम्बिनी, नारी हृदय, प्रणाम, मुत्तश्शी, लोकान्तरों में प्रकाश में आदि ।

--

आलोच्य ग्रंथ - हिन्दी

1. अंजलि और अर्घ्य — मैथिलीशरण गुप्त
साहित्य सदन, चिरगाँव (झाँसी)
चतुर्थावृत्ति, 2015 (वि)

2. आँसू — जयशंकर प्रसाद
भारती भंडार, प्रयाग द्वादश
सं. 2013 (वि)

3. कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति — सुमित्रानंदन पंत
चिदम्बरा राजकमल प्रकाशन,
दिल्ली-6, द्वि.सं. 1955

4. पुत्रवियोग — मुकुल, सुभद्राकुमारी चौहान
हंस प्रकाशन, इलाहाबाद,
प्र.सं. 1980 ई.

5. प्राणार्पण — बालकृष्ण शर्मा नवीन
सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद,
1962 (ई) 5, सरदार पटेल मार्ग

6. बापू — रामधारी सिंह दिनकर
उदयाचल आर्यकुमार रोड,
पटना-4, 1947 (ई)

7. मुरझाया फूल — नीहार, महादेवी
साहित्य भवन (प्राइवट) लि.
इलाहाबाद षष्ट सं. 1962 (ई)

8· विषाद — सियारामशरण गुप्त
साहित्यसदन, चिरगाँव (झाँसी)
चतुर्थावृत्ति 2022 (वि)

9· शोकाश्रुबिंदु — बदरीनारायण चौधरी "प्रेमघन"
प्रेमघन सर्वस्व

10· सरोजस्मृति — सूर्यकांत त्रिपाठी निराला
अपरा, साहित्य संसद, प्रयाग,
पाँचवाँ सं· 1963 ई·

आलोच्य ग्रंथ - मलयालम

11 ओरुविलापम् — सी·एस·सुब्रह्मण्यन् पोट्टी
संपा· एषुमट्टूर राज राज वर्मा
केरल भाषा इंस्टिट्यूट,
तिरुवनन्तपुरम, 1986 ई·

12· ओरुविलापम् — वी·सी·बालकृष्ण पणिक्कर
प्रकाशक - पी·के· ब्रदर्स,
कोषिक्कोड, 1951

13· कण्णुनीरत्तुळ्ळि — नालप्पाट् नारायण मेनोन
मातृभूमि प्रिन्टिंग एण्ड
पब्लिशिंग कंपनी, कोषिक्कोट,
14 वाँ सं· 1976 (ई)

14. चित्रलेखम् — जी.शंकरकुरुप - पाथेयम, साहित्य प्रवर्तक सहकरण संघ, प्र.सं.1961 (ई)

15. चट्कण्णीर — टी.आर.नायर, बी.वी.बुक डिप्पो एण्ड प्रिन्टिंग वर्क्स, त्रिश्शूर, तृतीय संस्करण 1942 (ई)

16. प्ररोदनम् — कुमारनाशान, आशान कृतिकल भाग 1, शारदा बुक डिपो, तोन्नक्कल, तिरुवनन्तपुरम, प्र.सं.1973 (ई)

17. भारतेंदु — जी.शंकरकुरुप - पाथेयम, साहित्य प्र वर्तक सहकरण संघ, प्रथम संस्करण 1961

18. बाष्पांजलि — के.के.राजा, मंगलोदयम् प्रेस, त्रिश्शूर, चतुर्थ संस्करण 1962 (ई)

19. लोकान्तरंगलिल — बालामणियम्मा, मातृभूमि प्रिन्टिंग एण्ड पब्लिशिंग कंपनी, कोषिक्कोड, प्र.सं.1955 ई.

20. वीणपूवु — कुमारनाशान, आशान कृतिकल भाग 1, शारदा बुक डिपो, तोन्नक्कल, तिरुवनन्तपुरम, तृतीय संस्करण 1973,

संदर्भ ग्रन्थ सूची - हिन्दी

21. अपरा — सूर्यकांतत्रिपाठी निराला
साहित्य संसद, प्रयाग, छठवाँ
संस्करण, 1965

22. आधुनिक हिन्दी काव्य और मलयालम काव्य -
डॉ.एन.ई.विश्वनाथ अय्यर
नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
दिल्ली-6, प्र.सं. 1970

23. आधुनिक हिन्दी काव्य रूप और संरचना -
डॉ.निर्मला जैन
नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
दिल्ली-6, प्र.सं. 1984

24. आधुनिक हिन्दी काव्य — कुमार विमल
अप्सरा प्रकाशन, आगरा, 1964

25. आधुनिक हिन्दी काव्य कृति और विधा -
डॉ.सुरेन्द्रनाथुर,
हिन्दी साहित्य भंडार,
लखनऊ, 1963

26. आधुनिक हिन्दी साहित्य - विजयेन्द्रस्नातक और
क्षेमचन्द्रसुमन
आत्माराम एण्ड सन्ज़, दिल्ली ।

27. आधुनिक हिन्दी कविता में गांधीवाद - डॉ॰मिलाती भट्टाचार्जी
ऋषभचरण जैन एवं संतति, नई दिल्ली-2, प्र॰सं॰1990

28. आर्द्रा — सियारामशरण गुप्त
साहित्य सदन, चिरगाँव,झाँसी
2013 (वि)

29. आकुल अन्तर — बच्चन
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
पाँचवाँ सं॰1961

30. एकांत संगीत — बच्चन
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली-6
छठा संस्करण 1969

31. काव्य के रूप — डॉ॰गुलाब राय
आत्माराम एण्ड सन्स,दिल्ली
छठवाँ संस्करण 1967

32. कवि निराला की वेदना तथा अन्य निबन्ध - विष्णुकान्त जोशी
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी-1, प्र॰सं॰1963

33. कवि निराला — नंददुलारे वाजपेयी
वाणीविलास प्रकाशन,वाराणसी, प्र॰सं॰1965

34· करुण रस — डॉ·ब्रजवासीलाल श्रीवास्तव
हिन्दी साहित्य संसार,
नई दिल्ली, 1961

35· कवि सियारामशरण गुप्त — डॉ·नगेन्द्र
नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
दिल्ली, द्वि·सं·1965

36· कवि प्रसाद और उनकी काव्य साधना —
श्री·विनोदशंकर व्यास
अध्ययन प्रकाशन कानपुर 1965

37· काव्य प्रदीप — पं·रामबिहारी शुक्ल
हिन्दी भवन, इलाहाबाद,
चौथा संस्करण 1964

38· खड़ीबोली कविता में विरह वर्णन — डॉ·रामप्रसाद मिश्र
सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा,
प्र·सं·1964

39· खादी के फूल — बच्चन
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली-6
द्·सं·1962

40· गांधायन — मोहनलाल द्विवेदी
साहित्य भवन (प्राइवेट)
लिमिटेड, इलाहाबाद 1970

41· गीतांजलि भावधारा — कृष्णबिहारी गुप्त
हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद । 1978

42· गीतिका — निराला
साहित्य संसद, प्रयाग ।

43· गीतिकाव्य का विकास — लालधर त्रिपाठी प्रवासी
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,
वाराणसी, प्र·सं·1961

44· गोदान — प्रेमचन्द
सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद,
वर्तमान सं·1975

45· चान्दनी रात और अजगर – उपेन्द्रनाथ अश्क
नीलाभ प्रकाशन गृह-5, खुसरो
बाग रोड, प्रयाग-1,1952

46· चिन्तामणि – 1 — रामचन्द्र शुक्ल
इंडियन प्रेस §प्रा§ लि·प्रयाग 1967

47· चिदम्बरा — सुमित्रानंदन पंत
राजकमल प्रकाशन §प्रा·§लि·
फैज बाजार, दिल्ली-55

48· चेतना — मोहनलाल द्विवेदी
इंडियन प्रेस §प्रा·§लि·, प्रयाग, 1960

49· छायावादी कवियों का काव्यादर्श -
डॉ॰कृष्णचन्द्रगुप्त
अनुराधा प्रकाश, मेरठ,प्र॰सं॰1970

50· छायावाद युग — शंभूनाथ सिंह,
सरस्वती मंदिर वाराणसी। १९६१

51· छायावादी कवियों की गीत-सृष्टि -
डॉ॰उपेन्द्र
युगवाणी प्रकाशन,207/66,
जवाहर नगर, कानपुर,1966

52· जयभारत जय — सोहनलाल द्विवेदी
राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट,
दिल्ली-6, 1972

53· जयशंकर प्रसाद — रामनाथ सुमन राजपाल एण्ड सन्स
दिल्ली 6 1969

54· जयशंकर प्रसाद का कामायनीपूर्व काव्य -
डॉ॰ शांतिस्वरूप गुप्त
एस॰ई॰एस॰एण्ड कम्पनी,
फव्वारा, दिल्ली-6, प्र॰सं॰1977

55· द्विवेदी युगीन खंडकाव्य — सरोजनी अग्रवाल
सुलभ प्रकाशन, 17, अशोक मार्ग,
लखनऊ प्र॰सं॰1987

56· दिनकर — संपा॰सावित्री सिन्हा
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली,प्र॰सं॰
1967

57· दीप जलेगा उपेन्द्रनाथ अश्क
नीलाभ प्रकाशन, गृह,5 खुसरो बाग
रोड, प्रयाग, 1950

58· निराला काव्य का वस्तु तत्व - डॉ· भगवान देव यादव
साहित्य सदनालय, 37/50,
गिलिस बाज़ार, कानपुर,
प्र·सं·1979

59· निराला कवि और काव्यकार -
अंजलि मेहता
यूनिवर्सल पब्लिकेशन, कोल्हापुर
प्र·सं·1974

60· निशानिमंत्रण बच्चन
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली,
आठवां संस्करण 1960

61· नाट्यदर्पण रामचन्द्र गुणचन्द्र ,संपा·डॉ·नगेन्द्र
हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्व-
विद्यालय, प्र·सं·1961

62· "नवीन" और उनका काव्य - जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव
विनोद पुस्तक मंदिर, हास्पिटल
रोड, आगरा, प्र·सं·1963

63. नीहार महादेवी वर्मा
साहित्य भवन, इलाहाबाद,
सातवाँ सं. 1971

64. निराला और उनकी अपरा - डॉ. रेखा खरे
अशोक प्रकाशन, नई सड़क,
दिल्ली-6, प्र.सं. 1973

65. निराला की कविताएं और काव्य भाव - डॉ. रेखा खरे
हिंदी भवन इलाहाबाद 1970

66. निराला डॉ. रामविलास शर्मा
शिवलाल अग्रवाल एण्ड कंपनी,
आगरा, 1971

67. निराला स्मृति-ग्रंथ संपादक डॉ. रामविलास शर्मा
रचना प्रकाशन इलाहाबाद 1969

68. पल्लव सुमित्रानंदन पंत
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली,
सातवाँ सं. 1963.

69. पंत का काव्य डॉ. (कु.) प्रेमलता बफना
साहित्य सदन, देहरादून,
प्र.सं. 1969

70. पंत साहित्य आत्मकथात्मक परिदृश्य -
डॉ. निर्मलबख्शी
राष्ट्रभाषा प्रकाशन, 518/6 बी.
विश्वनगर शाहदरा, दिल्ली,
प्र.सं. 1977

71· पंत काव्य में बिंबयोजना - डॉ·एन·पी·कुट्टन पिल्लै,
दक्षिण प्रकाशन, गांधी बाज़ार,
हाइदराबाद, प्र·सं·1962

72· प्रभाती सोहनलाल द्विवेदी
साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1944

73· प्रसाद के काव्य में प्रेमतत्व - प्रभाकर श्रोत्रिय
राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली-6 1969

74· प्रतीकी कवि पंत और जी·शंकरकुरुप -
एन·चन्द्रशेखरन नायर
श्रीनिकेतन प्रकाशन, तिरुवनन्तपुरम,
प्र·सं·1980

75· प्रेमघन सर्वस्व -1 बदरीनारायण चौधरी "प्रेमघन"

76· पूजागीत सोहनलाल द्विवेदी
इंडियन प्रेस (प्रा·)लि·, प्रयाग
प्र·सं·1959

77· बापू सियाराम शरण गुप्त
साहित्य सदन, चिरगाँव,
झाँसी, 2023 (वि·)

78· बापू स्मृतितर्पण राजेश्वर गुरु
रामनारायणलाल बेनेप्रसाद,
इलाहाबाद, 1974

79· भारतेंदु हरिश्चन्द्र श्री·ब्रजरत्नदास
राष्ट्रभाषा प्रकाशन दिल्ली 1961

80· भारतेन्दु हरिश्चन्द्र — डॉ·लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
साहित्य भवन, इलाहाबाद,
1956 ई·

81· महाप्राण निराला — गंगाप्रसाद पाडेय
साहित्यकार संसद, 2006 (वि) प्रयाग

82· माखनलाल चतुर्वेदी = व्यक्तित्व और कृतित्व -
प्रेमनारायण टंडन
श्रीनंदन प्रकाशन, रानीकटरा,
लाल मार्ग, लखनऊ, प्र·सं·1970

83· मलयालम साहित्य एक सर्वेक्षण -
डॉ· रामचन्द्र देव
आशा प्रकाशन गृह, करौल बाग,
दिल्ली-5, प्र·सं·1969

84· मुक्तिगंधा — मोहनलाल द्विवेदी
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली-6,
1972·

85, माखनलाल चतुर्वेदी — ऋषि जैमिनी कौशिक
भारतीय ज्ञानपीठ, काशी,
प्र·सं·1960

86· मुकुल तथा अन्य कविताएं सुभद्रा कुमारी चौहान
हंस प्रकाशन, इलाहाबाद,प्र·सं·1980

87. मिलन यामिनी — बच्चन
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली,
द्वि.सं. 1961

88. मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य -
डॉ. कमलकांत पाठक
रणजीत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स,
4872, चांदनी चौक, दिल्ली, 6
प्रथम संस्करण 1960

89. यामा — महादेवी
लीडर प्रेस, इलाहाबाद, चतुर्थ सं.
2018 (वि)

90. युगाधार — सोहनलाल द्विवेदी
साहित्य भवन इलाहाबाद, 2001 (वि)

91. राष्ट्रीयकवि दिनकर और उनकी काव्यकला -
डॉ. शेखरचन्द्र जैन
जयपुर पुस्तक सदन, चौडा रास्ता,
जयपुर-3, प्र.सं. 1973

92. रीतिकाल की भूमिका — डॉ. नगेन्द्र
नेशनल पब्लिशिंग, दिल्ली,
चतुर्थ सं. 1961

93· विश्वास बढ़ता ही गया - शिवमंगल सिंह "सुमन"
आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली-6
प्र·सं·1967

94· विवेचनात्मक गद्य गुलाबराय राजकमल प्रकाशन
1969

95· वीणा ग्रंथि सुमित्रानंदनपंत
भारती भंडार, प्रयाग,
द्वि·सं·2007 (वि·)

96· वाणी की व्यथा शिवमंगल सिंह "सुमन"
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली-6,
1980

97· सतरंगिनी बच्चन
सेन्ट्रल बुक डिप्पो, इलाहाबाद,
तीसरा संस्करण 1951

98· साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध -
महादेवीवर्मा
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1
1962

99· साहित्य कोश II ज्ञानमंडल लिमिटड, वाराणसी
2020 (वि)

100· साहित्य दर्पण — विश्वनाथ कविराज
शशिकला हिन्दी कमन्टरी नोट्स,
चौखम्बा विद्या भवन,
वाराणसी 1963

101· सियाराम शरण गुप्त के काव्य - डा· नगेन्द्र
नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
दिल्ली 1965

102· सियारामशरण गुप्त सृजन और मूल्यांकन -
ललित शुक्ल
रणजीत प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स,
चांदनी चौक, दिल्ली प्र·सं·
1969

103· सियारामशरण गुप्त का साहित्य एक मूल्यांकन -
परमलाल गुप्त
नवयुग ग्रन्थागार, महानगर,
लखनऊ प्र·सं2023 (वि)

104· संधिनी — महादेवी वर्मा
लोकभारती प्रकाशन, 15/ए,
महात्मागांधी मार्ग, इलाहाबाद
अष्टम सं·1973

105· संयोजिता — सुमित्रानंदन पंत
राजकमल प्रकाशन (प्रा·)लि·,
8 फैज बाजार, दिल्ली-6, प्र·सं
1969

106· स्वर्णिमरथ चक्र सुमित्रानन्दन पंत लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद 1968

107· सुमित्रानंदन पंत का काव्य- डॉ·प्रेमलता बफना, साहित्य सदन, देहरादून, प्र·सं·1969

108· सुमित्रानंदन पंत कला और जीवन दर्शन - शचीरानी गुर्टू, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली ।

109· सुमित्रानंदन पंत विश्वंभर मानव किताब महल, इलाहाबाद, प्र·सं·1962

110· सुमित्रानंदन पंत की सौंदर्यचेतना का विकास - डॉ· राजकुमारी सैनी जीवनज्योति प्रकाशन, दिल्ली-6, प्र·सं·1988

111· सूत की माला बच्चन राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली-6 तीसरा संस्करण 1958

112· हमारे प्रतिनिधि कवि विश्वंभर मानव लोकभारती प्रकाशन, 15/ए महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद-2 प्र·सं·1969

113· हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ -
प्रो॰शिवकुमार वर्मा
अशोक प्रकाशन, दिल्ली-6
द्वि·सं·1964

114· हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल
नागरीप्रचारिणी सभा, काशी,
2018 ‹वि›

115· हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी - नन्ददुलारे वाजपेयी
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद,
नवीन सं·1965

116· हिन्दी कविता में युगान्तर - डॉ· सुधीन्द्र
आत्माराम एण्ड सन्स,
कश्मीरी गेट, दिल्ली-6

117· हिन्दी काव्य पर आंग्लप्रभाव - डॉ·रवीन्द्र सहाय वर्मा
पद्मजा प्रकाशन, कानपुर
प्रथम संस्करण 2011 ‹वि›

118· हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ·नगेन्द्र
नेशनल पब्लिशिंग हाउस 23,
दरियागंज, नई दिल्ली,
तीसरा सं·1990

119· हिमकिरीटिनी माखनलाल चतुर्वेदी
‹एक भारतीय आत्मा›
भारती भंडार प्रयाग,तृ·सं·2013‹वि›

120. हिन्दी साहित्य कोश

121. हिल्लोल — शिवमंगल सिंह "सुमन"
सरस्वती प्रेस, बनारस, प्र.सं. 1945

संदर्भ ग्रंथ सूची - मलयालम

122. अन्त्यहारम् — एस. तेरमठम्
सैंट फ्रान्सीस प्रेस, वटक्कान्चेरी,
1943

123. अन्धविलाप — एडमन वासुदेवन नंपूतिरि
संपा. साहित्य अकादमी त्रिश्शूर,
1942

124. आत्माविल ओरु चिता — वयलार रामवर्मा
वयलार कृतिकल, इंडियन प्रेस,
कोट्टयम, 1976

125. आत्मसेदनम् — पुत्तनकावु मात्तन तरकन्
डी.सी.बुक्स, कोट्टयम, 1986

126. आशान् नवोत्थानत्तिन्टे कवि - तायाट्टु शंकरन्,
एन.बी.एस., कोट्टयम, प्र.सं. 1978

127. आशानिले दार्शनिकन — वेरियान कुनियन्तोटत्त्
जनता बुक स्टाल, कोच्चि,
प्र.सं. 1971

128. आशान्टे कल्पनिक प्रस्थानवुम् - जी. कुमारपिल्ले
एन.बी.एस. कोट्टयम, 1969

129. आशान — संपा.के.जी.माधवन कोमलेषत्त्
शारदा बुक डिप्पो, तान्निक्कल,
तिरुवनन्तपुरम, प्र.सं. 1972

130. उमाकेरलम् — उल्लूर एस.परमेश्वरय्यर
उल्लूर पब्लिशर्स, जगति, तिरुवनन्तपुरम
1965

131. ओरुविलापम् — व्याख्याता जोर्ज इरुम्पयम्
साहित्य प्रवर्तक सहकरण संघ,
कोट्टयम, प्र.सं. 1971

132. ओरुविलापम् — वल्लत्तोल गोपालमेनोन
साहित्य प्रवर्तक सहकरण संघ,
कोट्टयम,

133. कण्णीरुम् मषविल्लुम् — डॉ.एम.लीलावती,
सा.प्र .स.संघ, कोट्टयम,प्र.सं. 1972

134· काद्टुम तैलिच्चवुम्   प्रो·एम·के·सानु,
पूर्णा पब्लिकेशनस, कोषिक्कोट,
प्र·सं·1970

135· काव्य पीठिका   प्रो·जोसफ मुण्डशेरी
मंगलोदयम्, त्रिश्शूर, प्र·सं·1966

136· काव्यकला कुमारनाशानिलूटे - पी·के· बालकृष्णन,
एन·बी·एस·,कोट्टयम,प्र·सं·1979

137· कल्पशाखी   उल्लूर एस·परमेश्वरैय्यर
एन·बी·एस·,कोट्टयम, 1977

138· कलयुं कालवुम्   डॉ· भास्करन् नायर
मातृभूमि प्रिन्टिंग एण्ड पब्लिशर्स,
कोषिक्कोट, 1954

139· किरणंगल   के·एन·एषुत्तच्चन
करन्ट बुक्स, त्रिश्शूर, द्वि·सं·1962

140· कुमारनाशान्टे पद्यकृतिकल - शारदा बुक डिप्पो,
तोन्नक्कल, तिरुवनन्तपुरम, 1968

141· कुमारनाशान्टे काव्यप्रपंचम् - नवोत्थान समिति,
एरणाकुलम, 1974

142· कुमारनाशानेप्पट्टि   प्रबन्धंगलुं प्रसंगंगलुम, आशान
स्मारक समिति, 1968

143. केरल साहित्य चरित्रम्-5 उल्लूर एस.परमेश्वर अय्यर
केरल साहित्य प्रवर्तक संघ,
तिरुवनन्तपुरम, प्र.सं.1965

144. चिन्ताविष्टयाय सीता - आशान
संपूर्णकृतिकल, शारदा बुक डिप्पो,
तोन्नक्कल, तिरुवनन्तपुरम, प्र.सं.1972

145. तिलोदकम एम.आर.नायर
संपा.केरल भाषा इंस्टिट्यूट,1986

146. नीहारटकल ए.पी.पी. नंपूतिरि
पी.के.पब्लिशर्स, कोषिक्कोड,
प्र.सं.1956

147. पद्यसाहित्य चरित्रम् टी.एम.चुम्मार
केरल साहित्य अकादमी, त्रिशूर,
प्र.सं.1960

148. पाथेयम जी.शंकरकुरुप
एन.बी.एस. कोट्टयम ।

149. पाट्टुन्न मणितरिकल पी.भास्करन
स्टार पब्लिशिंग, एरणाकुलम,1949

150. प्रियविलापम् एम.राजराजवर्मा
केरल भाषा इंस्टिट्यूट,
तिरुवनन्तपुरम,1986

151• पुत्तनपाना — अर्णोस पतिरि
जनता बुक्स, एरणाकुलम, 1934

152• बाइबिल — सन्टेपाल

153, बधिरविलापम् — वल्लत्तोल
वल्लत्तोलिन्टे पद्यकृतिकल,
एन•बी•एस•कोट्टयम, 1975

154• बाष्पांजलि — उल्लूर एस•परमेश्वरय्यर
उल्लूरिन्टे पद्यकृतिकल,
एन•बी•एस• कोट्टयम, 1977

155• भग्नहृदयम् या मेरी विलापम् - टी•पी• मार्कोस
प्रकाश प्रिन्टिंग वर्क्स, एरणाकुलम,
1940

156• भावद्गीता — व्याख्याता श्री•पी•एम•नारायणन
नायर, विद्यारंभम् प्रेस,
आलप्पुषा, 1969

157• महाकवि वी•सी• बालकृष्ण पणिक्कर -
पुत्तेषत्त रामन मेनोन
मंगलोदयम, त्रिश्शूर ।

158• मलयाल कविता साहित्य चरित्रम् - डॉ•एम•लीलावती
केरल साहित्य अकादमी, त्रिश्शूर,
प्रथम संस्करण 1980

159· मलयाल साहित्य चरित्रम् - पी·के· परमेश्वरन नायर,
साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली,
चतुर्थ सं·1963

160· मलयाल खण्डकाव्यंगल - ओरु पठनम् -
प्रो·एम·जी·पणिक्कर
केरल भाषा इंस्टिट्यूट,
तिरुवनन्तपुरम, प्र·सं·1985

161· मण्मरंज साहित्यकारन्मार - पी·वी·कृष्णवार्यर
एन·बी·एस·, कोट्टयम, 1955

162· माडवनपरम्बिले चिता वयलार रामवर्मा
वयलार कृतिकल, इंडियन प्रेस,
कोट्टयम, प्र·सं·1976

163· रमणन् चंडम्पुष़ा कृष्ण पिल्लै
चंडम्पुष़ा कृतिकल, इंडियन प्रेस,
कोट्टयम्, प्र·सं·1974

164· रमणनुं मलयालकवितयुम - सुकुमार अषीक्कोट

165· राजांकणम् कुट्टिकृष्ण मारार
पी·के· ब्रदर्स, कोषिक्कोड,
प्र·सं·1956

166· राजराजन्टे माट्टोलि - प्रो·जोसफ मुण्डश्शेरी
मंगलोदयम्, त्रिश्शूर, 1969

167· वल्लत्तोलिन्टे पद्यकृतिकल - वल्लत्तोल
एन·बी·एस·, कोट्टयम, 1975

168· विलापकाव्य प्रस्थानम् एक्मुदट्टूर राजराजवर्मा
केरल भाषा इंस्टिट्यूट,
तिरुवनन्तपुरम, 1986

169· विश्वमहाग्रंथ- 2 केरल भाषा इन्स्टिट्यूट,
तिरुवनन्तपुरम, 1977

170· विश्वमहाग्रंथ - 4 वही

171· विश्वमहाग्रंथ - 7 वही

172· वी·सी· कृतिकल [कृतिकलुम विमर्शनदुम] -
सपा·के·गोलकृष्णन्
केरल साहित्य अकादमी, त्रिश्शूर,
1981·

173· साहित्यपीठिका मेट्टू उल्कतरा
डी·सी·बुक्स, कोट्टयम,
प्र·सं·1984

174· साहित्य निकष्म् ।। एम·आर· नायर
मातृभूमि कोषिकोड -1969

175· मोदरविलापम् एन·एक्स·कुर्यन्
एस·डी·पी· वर्क्स एण्ड कंपनी
आलप्पुषा, 1940

176· संस्कृत साहित्य चरित्र कृष्णचैतन्य
साहित्य प्रवर्तक सहकरण संघ,
तिरुवनन्तपुरम, 1968

संदर्भ - ग्रन्थ - सूची - संस्कृत

177. उत्तररामचरित — भवभूति
चौखम्बा सीरीस आफीस,
वाराणसी ।

178. रघुवंश — कालिदास
चौखम्बा सीरीज़ आफीस,
वाराणसी ।

अंग्रेजी

179. Literary Thesis — guide to research - Longman London,1970

180. A Glossary of Literary terms - III Edn. M.H. Abrams, Pub. by Macmillan India Ltd. 1985

181 Encyclopaedia Britanica Vol IV -LOndon Britanica Ltd. 1964

182. History of English Literature Emile Legouis and Louis Cazamian, Edn.Macmillan India Ltd. 1960

183. Cassells Encyclopaedia of Literature Vol.I Ed.by S.H. Steinburg, 1953

184. A Reader's Guide to literary terms - Karl Beckson The Modern Library, New York 1960.

185. Dictionary of Literary terms - Havy shaw MC grav Hill Book Company Ltd,1972

186, The Stateman's Manuel - Coleridge Methuen & Co. New York, 1964.

पत्र - पत्रिकाएं -

1. सरस्वती — शिवाधार पांडे "छायावाद"
फरवरी 1922 लेख

2. मातृभूमि साप्ताहिक — "बालकृष्ण पणिक्कर, डी.सी."
कृष्णवार्यर, एन.वी.,
जनवरी 5, 1942, पृ.42

3. विद्यादर्शिनी — "बालकृष्णपणिक्कर और कविलापदु"
के.एम.नारायणन
1960, पृ.57

4. दिनमणि विशेषांक — "प्ररोदनम्"
एम.के. सानु
960, पृ.57

5. भाषापोषिणी — "ओरु वीणपूवु"
कुमारनाशान
तुलाम-वृश्चिकम् 1084 (को.व.)